

TEXT DARK AND LIGHT

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_180510**

UNIVERSAL  
LIBRARY



Call No. H 83.  
S 53. e

Accession No. H 3132

Author 21H, 212-1

Title 212-1 1919.

This book should be returned on or before the date  
last marked below.

\_\_\_\_\_





# चौथा रास्ता

यज्ञदत्त शर्मा

१९५८  
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

**Checked 1965**

**मूल्य छः रुपया**

**Checked 1969**

**मुद्रक  
रामा कृष्णा प्रेस,  
कटरा नील, बिल्ली**

आप उस उप-भास को भेजें जहाँ १५५ नंबर है ।

विद्यासागर के सब साथी सभा में एकत्रित थे । सभा टाउन-हाल के सामने वाले घास के लॉन में हुई । [बाद में पटनावा पड़ेगा]

विद्यासागर खड़ा होकर बोला, “साथियो ! किताबी पढ़ाई हम लोग समाप्त कर चुके । अब जीवन की असली पढ़ाई का समय आया है । आप में से जो-जो जीवन भर मेरे साथ चलने को तय्यार हों, हाथ उठा दें ।” [ओ आप पढ़ते जा रहे हैं, आपने गुलाम]

विद्यासागर ने देखा कि उसके सब साथियों के हाथ उठे हुए थे ।

विद्यासागर बोला, “आगे कदम रखने से पहले आप सब पूरी तरह विचार कर लें कि यदि किसी के मन में अफसर, सेठ या नेता बनने की ठनक हो तो वह मेरे साथ चलने की कृपा न करें ।”

विद्यासागर की बात सुनकर उजागरसिंह प्रफुल्लित हो उठा ।

वह खड़ा होकर बोला, “यह बात तुमने ठीक कही विद्यासागर ! अफसर बनने वालों का रास्ता दूसरा है और सेठ बनने वालों का दूसरा । नेता बनने वालों का रास्ता तीसरा है और हमारा होगा चौथा रास्ता ।” [जहाँ आप जाते जाते हैं वो आप आते हैं]

“वह होगा सेवा का रास्ता ।” मुस्कराते होठों से पुष्प बरसाती हुई शीला बोली । “वह होगा प्यार और मोहोब्बत से जीने और दूसरों को जीने देने का रास्ता । वह होगा सबकी भलाई में अपनी भलाई सोचने का रास्ता ।” [मेरे लोड ने आप पढ़ते पढ़ते मर जा रहे हैं]

विद्यासागर बोला, “शीला और उजागरसिंह ने जो कुछ कहा, आप सबने सुन लिया । हमारा चौथा रास्ता होगा । वह रास्ता उस भूमि पर बनाया जायगा जिसपर हमारे देश का हर इन्सान चल सके ।

बोलिये आपमें से कौन-कौन उस रास्ते पर चलने को तय्यार हैं ?”

“हम सब तय्यार हैं।” एक स्वर में सबने कहा।

विद्यासागर गम्भीरता पूर्वक बोला, “तो आप सब अपने-अपने गाँवों को जाने के लिये तय्यार हो जायें। आप अपने-अपने गाँवों में जाकर रहें और पन्द्रह दिन में गाँव की दशा का अध्ययन करके शहर लौट आयें। सब अपनी-अपनी रिपोर्ट पेश करें।

किसके गाँव में कितने प्रकार का जीवन चल रहा है, उसकी सूचना इकट्ठी करके लायें।”

सब ने विद्यासागर की बात अपनी गाँठ में बाँध ली और उसी दिन अपने-अपने गाँवों को चले गये।

: २ :

विद्यासागर जिला-विद्यार्थी-यूनियन का प्रेजीडेण्ट था। उसके संकेत पर शहर के विद्यालयों में हलचल मच जाती थी।

विद्यासागर को लेक्चरबाजी की अपेक्षा रचनात्मक कार्य करने का अधिक शौक था। शहर के सब विद्यालयों में सहयोगी जलपान-ग्रहों की व्यवस्था करना उसी का काम था।

विद्यालयों के बोर्डिंग हाउसों के मेसों को भी उसके सहयोगी नियंत्रण के अंतर्गत चलाने में सफलता प्राप्त हुई थी।

इनके अतिरिक्त विद्यासागर ने और भी कई ऐसे प्रशंसनीय कार्य अपने विद्यार्थी-जीवन में किये थे कि जिनकी स्थायी छाप उसके साथियों के दिलों पर थी।

विद्यार्थी-जीवन समाप्त करके विद्यासागर ने अपना प्रधान-पद साथी विनयमोहन के लिए खाली कर दिया। आगे के जीवन में नया कार्यक्रम लेकर चलने की योजना साथियों के सामने प्रस्तुत करने को उसने आज यह सभा बुलाई थी।

वह देखना चाहता था कि विद्यार्थी-जीवन में सम्बा-सम्बा हाथ

फँलाकर उसके जो साथी समाज और देश-कल्याण की बातें छोंकते रहे हूँ वे कहाँ तक अपनी बात पर पूरे उतरते हूँ।

आज की सभा में उसके साथियों ने जिस वृद्धता का परिबन्ध दिया उससे उसकी आत्मा प्रसन्न थी, उसके चेहरे पर मुस्कराहट थी और विचारों में गम्भीर स्थिरता।

तभी शीला बगल के कमरे में से प्रवेश करती हुई बोली, “आज संध्या को देवनागरी इन्टर कालेज में विद्यार्थी नाटक खेल रहे हैं। मैंने तुमसे बिना पूछे ही उन्हें विश्वास दिला दिया कि तुम उनके समारोह में भाग लोगे।”

“लेकिन मुझे तो संध्या की गाड़ी से गाँव जाना है। क्या तुम स्वाहती हो शीला ! कि मैं अपने साथियों से पीछे रह जाऊँ !” विद्यासागर बोला।

ऐसा मैं कैसे कभी चाह सकती हूँ ! परन्तु क्या कहूँ ? आशा लेकर आने वाले विद्यार्थियों को भी मना नहीं कर सकती मैं।” और फिर ज़रा ठहर कर शीला ने कहा, “तुम चिंता न करो ! गाड़ी निकल जायगी तो निकल जाने दो। मैं अपनी गाड़ी पर छोड़ आऊँगी तुम्हें।”

विद्यासागर ने शीला के चेहरे पर हल्की सी मीठी नज़र डालकर देखा।

: ३ :

रामभगत के बेटे सागर ने एम० ए० पास कर लिया। इस बात की चर्चा गाँव भर में थी। आस पास के देहात भर में थी।

रामभगत सोच रहा था कि सागर कहीं नौकरी पा जायगा तो उसकी मेहनत सुफल हो जायगी।

“बापू ! भय्या सहर में नौकरी करेंगे तो मैं भी सहर में रहूँगी भय्या के पास।” विद्यासागर की छोटी बहन ज़मेनी ने कहा।

“और नहीं तो सहर में सागर की रोटी कौन करेगा ? सागर की

बहुत जब तक नहीं आयेगी तू ही तो उसका सब काम करेगी।” उत्साह और उमंग के साथ फूला हुआ रामभगत बोला।

“मैं भी सागर के साथ सहर चली जाऊँगी चमेली के बापू ! सुना है सहर में बड़ा काम है। औरतों को घर पै ही करने को बड़ा काम मिल जाता है। सहर में नावा कमा लेती हैं औरतें।” सागर की माँ अपना पीढ़ा रामभगत के पास सरका कर उस पर बैठती हुई बोली।

“तुम सब सहर चले जाओ बाबा ! मेरा पिंड छोड़ो ! मैं अकेला ही यहाँ रहूँगा। मैं अपना काम और अपना गाँव छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। सागर के साथ तुम दोनों शहर चली जाना।”

रामभगत की बात सुनकर सागर की माँ चिढ़ गई। वह गर्म होकर बोली, “आखिर है क्या तुम्हारे गाँव में ? खुशी से खाता-पीता भी कोई नहीं देख सकता किसी को।

सागर जरा पढ़ गया तो सारा गाँव चिढ़ने लगा है हमसे। गाँव भर की आँखों में खार हो गया है मेरा सागर।

“सारा गाँव हमसे चिढ़ने लगा है ! यह तूने कैसे कहा सागर की माँ ? हमसे तो कोई नहीं चिढ़ता।”

“मेरे कान दिये हैं राम ने। गाँव भर की बातें सुनती हूँ मैं।” उसी गर्मी में सागर की माँ बोली।

“चिढ़ने वालों को चिढ़ने दे पगली ! रामभगत उनकी परवाह नहीं करता। रामभगत साँझ-सकारे राम का नाम लेता है और मेहनत करके खाता है।

इसी मेहनत की आमदनी से मैंने सागर को पढ़ाया है। किसी से कर्जा नहीं लिया एक छदाम भी।” गर्व के साथ रामभगत बोला।

चमेली प्रसन्नता में नाचती हुई अपनी गाय की बछिया के पास जाकर उसकी थूथड़ी को गोद में लेकर सहलहाती हुई बोली, “पगली तुझे पता भी है कुछ ! भय्या पास हो गया। मेरा भय्या बाबू बनेगा। मैं उनके साथ सहर जाऊँगी।

तू भी चलेगी मेरे साथ ?”

बछिया ने प्यार से अपनी थूथड़ी चमेली की गोद में रख दी और चमेली ने स्नेह से उस पर हाथ फेरा ।

रामभगत का ताना-बाना पुरा हुआ था । वह कपड़ा बुन रहा था । उसकी स्त्री पीढ़े पर बैठी सूत की आटी बना रही थी ।

आटी पर सूत की पिंदिया लपेटना रोक कर बोली, “चमेली के बापू ! गांव की आबहवा बड़ी खराब होती जा रही है । किसी की तरबकी देख कर कोई खुस नहीं होता ।”

“नहीं होता तो न होने दे । तू लोगबागों की चुगलियाँ मत सुना कर । अपने काम-से-काम रखा कर ।” रामभगत ने कहा ।

रामभगत की बात पर उसकी स्त्री झुंझला कर बोली “मैं किस मरे की चुगली सुनने को फालतू बैठी हूँ । पर जब गांव की औरतें सुनाने ही लगे तो क्या कानों में रुई खोंस लिया करूँ ?”

रामभगत को हँसी-आगई अपनी स्त्री के क्रोध करने पर । वह ताना-बाना छोड़कर उसके पास जा बैठा और बोला, “क्या कहती हैं वे मेरे सागर के बारे में ?”

“सागर के बारे में क्या कहेंगी मरी ! और मेरे ही मुँह पर कहेंगी मेरे सागर के बारे में ?”

“तेरे सागर के बारे में कोई कुछ नहीं कह सकता सागर की माँ ! सागर से गाँव में कोई नाखुस नहीं है । .....”

तभी रामभगत ने देखा कि उसका सागर सामने से आ रहा था । माँ, बाप और बहन तीनों की छः आँखें स्नेह और प्यार से सामने फैल गईं ।

स्नेह का सागर उमड़ आया । माँ, बाप और बहन अनायास ही आगे बढ़ गये । सागर के पैरों की गति आप-से-आप तीव्र हो गई ।



रामभगत के बेटे सागर ने शहर में जाकर अपना नाम विद्यासागर रख लिया था।

विद्यासागर ने आदर पूर्वक अपने माता-पिता को नमस्कार किया और चमेली को प्यार।

और फिर जाकर गाय की कमर पर हाथ फेरा ! छोटी बछिया को भी पुछकारा।

: ४ :

विद्यासागर को गाँव में आये एक सप्ताह बीत गया।

रामभगत रोज उसके शहर जाने की बाट देखता था। उसे विश्वास था कि अब उसका लड़का नौकरी के लिए इधर-उधर भाग-दौड़ करेगा और कहीं-न-कहीं चिपक ही जायगा।

लेकिन वह शहर नहीं गया।

यह देखकर एक दिन अकेले में रामभगत ने विद्यासागर को अपने पास बिठाकर पूछा, “बेटा ! क्या नौकरी करने का विचार नहीं है तेरा ? मैंने इतना मर-पच कर तुझे इसलिए पढ़ाया था कि तुझे कहीं सरकारी नौकरी मिल जायगी और मेरा बुढ़ापा सुधर जायगा।”

विद्यासागर गम्भीर लड़का था। उसी गम्भीरता के साथ उसने उत्तर दिया, “बापू, आपने मुझे अपनी मेहनत और गाँव की पूँजी से पढ़ाया है। मुझपर आपकी और पूरे गाँव भर की सेवा का भार है। यदि मैंने शहर में जाकर कहीं नौकरी कर ली तो मैं आपकी सेवा तो कर सकूँगा, परन्तु इस गाँव और इस देहात की सेवा से वंचित रह जाऊँगा। इनसे मेरा सम्बन्ध टूट जायगा।”

विद्यासागर की बात सुनकर रामभगत अवाक रह गया।

रामभगत यों गरीब जुलाहा था और पढ़ा-लिखा फूटा अक्षर भी नहीं था, परन्तु उसमें राष्ट्रीय जागरूकता थी। सन् तीस में गांधी बाबा के आन्दोलन में वह छः महीने की जेल-यात्रा कर चुका था।

रामभगत बोला, “तो तेरा इरादा गाँव में ही रहने का है ! पर गाँव में रहकर तू करेगा क्या ? यहाँ तेरे करने का क्या काम है ?”

“काम की चिंता न करो बापू ! काम बहुत है । मैं सब ठीक कर लूँगा ।” गम्भीरतापूर्वक विद्यासागर ने कहा ।

विद्यासागर उठकर जंगल की चला गया ।

उसकी माँ ने रामभगत से पूछा, “क्या कहता था सागर ? जायगा या नहीं नौकरी की तलाश में ?”

रामभगत गर्दन झुकाकर बोला, “सहर जाने को मना करता है । कहता है मैं नौकरी नहीं करूँगा ।”

“तो फिर क्या करेगा ?” त्योरी चढ़ाकर विद्यासागर की माँ बोली । “कुनवा कैसे पलेगा ? तुम्हारी बूढ़ी हड्डियाँ क्या सदा चलती रहेंगी ?”

रामभगत को त्योरी चढ़ा विद्यासागर की माँ का मुँह इतना प्यारा लगा, इतना प्यारा लगा कि उसके अपने चेहरे के सब चिंतापूर्ण आसार समाप्त हो गये । उस पर मुस्कराहट छा गई ।

रामभगत अपनी पत्नी का हाथ पकड़कर पास बिठाता हुआ बोला, “सागर बड़ा विचारवान लड़का है । तू उसे कुछ न कहना । जैसा उसका जी करे वंसा करने दे उसे ।”

विद्यासागर की माँ फिर तुनककर दूर हटती हुई बोली, “हटो भी, तुमने ही तो मेरे सागर को बिगाड़ के रखदिया है । बालकों की हर जिव को मानना भी कोई अकल की बात है ?”

रामभगत उसी तरह मुस्कराता रहा । उसपर अपनी स्त्री के शब्दों का कोई प्रभाव नहीं हुआ । वह बहुत ही प्रसन्न था इस समय ।

: ५ :

विद्यासागर ने अपने गाँव का डीखा देखा ।

गाँव में कुछ भूमिधर ऐसे थे, जो जमींदारी समाप्त होने से पहले जमींदार कहलाते थे ।

वह इन लोगों के जुलाहे रामभगत का लड़का था। उनकी दृष्टि में उसका दर्जा वही था जो रामभगत का था।

उसकी शिक्षा ने उसका दर्जा बदल दिया था, यह बात मानने को ये पुराने खान्दानी ऊँची जाति के ठेकेदार तय्यार नहीं थे।

गाँव में पच्चीस तीस घर चमारों के थे। इनकी संख्या भी काफी थी गाँव में।

आज संध्या को विद्यासागर चमारों की मंडय्या में जा पहुँचा। रामसिंह चमार की भोंपड़ी पर भीड़ देखकर वह उस तरफ घूम गया। वहाँ जाकर देखा तो एक विचित्र तमाशा देखने को मिला।

एक तिलकधारी मुश्तण्डा एक चमार की स्त्री की चोटी पकड़ कर उसे चारों ओर को घुमा रहा था और वह स्त्री अर्धचेतन अवस्था में घूमती जा रही थी, चीखती और चिल्लाती जा रही थी।

उसने आगे बढ़कर पूछा, “यह क्या कर रहे हो तुम लोग? अपनी स्त्री की ऐसी दशा बनवाते तुम्हें लज्जा नहीं आती?”

विद्यासागर की बात सुनकर तिलकधारी पंडित ऊँची ध्वनि में बोला, “देवी चण्डिके! कृपा करो इस पर।”

इतना कह कर वह खिल-खिला कर हँस पड़ा।

विद्यासागर ने उसकी शकल देखी तो मानो वह कह रहा था, विद्यासागर यह दुनियाँ है। तुम अभी बच्चे हो। नया-नया जोश है जिन्दगी का। अभी बहुत कुछ सीखना है तुम्हें।”

विद्यासागर को जीवन में एक झटका सा लगा और देखा कि चालाक लोग किस प्रकार सीधे और भावुक व्यक्तियों का उल्लू बनाते हैं।

वह देखता रहा चुपचाप खड़ा यह तमाशा।

रामसिंह चमार बोला, “भय्या इस बहू पर चामंडा देवी आती है। इस घर में जब से यह बहू आई है तब से इसका इलाज पंडित संकटमोचन ही करते हैं।”

पंडित संकटमोचन ने गर्व के साथ विद्यासागर के चेहरे पर देखा

श्रीर कहा, “भय्या ! देवी भय्या का इलाज तुम्हारी किताबों में नहीं है । यह श्रीर ही विद्या है । इसे गुरु लोगों की सेवा से ही सीखा जाता है । देवी की कृपा से मिलती है यह विद्या ।”

विद्यासागर एक शब्द भी नहीं बोला ।

सीधा अपने घर चला गया ।

: ६ :

दूसरे दिन विद्यासागर फिर रामसिंह की भोंपड़ी पर गया । राम-सिंह ने उसे आदरपूर्वक खाट पर बिठाकर पूछा, “भय्या ! सुना है तुमने सबसे बड़ा इम्तहान पास कर लिया है । अब तो तुम्हें सरकारी नौकरी मिल जायगी ।”

वह बोला, “नौकरी करने का इरादा नहीं है रामसिंह ! मेरा विचार आप सब के बीच में ही रहने का है ।”

“हम सब के बीच में इतना पढ़-लिख कर क्या रहोगे भय्या ! कहीं काम-काज से लगे । गाँव में क्या रखा है ? ठीक से दो टेम रोटी भी नहीं मिलती यहाँ ।” रामसिंह बोला ।

“क्यों नहीं मिलती रोटी रामसिंह ! लोग-बाग मेहनत नहीं करते या गलत मेहनत करते हैं ।”

रामसिंह की समझ में कुछ न आया । वह विद्यासागर के चेहरे पर गौर से देखता रहा ।

थोड़ी देर में बोला, “भय्या ! बात असल में यह है कि धीरे-धीरे लोग-बागों के हाथों से उनके काम छिनते जा रहे हैं । चीनी की मिलों ने गुड़ के कोल्हू बन्द कर दिये । इससे कोल्हू में काम करने वाली हमारी श्रीरतों श्रीर बच्चों का रुजगार जाता रहा ।”

“श्रीर जब कोल्हू चलने बन्द हो गये तो ईख बोने वालों ने तुम्हारे बाल-बच्चों को खाने के लिए गुड़ देना भी बन्द कर दिया ?” विद्या-सागर ने पूछा ।

“सारे जाड़े निकल गये भय्या ! कसम ले-ले जो गुड़ की डली जुवान से लगाई हो । जब कोल्हू चलते थे तो जिमीदार गर्मागर्म गुड़ सबसे पहले भट्टी भोंकने वाले चमार को देता था ।” रामसिंह ने कहा ।

विद्यासागर ने पूछा, “और ऐसा कौन काम है रामसिंह, जो इस बीच में तुम लोगों के हाथों से छिन गया ।”

रामसिंह बोला, “बिजली के कुए लगने से कुए जोतने वाले चमार बेकार हो गये और इधर शहरों में कल-कारखानों के लगने से वे लोग सब शहरों को चले गये ।”

विद्यासागर बोला, “उनके चले जाने से उनके बूढ़े माँ-बापों को बड़ी तकलीफ हुई होगी । उनके बुढ़ापों के सहारे उनसे छिन गये ।”

विद्यासागर की बात सुनकर रामसिंह की आँखों में आँसू आ गये । और वह भावुकतापूर्ण स्वर में बोला, “उनकी क्या पूछोगे भय्या ! इसी मडेंग्या में चार बूढ़े और तीन बूढ़िया ऐसी बंठी हैं कि उन्हें कोई पानी देने वाला भी नहीं । और उनके एक-एक दो-दो जवान बेटे हैं, जो मिलों में अच्छी-खासी तनखा पा रहे हैं ।”

विद्यासागर उन लोगों के पास गया और उनकी खाटों के पास बैठकर उनका हाल पूछा ।

उसने गाँव की दशा का पूरा अनुमान लगाया और देखा कि लोगों का जीवन कैसा कट रहा है ।

गाँव के तेली, तम्बोली, पंसारी, कुम्हार, धुना, धोवर, नाई सभी से उसने बातचीत की ।

सभी अपने-अपने जीवन से असन्तुष्ट पाये । एक ने भी यह नहीं कहा, “मजे से चल रही है भय्या जिव्दगी ।”

विद्यासागर ने गाँव के बच्चों की दशा देखी, औरतों की हालत देखी, बड़े-बूढ़ों की दशा देखी और अनुभव किया कि गाँव की पूंजी बराबर शहर को खिंचती जा रही है । देहात के रहने वालों की दशा जैसी पहले थी वैसी आज भी है । उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं आया ।

बेरीजगारी के शिकार बन कर गाँव के वे नौ जवान जो गाँव की उन्नति का रास्ता दिखाते, शहरों को चले गये ।

विद्यासागर यही सोचता-सोचता आज बहुत देर में सो सका ।

: ७ :

आज सुबह-ही-सुबह विद्यासागर नहा-धोकर तय्यार हो गया और सुबह की बासी रोटी खाकर रामभगत से बोला, “बापू, आज शहर जा रहा हूँ । एक सप्ताह में लौटूँगा ।”

रामभगत एक शब्द भी अपनी जवान से नहीं बोला । चलते समय उसे अपना मौन आशीर्वाद देकर मन में कहा, बेटा तू जो कुछ करना चाहता है उसमें तुझे सफलता मिले । भगवान् तेरा साथ दें ।

उसकी माँ ने चलते समय कहा, “बेटा कहीं अच्छी नौकरी तलाश करना । सभी कहते हैं बड़ा पढ़-लिख गया है तेरा बेटा । बड़ा बाबू बनेगा ।”

विद्यासागर माँ की बात सुनकर मुस्कराता हुआ बोला, “माँ बाबू कभी नहीं बनेगा तेरा बेटा । बाबू की बात अपने दिमाग से निकाल दे तू । तेरा बेटा तेरा सेवक है, गाँव का सेवक है, देश और पूरी मानव-जाति का सेवक है ।”

विद्यासागर की माँ अवाक खड़ी रह गई । उसकी समझ में कुछ भी न आया ।

चमेली भी उसके पास खड़ी थी ।

वह चल दिया और ये सब देखते रह गये ।

उसके आँखों से ओझल हो जाने पर रामभगत और विद्यासागर की माँ ने एक दूसरे की ओर देखा ।

दोनों की आँखों में दो मोटे-मोटे आँसू थे ।

विद्यासागर की माँ कुछ कहना चाहती थी, परन्तु चुप रह गई । जवान हिलना चाहते हुए भी हिल न सकी ।

चमेली की शहर जाने की इच्छा उसके मन में ही घुमड़ कर रह गई ।

: ८ :

विद्यासागर शहर पहुँचा तो उसने देखा कि उसका कमरा एक सुन्दर दफ्तर बना हुआ था । ज़मीन पर दरी और दरी पर कालीन बिछा था । दीवारों के सहारे दो मोटे-मोटे तकिये लगे थे ।

देखकर मुस्कराता हुआ बोला, “अरे शीला, यह सब क्या किया तुमने ? हम लोग सभी देहात के कार्यकर्ता हैं । हमें कालीनों की आवश्यकता नहीं । केवल फर्श काफ़ी है ।”

शीला ने लजाकर कोई उत्तर नहीं दिया ।

विद्यासागर के सब साथी अपने-अपने गाँवों से आ चुके थे । ठीक एक बजे सभा प्रारम्भ हुई ।

सबने अपने-अपने गाँव का वर्णन किया । वहाँ के रहने वालों के कारबार, पहनावे, रीति-रिवाज और खाने-पीने की दशाएँ खोल कर बताईं ।

उजागरसिंह सबकी बातें सुनकर अन्त में बोला, “आप सब ने अपने गाँवों का जो वर्णन किया मेरा गाँव भी उनसे भिन्न नहीं है । गाँव में एक वे लोग हैं जिनके पास ज़मीनें हैं खेती करने के लिए, एक वे हैं जिनके पास अपने शरीर है काम करने के लिए और कुछ ऐसे भी हैं जिनपर कुछ पूँजी है । वे लोग छोटे-मोटे व्यापार भी करते हैं ।”

विद्यासागर बोला, “जन-जीवन बस यही है गाँव का । ज़मीनों वाले और मेहनत करने वालों में मेल-जोल नहीं है । मेहनत करने वालों की निगाहें शहरों की तरफ लगी हुई हैं । वहाँ उन्हें समय पर कार्य करना होता है और पैसे भी अच्छे मिलते हैं ।”

उजागरसिंह बोला, “यही तो दिक्कत है साथी ! गाँव के नौजवानों

की ललचाई हुई आँखों की शहरों की तरफ से मोड़ देना इसी लिए कठिन है।

अपनी आमदनी हर इन्सान बढ़ाना चाहता है। गाँव की आमदनी से उसका गुजारा नहीं हो रहा।”

शीला बोली, “तो इसका मतलब यह हुआ कि गाँवों में काम की कमी है। रोजगार कम हो गये हैं।”

शीला की बात सुनकर विद्यासागर बोला, “यही बात है शीला ! गाँवों में बेरोजगारी है। खेती के अलावा और कोई काम नहीं है करने को। जो कुछ पुराने काम हैं वे भी आज के समय का साथ नहीं दे सकते।

आप लोग क्या देख नहीं रहे हैं कि मंहगाई के कारण खर्च कितने बढ़ते जा रहे हैं ?

सबने एक स्वर से कहा, “इसमें कोई सन्देह नहीं।”

“तेजी और मंहगाई से जन-जीवन पिसा जा रहा है। देश दबा जा रहा है। आज के युग की सच्ची देश-भक्ति यही है कि हम लोग मिलकर जन-जीवन को इस समस्या से ऊपर उभारें।”

सबने एक स्वर में कहा, “इसमें कोई सन्देह नहीं।”

“जमाना बदल रहा है साथियो ! आपको इस बदलते हुए जमाने को और तेजी के साथ बदलना है। एक-दूसरे के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलना है और अपने गाँवों की कायापलट करनी है।”

“हम सब तय्यार हैं।” सबने कहा।

“कल आप लोगों के सम्मुख आगामी मास का कार्यक्रम प्रस्तुत करूँगा। देखता हूँ कौन कितनी जीदारी से आगे बढ़ता है।

आप लोग विश्वास रखें कि यदि आप अपने-अपने गाँवों का नव-निर्माण करने में सफल हो सके तो एक दिन आप नया भारत बनाने में भी अवश्य सफल होंगे।”

सभा समाप्त होने पर आमोद-प्रमोद का कार्यक्रम चला। शीला ने



अपने मधुर कंठ से संगीत सुनाया और उजागर सिंह ने अपने गाँव की होली ।

: ६ :

दूसरे दिन फिर एक बजे विद्यासागर के साथियों की सभा जुटी ।

वह बोला, “साथियो ! आज मैं आपको जीवन की पढ़ाई का पहला पाठ सुनाऊँगा ।

पाठ सुनने के पश्चात् उसे याद करना है और अपने-अपने जीवन में उतारना है ।

उजागरसिंह बोले, “साथी ! हम सब लोग निश्चय कर चुके हैं कि हमें चौथे रास्ते पर चलना है । तुम्हारा पाठ याद करना है और उसे जीवन में उतारना है ।”

“मुझे आप सबसे यही आशा है ।” विद्यासागर बोला । “हम सब ने जीवन की पढ़ाई में प्रवेश करते समय यह निश्चय किया है कि हमें गाँव में रहना है । परन्तु गाँव में रहना सरल काम नहीं है ।”

“और विशेष रूप से तब जब वहाँ रोज़गार की कमी है । माँ-बाप पर भार बन कर गाँव में रहना शर्म की बात है ।” शीला ने कहा ।

“शीला बहन का कहना सत्य है ।” सबने एक स्वर में कहा ।

“हमें गाँव में जिन्दा रहने का रास्ता खोजना होगा । हमारा वह रास्ता हमें जिन्दा रखेगा और गाँव के बहुत से साथियों को जिन्दा रहने का रास्ता दिखायेगा ।” विद्यासागर गम्भीरता पूर्वक बोला ।

सब लोग शांति पूर्वक सुनते रहे ।

विद्यासागर ने कहा, “आज जो युग बीत रहा है इसमें सफलता तभी सम्भव है जब पारस्परिक सहयोग से आगे बढ़ा जाय । हम सबको अपने-अपने गाँव में इसी सहयोग का संदेश लेकर कार्य करना है । सहयोग की भावना को सहयोग के विचारों को और सहयोग के कार्यों को बढ़ावा देना है ।”

उजागरसिंह उभर कर बोला, “हमें सहयोगी संस्थाओं का निर्माण करना है। गाँव में करना है, शहरों में करना है और फिर उन दोनों का सहयोग स्थापित करना है।”

“बहुत बड़ा काम है यह।” विद्यासागर खड़ा होता हुआ बोला। यदि हम सब मिलकर यह गाँव और शहर का सहयोग स्थापित कर सके तो गाँव और शहर के जीवन में बहुत हद तक समरसता संचारित हो उठेगी।

विद्यासागर की जवान से जो शब्द निकलता था वह उसके साथियों के दिलों पर लिखा जाता था।

विद्यासागर ने अपना आगामी कार्यक्रम सबके सामने रख दिया।

साइक्लो स्टाइल किये हुए कार्यक्रम के पर्चे सबको बाँट दिये गये।

अन्त में वह बोला, “साथियो, आज से हमारे इस दफ्तर का नाम “भारतीय सहयोग समिति” होगा। शीलादेवी इस कार्यालय को संचालित करेंगी। हम सब का कार्यक्षेत्र हमारे गाँव होंगे और शीला देवी का कार्य क्षेत्र शहर में रहेगा।”

“हमारी ‘भारतीय सहयोग समिति’ अमर हो।” सब ने एक स्वर में कहा। आज की सभा समाप्त हो गई।

सब साथी शहर में इधर-उधर घूमने चले गये।

शीला और विद्यासागर ही केवल दफ्तर में बैठे रह गये।

शीला बोली, “बहुत बड़ा भार आपने मेरे कमजोर कंधों पर डाल दिया।”

विद्यासागर ने गर्वन उठाकर शीला के चेहरे पर देखा और धीरे-धीरे बोला, “तुम्हारे कमजोर कंधों को बल देने वाले कितने मजबूत कंधे तुम्हारे साथ हैं, यह क्यों भूलती हो शीला! उजागरसिंह जैसा जांबाज आदमी तुम्हारे साथ है। तुम्हारी टोली का हर नौजवान मजबूत-से-मजबूत कंधे रखता।”

शीला मुस्करा कर बोली, “यह सब तो ठीक है लेकिन मैं कभी-

कभी अपनी ही कमजोरी से कांप उठती हूँ ! जाने क्या बात है जब तुम यहाँ होते हो तो मैं समझती हूँ कि मैं सब कुछ कर सकती हूँ और जब तुम यहाँ से चले जाते हो तो ऐसा लगने लगता है कि मैं कुछ नहीं कर सकती है । मेरा कुछ खो गया । मैं अपंग हो गई हूँ ।”

शीला की बात का विद्यासागर ने कोई उत्तर न दिया । वह बराबर चिट्ठियाँ लिखता रहा । और दस मिनट में डाक के जवाब घसीट कर बोला, “चलो घूमने चलें शीला ! आज तुम्हारी जीजी से मिलने की इच्छा बनायास ही हो आई ।”

शीला बोली, “लो तुमने यह बहुत ही अच्छा किया जो जीजी की याद करती, वरना तुम चले जाते और जीजी की शिकायत ही रह जाती । परसों ही तो उन्होंने कहा था कि आप आयें तो उनसे मिले बिना गाँव वापस न जाँय ।”

“जीजी ने कैसे याद की मेरी ?”

“कह नहीं सकती कुछ, परन्तु सम्भवतः आपकी सहकारी समिति की योजना के विषय में ही वह कुछ बातचीत करना चाहती हैं ।” शीला बोली ।

“उसो के विषय में तो मैं भी मिलना चाहता हूँ उनसे ।” कहकर वह खड़ा हो गया ।

शीला की कार दफ्तर के सामने सड़क के दूसरी ओर खड़ी थी । दोनों जाकर उसमें बैठ गये । शीला ने गाड़ी स्टार्ट की ।

: १० :

ठीक चार बजे विद्यासागर और शीला मनोरमा की कोठी पर पहुँचे ।

विद्यासागर बंठक में रहा और शीला अन्दर चली गई ।

थोड़ी देर में मनोरमा देवी बंठक में आई । विद्यासागर ने खड़े होकर प्रणाम किया ।

शीला मनोरमा के बाद बाहर आई और बोली, “मैं तो भूली ही जा रही थी जीजी आपकी बात ! यदि यह स्वयं याद न दिलाते तो निश्चय ही आपका उलाहना मुझे सहना पड़ता और यह सुबह अपने गांव में दिखाई देते ।”

शीला की बात सुनकर मनोरमा बोली, “तो तुम स्वयं ही आ रहे थे यहां ! कोई विशेष काम तो नहीं था ?”

“पिछली बार जब आप से भेंट हुई थी तो मैंने आपसे एक सहकारी समिति बनाने के विषय में निवेदन किया था । आपने विश्वास दिलाया था कि मेरे इस बार यहां आने से पूर्व आप उसके विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेंगी ।”

मनोरमा बोली, “वह सब मैंने कर लिया है । तुम्हारे जाने के दो दिन पश्चात् ही सब जानकारी कर ली थी । साथ ही उसके लिए आवश्यक कागजात भी पूरे करा लिये हैं ।”

मनोरमा का अन्तिम वाक्य सुनकर विद्यासागर का मन कृतज्ञता से भर उठा । वह भावुकता में बोला, “जीजी ! आपने मेरे सिर का बड़ा भारी भार हल्का कर दिया । मेरे लिए ये दफ्तरी कारगुजारियां भुगताना बहुत कठिन काम है ।”

“और मेरे लिए निहायत सरल ।” कहकर मनोरमा मुस्करा रही थी ।

तभी शीला किसी काम से कोठी के अन्दर चली गई ।

विद्यासागर ने अपने मतलब से प्रथक कोई बात नहीं की, परन्तु मनोरमा योंही उसे छोड़ने वाली नहीं थी । वह दिलचस्पी ले रही थी उसके काम में ।

उसने पूछा, “कैसी प्रगति चल रही है तुम्हारे काम में ? तुम्हारे गांव के साधियों की रिपोर्टों से तुम्हें संतोष हुआ या नहीं ?”

“सब संतोषजनक थीं जीजी ! काफी मेहनत की है सभी लोगों

ने । अपने-अपने गाँव के हर प्रकार के जीवन की परखा है और सुधार के सुभाव भी बहुत सुन्दर-सुन्दर दिये हैं ।” उसने कहा ।

मनोरमा थोड़ी देर तक न जाने क्या सोचती रही और फिर बोली, “तो तुमने अपना जीवन जन-जागरण के लिए लगाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है ?

तुम्हारे माता-पिता को इससे बड़ी निराशा हुई होगी ।”

मनोरमा के इतना कहने पर विद्यासागर की आँखों में रामभगत, माँ और चमेली बहन का वह निराशामय चित्र सजीव हो उठा जो उसने शहर के लिए विदा होते समय देखा था ।

उसके नेत्र पसीज आये, परन्तु तुरन्त ही उसने कुर्ते की जेब से रुमाल निकल कर अपनी आँखों के कोयों की नमी पोंछते हुए कहा, “इसमें कोई सन्देह नहीं जीजी ! मैंने अपने माता-पिता और छोटी बहन चमेली की आशाओं पर तुषारापात किया है । वे मुझे जो कुछ आशाएँ लगाये बैठे थे, मैं उनकी पूर्ति न कर सका ।”

विद्यासागर की भोली शकल मनोरमा के हृदय में गड़ती जा रही थी । उसके होंठों से निकलने वाला एक-एक शब्द अपनी सचाई की तस्वीर मनोरमा की आँखों के सामने चिपकाता जा रहा था ।

मनोरमा उसकी बात सुनकर मुस्कराती हुई बोली, “अभी तो शुरू-आत की है तुमने ! आगे जीवन में किस-किस की आशाओं पर तुषारापात करोगे, इसे कौन जाने ?”

विद्यासागर ने गम्भीरतापूर्वक मनोरमा के चेहरे पर देखा । मनोरमा की मोटी-मोटी आँखें भी उसके चेहरे पर बिछ गईं । दोनों एक दूसरे को पढ़ने का प्रयास कर रहे थे ।

वह बोला, “छोटे दायरे को छोड़कर बड़े दायरे में प्रवेश करने पर छोटे दायरे के लोगों को तकलीफ होती ही है जीजी ! इसे सहन करना चाहिए । बड़े कार्य की पूर्ति के लिए छोटे कार्य का बलिदान देना चाहिए ।”

मनोरमा एकदम बात बदलती हुई बोली, “तब क्या माता-पिता की आज्ञा का पालन करना छोटा कार्य है तुम्हारी दृष्टि में ?”

देशभक्त मुस्करा कर खड़ा होता हुआ बोला, “अब आज्ञा चाहूँगा आप से । माता-पिता, बहन-भाई और स्त्री के सम्बन्धों के विषय में फिर किसी दिन खुलकर बातें करेंगे जीजी !”

तभी शीला अन्दर से एक प्लेट में कुछ तराशे हुए फल लाती हुई बोली, “लो तुम्हारी सेवा करने को जो फल तराशने लगी तो साथ में उँगली भी तराशी गई ।”

शीला की उँगली से खून टपक रहा था और वह मुस्करा रही थी । विद्यासागर ने जेब से रुमाल निकालकर एक पट्टी फाड़ी और उसे पानी में भिगोकर उँगली पर बाँध दिया ।

मनोरमा बोली, “हँ,—हँ यह क्या कर रहे हो तुम ? इस पर स्प्रिट डालो । पानी मत लगाओ । पक जायगी यह चोट ।”

विद्यासागर मुस्करा कर बोला, “मेरे हाथ की बँधी हुई पट्टी कभी पकती नहीं जीजी ! इस बार आजमाकर देखिये ।”

फिर तीनों ने बैठकर फल खाये । उसके पश्चात् शीला और विद्यासागर ने मनोरमा जीजी से विदा ली ।

: ११ :

ठीक सात दिन पश्चात् विद्यासागर अपने गाँव में आया ।

रामभगत की तबियत खराब थी । उसे तीन दिन से ज्वर आ रहा था ।

चमेली चूल्हे पर बँठी रोटी बना रही थी और उसकी माँ रामभगत के पूरे हुए गाढ़े के थान को पूरा करने में जुटी थी ।

विद्यासागर सीधा रामभगत के पास पहुँचा । उसका शरीर ज्वर से जल रहा था ।

उसे देखकर रामभगत को लगा कि मानो उसके जलते हुए शरीर का विद्यासागर ने छूकर शीतल कर दिया ।

इतने तेज बुखार में भी वह बोला, “बेटा आ गये तुम । मेरी फिकर न करना । सब ठीक है । ऐसे बुखार तो आजकल आही जाते हैं । तेरा वह काम तो ठीक हो गया, जिसके लिए तू सहर गया था ।”

उसने संतोष प्रकट करते हुए कहा, “बापू तुम्हारे चरणों की कृपा से वह तो ठीक हो गया ।”

और इतना कहकर जरा गमगीन सा होकर बोला, “बापू ! मैं तुम्हारे कुछ काम नहीं आ रहा हूँ । तुम बीमार पड़े हो, माँ खड़ी पर कपड़ा बुन रही है, चमेली चूल्हा फूँक रही है और मैं जन-सेवा की बातें सोचता फिर रहा हूँ ।”

उसकी माँ भी तब तक वहाँ आगई । बेटे के ये शब्द सुनकर उसके मन में उसके प्रति जो क्रोध था । वह काफ़ूर हो गया । और वह भीम जैसी नरम होकर बोली, “बेटा गाँव की हालत बड़ी खराब होती जा रही है । पड़ोस के घर में कोई चाहे दस दिन के फाके से बंठा रहे, तो कोई यूँ पूछने वाला नहीं कि तेरा क्या हाल है ।

तीन दिन से तेरे बापू खाट से नहीं उठे । कल से एक पेंसाँ भी नहीं है घर में । यह थान परा हो जाता तो तीन रुपये मजूरी के मिल जाते । इसीलिए सुबह से इसे पूरा करने पर जुटी हूँ ।”

विद्यासागर के दिल में अपने प्रति पश्चाताप घुमड़ रहा था । वह सोच रहा था कि यह कंसी जन-सेवा है ? जो व्यक्ति अपने घर की समस्याओं को नहीं सुलझा सकता वह किसी की सेवा क्या कर सकेगा ? उसके घर पर तड़पते हुए प्राणियों की परेशानियाँ उसके दिल और दिमाग को हरदम कचोटती रहेंगी ।

वह इसी विचार में भ्रमनाता हुआ घर से निकल पड़ा । दुबारी के दरवाजे की चौखट पर पैर रखा तो कुछ ध्यान आया और लौटकर

माँ को पाँच रुपये का नोट देकर बोला, “इनका अनाज मँगाले माँ ! मैं अभी आता हूँ।”

उसकी माँ का दिल दूना हो गया। पाँच रुपए हाथ में आने पर उसकी सारी चिंताएँ जाती रहीं। उसे विश्वास हुआ कि उसके बेटे ने अपने माँ-बाप की दिक्कत को अनुभव किया।”

रामभगत लेटा-लेटा यह सब देख रहा था। उसका दिल गद-गद हो उठा। उसकी आशाएँ खिल उठीं। उसे विश्वास हुआ कि उसके लड़के ने चाहे नौकरी न की हो लेकिन वह अपनी आर्थिक दशा सुधारने की ओर से अनभिज्ञ नहीं है।

: १२ :

शीला ‘भारतीय सहयोग समिति’ के कार्यालय में बैठी थी। कार्यालय शीला देवी की कोठी का ही एक कमरा है जो उसने समिति के बिना किराये दे दिया है।

समिति की रजिस्टर कराने के कागज़ों का फ़ाइल सामने खुला था। सोच रही थी कि दूसरे दिन वह इस कार्य को पूरा करे।

इसी समय दरवाजे से बाहर दृष्टि गई तो क्या देखा कि विद्या-सागर चला आ रहा है।

वह गाँव गया ओर आया। थक गया था काफ़ी।

जब से रुमाल निकाल कर पैरों को झाड़ता हुआ दरी पर बिछी चाँदनी के ऊपर शीला के सामने जा बैठा।

शीला ने पूछा, “क्या गये नहीं गाँव ?”

“गया भी था, ओर आ भी गया शीला ! घर पहुँचा तो देखा पिताजी गहरे उबर में पड़े थे ओर माँ लड्डू पर कपड़ा बुन रही थीं। छोटी बहन चमेली खाना बना रही थी ओर पारात में माँडने के लिए आटा नहीं था।



ट्यूशन के पाँच रुपये जो मदन बाबू से उधा कर ले गया था माँ को देकर सीधा वापस लौट आया।”

शीला बोली, “गाँव में यह कठिनाई तो आयेंगी ही तुम्हारे सामने ! शहर में ट्यूशन पढ़ाकर तुमने अपनी पढ़ाई के साधनों को पूरा कर लिया था। गाँव में रहने से वह साधन भी हाथ से जाता रहा।”

वह बोला, “इस बार मैं वह काम करने की बात सोच कर आया हूँ, जो मैं गाँव में रहकर भी कर सकूँ।”

“ऐसा काम तो लिखने-पढ़ते के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता।” शीला बोली।

“तो वही करूँगा मैं शीला ! मैं कर क्या नहीं सकता ? चौथा रास्ता बनाना है मुझे इन्सान के चलने के लिए। एक चौथे समाज का निर्माण होगा उससे।” वह बोला।

“तो लेखक बनने का विचार किया है तुमने ?” शीला ने पूछा !

“बुरा तो नहीं है कुछ यह विचार, तुम्हारे विचार से ?” उसने शीला के चेहरे पर सरल दृष्टि से देखते हुए पूछा।

“कलाकार, और वह भी साहित्य का कलाकार। साहित्यकार को मैं परमात्मा का स्वरूप मानती हूँ।” श्रद्धा के साथ शीला ने कहा।

विद्यासागर के हृदय में शीला के शब्दों ने आनन्द की गुदगुदी पैदा कर दी। वह बहुत ही सरल भाव से बोला, “शीला ! तुमने मेरे इच्छित कार्य को श्रद्धा की दृष्टि से देखा, इसके लिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। विरोधी भावना रखने वालों का कभी मेल नहीं हो सकता।”

विद्यासागर के शब्द सुनकर शीला अन्दर-ही-अन्दर मुग्ध हो उठी।

फिर मुस्कुरा कर बोली, “आपको इस कार्य में मनोरमा जीजी से बहुत सहयोग मिलेगा। उनके पति एक प्रसिद्ध प्रकाशक हैं। प्रकाशन का उनका बहुत बड़ा कारबार है।”

यह सुनकर विद्यासागर की आत्मा खिल उठी। अपनी प्रतिभा,

श्रीर योग्यता पर उसे भरोसा था। साधन पाकर उसे हार्दिक संतोष हुआ।

: १३ :

संध्या को शीला और विद्यासागर मनोरमा जीजी की कोठी पर गये।

मनोरमा कोठी के बाहर लॉन में कुर्सी डाले बैठी थी।

शीला और विद्यासागर की उसने खड़ी होकर आवभगत की। चपरासी तुरन्त दो कुर्सियाँ ले आया।

दोनों उन पर बैठ गये।

मनोरमा ने पूछा, “गाँव, नहीं गये क्या?”

विद्यासागर को दुबारा अपनी गाँव जाकर लौट आने की कहानी दोहरानी पड़ी।

मनोरमा ने दिल से उसकी कठिनाई को अनुभव किया। वह उसे आर्थिक सहायता देना चाहती थी परन्तु यों ही आर्थिक सहायता लेने को वह कभी तैयार नहीं हो सकता था। यह बात भी उससे छिपी न थी।

मनोरमा बोली, “तुम कुछ लिखने का काम करो। अंग्रेजी, हिन्दी में एम. ए हो। अंग्रेजी की अच्छी-अच्छी पुस्तकों का हिन्दी से अनुवाद करो। मैं उनके प्रकाशन का प्रबन्ध करूँगी।” मनोरमा ने कहा।

“ठीक यही कार्य करने का निश्चय करके मैं शहर आया हूँ जीजी! आपने मेरे विचारों को पुष्टि और सहयोग प्रदान किया, इसके लिए मैं आपका हार्दिक कृतज्ञ हूँ।”

“कृतज्ञ होने की इसमें कोई बात नहीं है। मैं दिल से चाहती हूँ कि तुम्हें तुम्हारे सोचने, विचारने और कार्य करने में सहयोग दे सकूँ।” मनोरमा ने मुस्कराते हुए कहा।

विद्यासागर ने मनोरमा की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

वह कृतज्ञ था और इसी कृतज्ञता के भाव में उठकर चला आया ।  
शीला उसके साथ थी ।

: १४ :

विद्यासागर आज रात्रि को शहर में ही ठहरा ।

शीला और विद्यासागर मनोरमा की कोठी से ठीक नी बजे लौटे ।

शीला की माँ प्रतीक्षा में बैठी थीं ।

दोनों को आते देखकर बोलीं, “कहाँ से आना हो रहा है इस समय ?”

शीला ने मुस्कराकर कहा, “मनोरमा जीजी के यहाँ गये थे माँ !  
कुछ काम था ।”

“तो फिर किया कुछ मनोरमा ने ?” माँ ने पूछा ।

“पूरा-पूरा आश्वासन दिया है अपने सहयोग का ।” शीला बोली ।

शीला की बात सुनकर माँ की हार्दिक संतोष हुआ । वह बोलीं,  
“बेटी मनोरमा बहुत बड़े दिल की लड़की है बेटा । वह तो भगवान् ने  
उसकी मर्जी का पति नहीं दिया उसे, वरना अगर उसे उस जैसा पति  
मिल जाता तो आज देश भर में नाम होता उसका ।”

विद्यासागर ने अवाक् होकर शीला की माँ की बात सुनी । वह  
समझ ही न पाया कुछ ।

सन्न सा रह गया शरीर । कोई प्रश्न भी नहीं किया उसने ।

शीला बोली, “तुम्हें आश्चर्य हो रहा है । मनोरमा जीजी को वास्तव  
में परमात्मा ने बहुत ही मधुर कंठ दिया है । कितना सुरीला स्वर निक-  
लता है उससे कि क्या कहूँ बस ? साज का स्वर फीका पड़ जाता है  
उनके कंठ-स्वर के सामने ।”

विद्यासागर के कानों में शीला के शब्दों ने प्रवेश करके उसके दिल  
और दिमाग को झनझना दिया । उसे सोचने और विचारने पर मज-  
बूर कर दिया ।

परन्तु वह बोला फिर भी कुछ नहीं ।

शीला बोली, “अपनी यूनिवर्सिटी के सब कालिजों के विद्यार्थियों में प्रथम पुरस्कार पाया था मनोरमा जीजी ने और जो मीरा का नृत्य किया था वह तो आज भी मेरी आँखों में थोड़ा ध्यान करने पर साकार हो उठता है !

मैं केवल आठ वर्ष की थी उस समय ।”

“ठीक आठ वर्ष की थी तू ।” सतर्कता के साथ शीला की माँ ने कहा । “तेरी याद बिल्कुल ठीक है ।”

: १५ :

दूसरे दिन सुबह की गाड़ी से विद्यासागर अपने गाँव में आ लिया । रामभगत लिहाफ़ ओढ़े खटिया पर बैठा था । उसे बुखार नहीं था अब ।

विद्यासागर चमेली के लिए रेवड़ी, दो केले और रामभगत के लिए दो शंतरे और दो मौसमी लाया था ।

सब चमेली के हाथों में देकर बोला, “ले चमेली ! माँ को दे-दे । और एक मौसमी का रस निकलवाकर बापू के लिए ले आ ।”

विद्यासागर की माँ ने चमेली से रुमाल में बँधी पोटली लेकर खोली और उसमें से एक केला चमेली को देती हुई बोली, “ले चमेली अपने भंग्या की कमाई में तेरा भी हिस्सा भेजा है भगवान् ने ।”

और फिर मौसमी काटकर फूल की कटोरी में रस निकालकर रामभगत के पास लाई ।

विद्यासागर रामभगत की पाँयत बैठा था ।

बाप-बेटों को पास-पास बँठे देखकर विद्यासागर की माँ का सीना चार इंच ऊँचा हो गया ।

• कल जिस समय विद्यासागर शहर से लौटा था तो उसकी माँ की मानसिक दशा और थी और आज जब चमेली ने रुमाल की छोटी सी पोटली लेजाकर उसके हाथों दे दी तो उसकी मानसिक दशा और थी ।

चमेली ने घर की बाहर वाली दुबारी में जाकर वह केला खाया । भय्या की कमाई का लाया हुआ केला था । उसे खाने में चमेली को जो आनन्द आया उसे वह बखान नहीं कर सकती थी ।

: २६ :

विद्यासागर ने अपने घर की दुबारी को लिपवा कर साफ कराया चार भले आदमियों के बैठने-उठने का ठिकाना बनाया ।

संध्या समय रामसिंह को पता चला कि विद्यासागर गाँव में आया हुआ है । उससे मिलने आया तो रामभगत की बीमारी का पता चला ।

वह दुखी होता हुआ बोला, “जब घर में एक ही आदमी कमाने वाला हो और वही खाट पकड़ले तो सारे परिवार की जान निकल जाती है ।”

रामभगत बोला, “भय्या रामसिंह ! आज की मंहगाई ने ऐसी कमर तोड़ी है कि महीने भर का जोड़-तोड़ भी पूरा नहीं होता । और फिर उसमें जब माँदगी आ जाती है तो घर का ढचरा ही बिगड़ जाता है ।”

“इसमें क्या शक है भगतजी !” रामसिंह बोला, “जिस महीने एक भी पेंठ खराब हो जाती है उस महीने का खर्चा चलना कठिन हो जाता है ।”

गाँव में रामभगत को सभी भगतजी कहकर पुकारते हैं ।

विद्यासागर ने अपने पिता रामभगत और रामसिंह के जीवन की हठिनाइयों में झँका । यानी एक सप्ताह की मार सहने की उनमें शक्ति नहीं है ।

वह बोला, “और कंसी गुजरी पिछले हफ्ते में ? दरोगा जी ने नकू के रुपये दिए या नहीं । भूमन का वेतन चौधरी रूपसिंह से

वसूल हुआ या नहीं। लाला चोखेराम के फारम पर काम करने वालों का क्या हाल रहा ?”

रामसिंह ने इन सब बातों का खुलासा जवाब दिया और कहा, “भय्या ! सरकार ने जब से जमींदारी खतम करके भूमधर बनाये हैं तब से तो धरम धोरा ही नहीं रहा। जहाँ भी देखो वहाँ गरीब ही मारा जाता है।”

“हमारे जानवरों को खेतों में से चारा देना तो दूर की बात है खेतों के डोलों पर की घास खोदने की भी मनाई कर दी गई। तीन दिन से चमारों की भैंसें भूखी खड़ी हैं।”

“भैंसें भूखी खड़ी हैं ! यह तुम क्या कह रहे हो रामसिंह ?”

“ठीक कह रहा हूँ भय्या ! कनकू, भूमन और लाला चोखेराम के फारम के सब चमारों ने एक दम काम पर जाना बन्द कर दिया।” रामसिंह बोला।

“फिर क्या हुआ ?”

“उनकी हमदर्दी में गाँव के सब चमार काम से बैठ रहे।”

“फिर क्या हुआ ?” उसने पूछा।

“गाँव के भूमधरों ने अपनी मिटिंग की और चमारों को अपनी जमीनों में घास तक खोदने की मनाई कर दी।” रामसिंह बोला।

“फँसले की कोई बात नहीं चली ?” उसने पूछा।

“वे हमसे फँसला क्यों करने आयेंगे भय्या ! हमें गरज होगी तो हम ही नाक रगड़ते हुए सौ बार उनके दरवाजों पर जाकर गिड़गिड़ा-येंगे।” रामसिंह बोला।

“यह कभी नहीं होगा रामसिंह ! इससे निसाखतिर रहो।” और इतना कहकर वह सिर खुजाता हुआ दुबारी में घूमने लगा।

फिर जरा सोचकर बोला, “तुम अपनी मंडैया को चलो और बारह वर्ष से अठारह वर्ष तक के लड़कों को कहो कि जो भी उनके पास पहनने के कपड़े हैं उन्हें धोकर साफ़ कर लें।”

इतना कहकर उसने दो रुपए का नोट निकाल कर रामसिंह को देते हुए कहा, “लो, इसकी साबुन लेते जाना लाला चोखेराम की दूकान से। मैं जब संध्या को मंडैया में आऊँ तो मुझे सब लड़के साफ़ कपड़े पहने हुए मिलें।”

रामसिंह देखता ही रह गया विद्यासागर की दरियादिली को।

रामभगत ने नेत्र मूँद कर आशीर्वाद दिया, “राजा करण से दानी बनो बेटा !”

: १२ :

संध्या को विद्यासागर चमारों की मंडैया में पहुँचा तो उसने देखा बारह वर्ष से अठारह वर्ष तक के बीस हूँट-पुँट लड़के साफ़ सुथरे बने लड़े थे।

आज दिन भर उन्होंने कपड़ों और शरीर की सफ़ाई की थी। दो चार ने अपने सिरों में तेल डालकर बालों को कंधा भी कर लिया था। शेष सबके बाल सूखे ही थे।

विद्यासागर के गाँव से शहर दस मील दूर था। उसने बीसों लड़कों को दूसरे दिन सुबह शहर के लिए पैदल रवाना होने का संदेश दे दिया।

रामसिंह ने उनके साथ शहर जाने का भार अपने कंधों पर लिया।

इसके बाद उसने पूछा, “अच्छा अब सच-सच कहो क्या तीन दिन से तुम्हारी गाय-भैंसों को चारा नहीं मिला ?”

उसकी बात सुनकर झम्मन पहलवान मुस्कराता हुआ बोला, भय्या ! जब तुम हमारा साथ दे ही रहे हो तो तुमसे कोई बात छिपाना पाप है।

हमारी भैंसों और गायों को चारा न मिले, ऐसा कहीं हो सकता है ? हमें भी भगवान् की दया से वे-वे दाव याद हैं कि लाला चोखेराम, चौधरी रुपसिंह और दरोगा की सब चालबाजी घरा ही रह जायगी।

मैं इन सबके पास काम कर चुका हूँ भय्या ! सबके रग-पट्टों से वाकिफ हूँ ।”

विद्यासागर ने भ्रमन की इतमीनान-पूर्ण बात सुनी, परन्तु उसे संतोष न हुआ ।

बोला, “कैसी बातें करते हो भ्रमन ! एक तरह चलना सीखो जिन्दगी में । अपनी चाल को बदलो । सीधी तरह बताओ कि तुम लोगों के पास अपनी भैंसों को खिलाने के लिए चारा है या नहीं । यदि है तो ठीक है और अगर नहीं है तो उसका प्रबन्ध किया जाय ।”

भ्रमन सहम गया । वह दीन भाव से उसके सामने आता हुआ बोला । “भय्या ! गलती माफ करना मेरी ।”

“तुमने कोई गलती नहीं की भ्रमन !” उसे सीने से लगाता हुआ विद्यासागर बोला । “मैं तुम्हें अपना भाई समझता हूँ । तुम्हारी इज्जत मेरी इज्जत है । मैं भी तुम जैसा ही एक मजदूर हूँ । भगवान् ने कोई सरमाया तुम सबकी तरह मेरे भाग्य में भी लिखकर नहीं भेजा ।”

कनकू को विद्यासागर की बातें बहुत पसंद आईं । वह लट्टू हो गया उस पर । हाथ जोड़कर बोला, “भय्या समझ गया मैं तेरे इसारे को । दरोगा जी और चौधरी रूपसिंह ने हमें जो चोरी छुपके औरों के खेत काट कर अपने ढोरों को खिलाने की जो बान डाल दी है, वह तुम्हारे साथ रहकर छोड़नी पड़ेगी । उसे छोड़ने को हम खुशी-खुशी तय्यार हैं ।”

“तुम भी तय्यार हो भ्रमन ?” और फिर मंडेया के सब चमारों की ओर मुँह करके कहा, “कसम लो सब कि आज से कभी किसी दूसरे के खेत में चोरी नहीं करोगे ।”

मंडेया के जन-बच्चे ने चोरी न करने की कसम ली ।

विद्यासागर ने सी रपया भैंसों के चारे के लिए दिया और कहा, “मैं कल कलक्टर साहब से मिलूँगा । उनके सामने आप लोगों की दिक्कत



रखूँगा और प्रयत्न करूँगा कि जो सरकारी बंजड़ जमीन पड़ी है उसमें से कुछ जमीन तुम लोगों को चरागाह के लिए मिल जाय ।”

विद्यासागर का सहारा पाकर भूमन, कनकू और रामसिंह की हिम्मत दुगनी हो गई । वे भावनाओं में बहकर बोले, “भय्या ! इस बेर बड़ी जात वालों से टक्कर हुई है । तुम्हारी मदद से अगर जोट बराबर भी छूट जाय तो भगवान् का लाख-लाख सुकर भेजेंगे ।”

विद्यासागर के चेहरे पर उनकी बात सुनकर मुस्कराहट आ गई ! वह सरल भाव से बोला, “किसी से टक्कर नहीं है रामसिंह ! टक्कर ग़लत बात से है; और ग़लत बात टिक नहीं सकती । कनकू और भूमन के पैसे उन्हें दे ही देने चाहिए थे ।”

चलते समय वह बोला, “कनकू, भूमन और रामसिंह ! डरना नहीं किसी से, चाहे कोई लाट साहब भी क्यों न आये गाँव में । मुझे पछे बिना किसी कागज पर अंगूठा न लगाना ।

विजय तुम्हारी ही होगी ।”

: १८ :

दूसरे दिन विद्यासागर भोर के तड़के खड़ा होकर कुर्त्ता गले में डालता हुआ रामभगत की छाट के पास जाकर बोला, “बापू ! शहर जा रहा हूँ । एक जरूरी काम निकल आया ।”

रामभगत बोला, “ऐसा क्या जरूरी काम निकल आया ? अभी कल ही तो आया है शहर से ।” और फिर ज़रा रुक कर बोला, “तू पागल मत बन । इन चमारों के झूठे में पड़कर तू मेरा गाँव भर से भगड़ा करा देगा ।

किसी का कुछ नहीं बिगड़ेगा । ये चमार फिर जाकर उनकी जूतियाँ सहलाने लगेंगे और मैं उनसे बातें करने लायक भी नहीं रहूँगा ।

फिर क्यों काम देंगे वे मुझे ?”

वह बोला, “काम की चिंता न करो बापू ! काम की कमी नहीं रहेगी अपने पास । मजदूरी करने वाले को काम की क्या कमी ?”

इतना कहकर रामभगत के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह घर के द्वार से बाहर हो गया ।

खेतों ही खेतों बाट और मेंढ़ों पर होता हुआ सुबह चार बजे की रेल से शहर पहुँच गया ।

सीधा ‘भारतीय सहयोग समिति’ के दफ्तर में पहुँचा और आश्चर्य-पूर्वक देखा कि शीला दफ्तर में भाड़ू लगा रही थी ।

विद्यासागर ने पीछे से जाकर चुपके से कहा, “शीला !”

शीला ने चौंक कर द्वार की ओर देखा और विद्यासागर को देखकर मुस्कराती हुई बोली, “गाँव में मन नहीं लगता शायद ! कुछ-न-कुछ बहाना निकाल कर शहर चले ही आते हो ।”

शीला की बात विद्यासागर के मन में मिसरी की डली की तरह घुल गई । हल्की सी मुस्कराहट के बाद बोला, “चला क्या आता हूँ शीला ! अभी गाँव में जाकर भली प्रकार बसा भी नहीं था कि उलझने सामने आ गई ।”

“आज क्या उलझन लेकर आये हो, जुरा सुनूँ भी तो ।” शीला बोली ।

“केवल सुनने से काम नहीं चलेगा शीला ! उलझन बड़ी है और पहले ही बार में गाँव के सब भूमिधरों से टक्कर लेने की समस्या आखड़ी हुई है ।

फिर पूरा किस्सा शीला को सुनाया और अन्त में बोला, “चिन्ता की बात नहीं है जरा भी । मैंने सब कुछ सोच लिया है ।”

“क्या सोच लिया है तुमने ?” शीला ने पूछा ।

“तुम फुर्ती के साथ जाकर विनयमोहन को बुला लाओ । तब तक मैं कलक्टर साहब के लिए एक प्रार्थना-पत्र लिखकर तैयार करता हूँ ।” वह बोला ।

शीला आनन-फानन में जाकर विनयमोहन को बुला लाई ।

विनयमोहन ने विद्यासागर से सादर नमस्कार करके पूछा, “क्या आज्ञा है साथी ? किस लिए विनय को याद किया ?”

“विनय ! गांव जाते ही एक समस्या सामने आ गई । गांव के भूमिधरों ने गांव के मेहनतकश चमारों को अपनी ज़मीन से उनके मवेशियों के लिए घास खोदने को मना कर दिया ।”

यह सुनकर विनय की आंखें लाल हो गईं । वह कड़क कर बोला, “जुल्म की हद है यह । बेज़बान जानवरों का चारा भी रोक देना कहां की शराफ़त है ?

“इसके लिए मुझे क्या करना होगा, आज्ञा करो ।”

विद्यासागर उसी गम्भीरता के साथ बोला, “क्रोध से काम बिगड़ता है विनय ! इसलिए क्रोध कभी मत किया करो ।

गांव से चमारों के बीस लड़के आ रहे हैं । उनके लिए बीस काली और बीस लाल पालिश की डिबियां चाहिएं, बीस बुरुश चाहिएं और बीस तोलिये ।”

तोलियों की बात सुनकर शीला बोली, ठहरिये ! तोलियों के बजाय मेरे पास चार फटी धोतियां रखी हैं । उनके फाड़कर बीस टुकड़े बना लीजिये ।”

“तोलियों की बात हल कर दो शीला ने । पालिश की डिबियों और बुरुशों का प्रबन्ध करना रह गया ।

इन लड़कों को कालेज के बोर्डिंग हाउसों में ले जाकर बिठा देना । सब कमरों में चार साथियों का डेपूरेसन लेकर घूम जाना और उन्हें सारी परिस्थिति का ज्ञान करा देना ।

संध्या तक जितना पैसा एकत्रित हो वह मेरे पास लाना ।”

“आप निश्चिन्त रहें ।” विनयमोहन ने कहा ।

विनयमोहन आश्वासन देकर चला गया ।

: १६ :

विनय मोहन के चले जाने पर विद्यासागर शीला से बोला, “विनय बड़ा कर्मठ साथी है शीला ! जिस काम पर जुटता है रात दिन एक कर डालता है ।”

“इसमें कोई सन्देह नहीं ! विनय को कोई भी काम सौंप कर में निश्चिन्त हो जाती हूँ । समझ लेती हूँ कि यह कार्य तो अब हो ही जायगा । और वह कार्य हो ही जाता है ।

आज ही संध्या को तुम देख लेना कि इस फ़र्श पर पैसों का ढेर लग जायगा ।”

“मझे इसका पूर्ण विश्वास है । और यदि ये बच्चे अपनी मेहनत से अपने मवेशियों के चारे का प्रबन्ध कर सके तो कोई कारण नहीं कि इनके माता पिताओं को भूमिधरों के सामने झुकना पड़े ।” दृढ़ता पूर्वक कहा ।

विषय बदल कर विद्यासागर बोला, “समय कम है और काम बहुत करने हैं शीला । तुम संध्या को एक प्रेस कान्फ़ेंस का प्रबन्ध करो और में तब तक कलक्टर साहब के नाम एक पत्र लिखता हूँ ।”

“अच्छा नमस्कार !” शीला खड़ी होती हुई मुस्करा कर बोली, “में अपने काम पर जाती हूँ, आप अपना काम करें ।”

: २० :

संध्या को ‘भारतीय सहयोग समिति’ के कार्यालय में शहर के सब पत्र-प्रतिनिधि पधारे ।

शीला ने आदर-भाव से सबका स्वागत किया और छोटे से जलपान का भी प्रबन्ध किया ।

विद्यासागर ने पत्र-प्रतिनिधियों को पूरी स्थिति का ज्ञान कराया और अन्त में कहा, “सच्चाई की आवाज़ को बुलन्द करना आप सबका काम है ।

अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने को पत्रों का प्रकाशन होता है। जो पत्र ऐसा नहीं करते वे पत्र नहीं, विज्ञापन के इस्तहार हैं।

मुझे विश्वास है कि आप मेरे गाँव के इस किस्से को सुर्खी देकर अपने पत्रों में प्रकाशित करेंगे।”

शहर के प्रायः सभी पत्र-प्रतिनिधियों ने विद्यासागर को विश्वास दिलाया कि वे उसके कार्य में उसे भरसक सहयोग देंगे।

इसी समय विनयमोहन गाँव के बीस लड़कों की टोली को लेकर वहाँ आ पहुँचा।

कार्यालय के द्वार पर सबकी कतार लगाकर बोला, “सब एक स्वर में कहो इन्कलाब जिन्दाबाद।”

पूरी टोली ने कहा, “इन्कलाब जिन्दाबाद।”

इन्कलाब के नारे से सब पत्र-प्रतिनिधियों का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया। पूरी टोली पर सबकी नजर गई।

विनयमोहन ने आगे बढ़कर तौलिये में बंधी ख़रीज़ की पोटसी विद्यासागर के सामने रखकर कहा, “सैंतालीस रुपया आठ आना आया साथी !”

“बहुत कुछ है विनय ! मवेशियों के चारे का प्रबन्ध इससे बख़ूबी हो जायगा।” विद्यासागर बोला, और उसका हृदय उल्लास से परिपूर्ण था।

उसे अपनी योजना में सफलता मिली।

: २१ :

दूसरे दिन सुबह शहर के सब पत्रों की पाँच-पाँच प्रतियाँ शीला ने लाकर विद्यासागर को दीं।

दो पत्रों ने तो मुख्य-पृष्ठ पर विनय के साथ आने वाले बीस लड़कों की टोली का चित्र भी छापा।

उसे देख कर विद्यासागर उछल पड़ा और खड़ा होता हुआ बोला,

“पत्र-प्रतिनिधियों ने खूब साथ दिया शीला ! कमाल कर दिया न्यूज छापने में ।”

“इसमें कोई सन्देह नहीं । आज शहर भर में हलचल रहेगी इसकी ।” शीला बोली ।

“शहर भर में ही नहीं शीला ! कलक्टर साहब पर भी प्रभाव पड़ेगा मेरे पत्र का । वह समझ सकेंगे कि उस पत्र की ग्रहमियत क्या है ?”

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी एक कार आकर कोठी के द्वार पर रुकी और उधर देख कर विद्यासागर बोला, “तो मनोरमा जीजी भी आगई मालूम देती हैं ।”

“वही तो हैं ।” शीला खड़ी होती हुई बोली और कार्यालय से निकल कर पोर्टिको में पहुँच गई ।

“नमस्कार जीजी !” शीला ने कहा ।

“नमस्कार शीला !” कहती हुई मनोरमा समिति के कार्यालय की ओर बढ़ गई ।

विद्यासागर उनकी प्रतीक्षा में खड़ा था । अन्दर प्रवेश करने पर उसने भी नमस्कार किया ।

मनोरमा बोली, “मुझे विश्वास था कि तुम यहाँ होगे । सुबह चाय की मेज पर जो समाचार-पत्र आये और उनमें यह सूचना पढ़ी, तो चाय पीना छोड़ कर सीधी इधर चली आई ।”

“गजब किया तुमने जीजी ! मैं क्या कहीं भागा जा रहा था ? चाय पीकर आतीं आप, आराम से ।” मुस्कराता हुआ विद्यासागर बोला और फिर शीला की तरफ घूमकर कहा, “शीला जीजी के लिए चाय का प्रबन्ध करो ।”

“वह तो होगा ही ! तुम न कहते, तब भी होता । अम्मा बिला कुछ खिलाये-पिलाये क्या इन्हें कभी यहाँ से जाने देंगी ?” शीला बोली और वह इतना कहकर कोठी में चली गई ।

मनोरमा सुधर कर चाँदनी पर बँठ गई। सुबह-ही-सुबह यों ही उठकर चली आई थीं। न बालों में कंधा, न माथे पर बिन्दो और साड़ी में भी सलवटे पड़ी हुई थीं।

विद्यासागर ने मनोरमा की ओर देखा और मनोरमा ने विद्यासागर की ओर देखा। विद्यासागर ने अपने मन से कहा, “सौन्दर्य को सजावट और बनाव-शृंगार की बरकार नहीं। कुंदन बिना नगीने के ही दमकता है।”

मनोरमा आँखों की पुतलियाँ तरेर कर मुस्कराती हुई बोली, “गाँव में जाते ही गुल खिला दिया तुमने विद्यासागर !”

विद्यासागर गम्भीरता पूर्वक बोला, “गुल खिलाया नहीं, खिल गया जीजी ! फूल के जब खिलने का समय आता है तो वह अपने आप खिल जाता है। मानव-जीवन का विकास हो रहा है। इसे कब तक दबाकर रखा जा सकता है ? कौन रोक सकता है इस विकास को ?”

मनोरमा मंत्र-मुग्ध हो गई विद्यासागर की बात सुनकर। उसने अपने मन से कहा, “विद्यासागर सच कहता है। जीवन में जवानी आती है, तो आती ही है। उसे कब तक दबाकर रखा जा सकता है ? उसका विकास अपने रूप का प्रदर्शन करेगा ही।”

तभी शीला ने आकर सूचना दी, “आप दोनों को अम्मा का बुसावा है।”

विद्यासागर और मनोरमा शीला के साथ कोठी में चले गये।

: २२ :

कनकू, भूमन, रामसिंह और उनके कई अन्य साथी रामसिंह की भोंपड़ी के सामने बैठे थे।

रामसिंह कल संध्या को शहर से लौट आया और वह अपने साथ राज के अखबारों का एक पुलन्दा भी लाया।

कनकू बोला, “यार भूमन ! हम तो विद्यासागर को मामूली लौंडा समझते थे, पर ऊ तो लीडर बन गया।”

कनकू की बात सुनकर रामसिंह मूँछों पर हाथ देता हुआ बोला, "लोडर के मामूली रे कनकू ! कलटूर साब तक आना-जाना है उसका । देखा नहीं तँने सारे अकबारों में क्या-क्या छपा दिया उसने । सारे सहर में सोर मचा के रख दिया ।"

कनकू ने अकबार खोलकर देखा तो उसमें अपने लड़कों का चित्र छपा मिला । उसे देखकर भम्मन भालू की तरह अपने काले और भारी शरीर को लेकर नाच उठा ।

फिर हककर बोला, "यू अकबार दरोगा जी कू में खुद देकर आऊँगा और कहूँगा कि अब बात यूँही थमने वाली नहीं है । हमने भी इसे सीधा पंडित जवाहरलाल तक न पहुँचा दिया तो हमारा नाम भी कनकू उस्ताद नहीं ।"

"इसमें का सक है यार कनकू ! दरोगा जी या चौधरी रूप सिंह, या लाला बोखेराम, हमारी मजूरी कैसे नहीं देंगे ?, जब मेहनत उनके खेत पर की है तो खाने पहनने कू कहाँ जाय ?" कनकू अकड़ के साथ बोला ।

तभी रामसिंह ने पूछा, "बैसे हाल-चाल कैसा है भूमधरों का ? जरा यह भी तो बताओ । कल कितने हल चले गाँव के ?"

.. भम्मन मूँछों पर ताव देता हुआ बोला, "प्राधे भी नहीं चले रामसिंह ! धरती सूखी जा रही है । होश उड़ रहे हैं भूमधरों के ।"

रामसिंह बोला, "विद्यासागर ने कह दिया है कि घबराने की जरूरत नहीं है । जानवरों को बराबर चारा मिलता जायगा । तुम लोग अपनी-अपनी भैंसों का दूध बेचकर अपने खाने-पीने का खर्चा चलाओ ।"

"और जिनके पास भैंसें नहीं है रामसिंह ! वे क्या करें ?" गम्भीरता-पूर्वक कनकू ने आगे बढ़कर पूछा ।

रामसिंह बोला, "उनकी मदद हम भैंसों वालों की तब तक करना चाहिए जब तक भूमधरों से कोई फैसला न हो जाय ।"

"बिल्कुल ठीक ।" कनकू ने गम्भीरतापूर्वक कहा ।



अन्त में रामसिंह बोला, “भाई कनकू और भूमन ! विद्यासागर ने ताकीद की है कि भगड़े की कोई बात पैदा न हो ! भूमधर तुम्हें कुछ भी कहें पर तुम गर्मी न खाना । अपनी भोंपड़ियों की हिफजत रखना । रात को पहरा बेना ।”

सबने एक स्वर में कहा, “विद्यासागर की बात पर हम पूरा-पूरा अमल करेंगे ।”

: २३ :

दरोगा जी के खेतों में कल एक भी हल नहीं गया ।

दरोगा जी अपने घर में माथे पर हाथ रखे खाट पर बैठे थे । छोटे भाई अमनसिंह ने हुक्का ताजी करके उस पर चिलम रखकर कहा, “दम लगाओ भैया !”

“दम क्या लगायें रूपा ! दम तो इन चमारों ने निकाल कर रख दिया । काम के सिर कैसे घर जाकर बैठे हैं ? जमाना बहुत बुरा आ गया । कमीनों ने सिर पर पेंर रखने शुरू कर दिये । पता नहीं आगे-आगे क्या होना है ?” दरोगा जी बोले ।

अमनसिंह लंगड़ाता हुआ जाकर खाट के पास पड़े मूढ़े पर बैठ गया । और फिर अपने पेंर की ओर संकेत करता हुआ बोला, “भय्या दरोगा ! इस पेंर ने साचार कर रखा हूँ वरना तो मैं अकेला ही सारी धरती को उधेड़ कर बीज देता । भेरे में जाता कनकू उस्ताद !”

कनकू ने बरवाजे के बाहर से अमनसिंह के बोल सुने । वह मूर्खों पर ाव देता हुआ सीना ताने अन्धर घुस आया और बांकी अबा से मुस्कराकर बोला, “तनखा न दो अमनसिंह ! भेरे में तो कनकू को न भेंजो । याद नहीं रहा वह दिन जब भट्टीकार, गाँव में मोघू सुनार के घर चोरी करती और लाठी खाकर तू पड़ा सिसक रहा था और मैं तेरी जिन्दा लाश को, कमील तक कंधे पे लाद के लाया था ।

किसी के एहसानों को मटियामेठ नहीं करना चाहिए ।”

एहसानों की बात कनकू की ज़बान पर आते ही दरोगजी थोरी चढ़ा कर मूँछें ऐँठते हुए गम्भीर आवाज़ में बोले, “तेरे ऐहसान कनकू ! हमें खूब याद हैं । तेरी बबोलत ही हम गाँव में टिके हैं, वरना तो कभी के भाग गये होते ।”

बात दरोगा जी ने इतनी भारी कह दी कि कनकू सकपकाया सा रह गया ।

दरोगा जी ने अपनी बात ज़रा आगे बढ़ा कर कनकू को और धर दबाया । वह थोरी बदल कर ध्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट चेहरे पर लाते हुए बोले, “अबे कनकू ! वह दिन भूल गया जब हफ्ते में दो बार चूतड़ों पर पुलिस की बेंतें पड़ती थीं । खेत कोई काटता था और पकड़ कर तुझे बुलाया जाता था । मार भी खाता था और दीवान जी की पूजा भी करनी पड़ती थी ।”

दीवान जी की पूजा की बात सुनकर कनकू पर नहीं रहा गया । वह कड़क कर बोला, “बस करो दरोगा जी ! जादा ऐहसान लादने की कोसिस मत करो कनकू पं । पूजा जब दिवानजी की की, और जब से उनसे पीछा छूटा है तब से आपकी कर रहा हूँ । रात-बिरात आस-पास के खेतों में चोरी करके ही दीवान जी का मुँह फूँकता था और वही काम आपने भी लिया है मुझसे ।”

दरोगा जी कनकू की बात सुनकर दंग रह गये उनकी समझ में ही न आया कि कनकू आज क्या कह रहा है । कनकू के मुँह से कनकू बोल रहा है या कोई और ।

वह फिर कनकू की ओर मुँह करके खिलखिला कर हँस पड़े ।

कनकू को दरोगा जी का हँसना भला नहीं लगा । उसे लगा कि वह उसकी पहली नासमझियों का मज़ाक उड़ा रहे हैं । मन में आया कि वह उन्हें झाड़े हाथों ले, लेकिन तुरन्त ही उसे रामसिंह के द्वारा विद्या-सागर द्वारा भेजे हुए संदेश की याद आगई ।

वह शांति पूर्वक बोला, “दरोगाजी ! आपने पुलिस की पिटाई से उस समय मेरी जान छुड़ाई इसके लिए मैं आपका एहसानमन्द हूँ । लेकिन आप मुझे एक चोर से भला आदमी न बना सके । आप खुद भले रहे और मुझसे चोरियाँ कराईं ।

मैं अब वे सब काम करने को तैयार नहीं हूँ ।”

कनकू की बात सुनकर दरोगा जी खून का घूँट पीकर रह गये । कनकू के शब्दों ने उनके सीने में जलन पैदा कर दी । वह ज़रा गर्मी के साथ बोले, “चोरी तू मेरे लिए करता था बे कनकू ?”

“और नहीं तो किसके लिए करता था ?” सीना उभार कर कनकू न पछ्छा ।

दरोगा जी कड़ककर बोले, “चोरी करता था शराब पीने के लिए गोشت खाने के लिए और हरामजदगियाँ करने के लिए ।”

दरोगा जी के मुँह से अपने लिए ‘हरामजदगी’ करने के शब्द कनकू के कानों पर दो हथौड़ों की चोटों के समान पड़े और उसका दिल और दिमाग झनझना उठे ।

कनकू का शरीर कांपने लगा । फिर भी उसने अपने को संभाला । और बहुत धीमे स्वर में बोला, “दरोगा जी मैंने अब शराब न पीने, गोشت न खाने और ‘हरामजदगी’ न करने की कसम ले ली है । इसलिए अब चोरी करने की जरूरत नहीं होगी ।”

कनकू की ज़बान से निकलने वाला एक-एक शब्द दरोगा जी के कानों में पड़कर सीने तक उवाला प्रज्वलित करता चला जा रहा था ।

दरोगा जी गम्भीर आवाज में बोले, “अब भी जरूरत पड़ेगी चोरी की कनकू ! गाँव से उजाड़ कर भगा दिये जाओगे, तब चोरी नहीं करोगे तो पेट किस चीज़ से भरोगे ? तुम्हारे नाम पुलिस के रजिस्ट्रों में, आवाज़ गवाँ के अन्दर दर्ज करा दिये जायेंगे । फिर वैसे ही उड़े चूतड़ों पर पड़ेंगे और वैसे ही बेगारें पुलिस को देनी होंगी ।”

इतनी कानून की बातें कनकू नहीं जानता था । उसने यह बात

पूरी सुनी भी नहीं। उसका दिमाग तो वहीं पर रुक गया जहाँ दरोगा जी ने उन्हें उजाड़ कर भगा देने की बात कही थी।

उसके मन में आया कि वह सीना तान कर कहदे, “किस जमा-मबं की छाती पर काला बाल है जो हमें इस गाँव से उजाड़ दे ? हम यहीं पैदा हुए हैं और यहीं रहेंगे।”

परन्तु उसने यह कहा नहीं। वह शांत भाव से बोला, “पेट भरने के लिए हम मजदूरी करेंगे। दरोगा जी और पुलिस के लिए हमें अब चोरी नहीं करनी होगी। पुलिस अब आपके जमाने जैसी नहीं रही है।” जरा चुटखी लेते हुए कनकू ने कहा और मुस्करा कर बोला, “अब छोड़ो दरोगा जी पुरानी बातों को। लो अकबार तो बांचो। देखो थारी म्हारी कैसी तारीफ़ छपी है इनमें।”

“हमारी तारीफ़, तुम्हारी तारीफ़ ! क्या कहते हो कनकू ?” सतर्क होते हुए कनकू के हाथ से अकबार लेकर दरोगाजी ने कहा। और फिर कोट की जेब से पुरानी निकिल की कमानियों वाला गोल शीशे का चदमा निकाला। उसे आँखों पर चढ़ा कर अकबार को इधर-उधर पल्टा।

कनकू पत्र में निशान लगे भाग पर उँगली रखता हुआ बोला, “जु छपी है तारीफ़। खूब पढ़-लिख कै देख लो।”

पत्र दरोगा जी को देकर कनकू लौट आया।

: २४ :

चौधरी रूपसिंह के छोटे भाई और बड़े लड़के ने नौकरों के काम पर न आने पर स्वयं हल जोड़े।

संध्या को जब मवेशियों के घेर में बैल खोरों पर बंधने को आये तो खैरा बैल, जो रूपसिंह को सब से प्यारा था, लंगड़ाता हुआ आया। रूप-सिंह ने पूछा, “खैरा बैल कैसे लंगड़ा रहा है ?”

उत्तर में बेटा नीची गर्दन करके बोला, “हलकी फ़ाली लग गई इसके पैर में बापू !”

“फ़ाली लग गई !” उचक कर रूपसिंह ने कहा, “तब तो तूने खैरे को बेकार कर दिया रे ! फसल बोने के सिर बंठ रहा तो नया बैल कहां से लाऊंगा ?”

तभी रूपसिंह का छोटा भाई लंगड़ाता हुआ घेर में दाखिल हुआ । बड़ी ही कठिनाई से वह आ रहा था ।

रूपसिंह की नज़र खैरे बैल की तरफ़ से हटकर छोटे भाई पर गई और उसे लंगड़ाता देखा तो कड़क कर बोले, “यह क्या हुआ रे धींगा ? लंगड़ा कैसे रहा तू है ?”

धींगा लाठी के सहारे दो कदम आगे रखकर बोला, “हुआ क्या भय्या ? बैल का पैर ऐसी बुरी तरह मेरे पैर पर पड़ा कि पूरा पंजा कुचला गया । दो उंगली और अँगूठे के नाखून ही उतर गये ।”

धींगा की बात सुनकर रूपसिंह अन्दर-ही-अन्दर भुन गया । उसे धींगा और अपने बेटे पर बहुत क्रोध आया ।

वह उसी सस्ती के साथ बोला, “तुम लोग सब निकम्मे हो । एक ने बैल को लंगड़ा कर दिया तो दूसरा खुद लंगड़ा होकर चला आया । ऐसे कैसे काम चलेगा तुम्हारा ? चमारों के दम पर अब खेती नहीं चलेगी ।”

रूपसिंह की बात सुनकर धीमा और उसका लड़का नीची गर्दन किये हुए घेर से बाहर हो गये ।

रूपसिंह के सामने किसी की परिवार भर में ज़बान खोलने की ताकत नहीं थी ।

रूपसिंह सोच रहे थे कि क्या उन्हें खुद भूमन के पास जाना होगा, क्योंकि फसल बीजने का यही समय था और अगर यह हाथ से निकल गया तो छः महीने के लिए जमीन खाली पड़ी रहेंगी ।

उन्होंने सोचा कि अगर बाद में चमारों से कुछ फंसला भी हुआ तो

क्या लाभ ? उनका तो इसी बीच में टेहला हो जायगा । मजदूरों का कुछ नहीं बिगड़ेगा । वे तो कहीं भी मजदूरी करके अपना पेट भर लेंगे । मुसीबत तो इज्जतदार आदमियों की है ।

चौधरी रूपसिंह इसी सोच-फिकर में थे कि सामने से उन्हें बगल में अकबार दबाये भूमन आता दिखाई दिया । उसके चेहरे पर व्यंग्य-पूर्ण मुस्कराहट थी ।

घर में घुसकर बोला, “जं रामजी की चौधरी !”

“जं रामजी की भूमन !” और फिर मुस्करा कर पछा, “कहो क्या हाल-चाल है तुम्हारी हड़ताल के ? तुम्हारी मटकियों का चून अभी निबटा या नहीं ?”

चौधरी रूपसिंह की बात भूमन के कलेजे को चीरती चली गई लेकिन क्रोध नहीं किया उसने । वह मुस्करा कर बोला, “हड़ताल के हाल चाल अकबार में पढ़ो चौधरी जी ! हमसे का पूछते हो ?”

इतना कहकर भूमन ने अपनी बगल में दबा अकबार चौधरी रूपसिंह के सामने खाट पर रख दिया । और फिर चौधरी के सामने फूटी खोर पर उकड़ बँठा हुआ बोला, “और रही मटकियों में चून की बात, सो वह अब खाली होने वाला नहीं है चौधरी जी ! हमारे बीस लड़के शहर में सरकारी नौकरी पा गये हैं ।”

“तुम्हारे बीस लड़के शहर में सरकारी नौकरी पा गये ?” आश्चर्य-पूर्ण स्वर में चौधरी रूपसिंह की जबान से निकला ।

चौधरी की सकपकाहट को देखकर भूमन ज़रा और सुधर कर बैठ गया । उसने मुस्करा कर बूसरा रहा चौधरी पर रखते हुए कहा, “नीयत ठीक हो तो भगवान् वो रोटी देता ही है चौधरी जी ! और हमारी गाय भैंसों को भी आपकी बया से चारा मिल रहा है ।”

भूमन के अंतिम शब्द सुनकर चौधरी रूपसिंह क्रोध में उबल कर बोले, “चारा तुम्हें कहाँ से मिल रहा है ? हम लोगों के खेतों से रात-बिरात खोरी करके तुम लोग अपना काम चला रहे हो । यह हम सब जानते हैं ।

लेकिन अभी कोई हमारे हाथों पर नहीं पड़ा है। जिस दिन कोई हाथ पड़ जायगा उस दिन न छुटी तक का खाया-पिया निकलवा लिया तो मेरा भी नाम रूपसिंह नहीं।”

“अब चढ़ेगा भी नहीं।” अभिमान के साथ भूमन बोला।

आप लोगों ने इधर-उधर के खेतों से न्यार इकट्ठा करने की जो बान हमें डाली थी वह हमने छोड़ दी है। हमारी मंडिया के जन-बच्चे ने क्रसम ले-ली है कि वह पराई चीज को मट्टी समान समझेंगा।”

भूमन की बात सुनकर चौधरी रूपसिंह आग बगूला हो उठे। उनकी आंखें लाल हो गईं और वह कड़केदार आवाज में बोले, “तो चोरी तू मेरे सिखाने से करता था बे भूमन !”

“और नहीं तो क्या भूमन अपने लिए पास पड़ोस वालों के खेतों से रोज दो-दो चार-चार गड़े न्यार काटकर लाता था ?” उसी मुस्तैदी के साथ भूमन ने जवाब दिया।

वह जरा सुधर कर बोला, “मेरे घर तो गाय-गोखरी कुछ भी नहीं है। फिर मैं न्यार की चोरी किसके लिए करता था ?”

“तो अब तो तू भगत बन गया भूमन !” क्रोध और व्यंग्य के साथ चौधरी रूपसिंह बोले।

भूमन कुछ बोला नहीं इससे आगे।

खड़ा होकर चलना चाहता था कि उसे खैरा बैल एक पैर ऊपर किये खड़ा दिखाई दिया। वह बराबर भूमन की ओर देख रहा था।

भूमन रुक न सका। वह खड़ा होकर बैल के पास गया और उसके पैर को संभाल कर देखा तो उससे खून बह रहा था।

भूमन बोला, “खैरे के पैर में किसने फाली मार दी ?”

“तुझे क्या ?” रूपसिंह उसी गर्मी में बोले। “तू हड़ताल वालों का साथ दे। खैरा मरता है तो मर जाये।”

खैरा बैल भूमन को बेटे के समान प्यारा था। उसे लँगड़ाता देखकर उसकी आंखों में आंसू आ गये। वह पास के कुएँ से जाकर एक

डोल पानी लाया और अपनी फटी चादर का कोना फाड़ कर खरे बेल के पैर का घाव-धोया फिर उस पर पानी के भीगे कपड़े की गद्दी रखी और उसे कसकर बांध दिया ।

यह सब करके भूमन चला आया । कोई विशेष बात चौधरी रूप-सिंह से नहीं हुई ।

चलते समय इतना ही कहा, “चौधरी जी ! हम मजूर लोग हैं । जहाँ शरीर हिलायेंगे, पेट भर लेंगे । हमारा आपके बिना काम चल जायगा लेकिन आपकी सफेदी हमारे बिना कायम नहीं रह सकती ।”

चौधरी रूपसिंह भूमन पहलवान को काफी दूर तक जाते हुए देखता रहा ।

मनमें कई बार आया कि वह उसे बुलाकर कह दें, “भूमन तू बचपन से इसी घर में पला है । तूने इसी घर का अन्न खाया है । आज इस घर का काम करना तूने कैसे बन्द कर दिया ?

यह घर बरबाद हो जायगा तो तू आबाद कैसे रह सकता है ?”

लेकिन जबान न हिली । मन के अहम और क्रोध ने उस पर ताला लगा दिया । स्वार्थ बन्धन भी ढीला न पड़ा । अकड़ बक्रार रही ।

: २५ :

लाला चोखेराम के फार्म पर कल जब एक भी चमार काम करने नहीं गया तो उनके मन में तलाबेली होगई । सुबह से शाम तक उन्होंने कई बार अपने हाथ की उँगलियों के पोरबों पर गिन-गिन कर उस दिन के नुकसान का तख्मीना लगाया ।

इसी परेशानी में उन्हें आज खाना भी अच्छा नहीं लगा । ललवाइन ने, पकवान बनाया था । पूड़ी, कचौड़ी और किशमिशों वाली खीर मलाने की ; लेकिन लाला चोखेराम के हलक से निवाला अन्दर नहीं उतर रहा था ।

ललवाइन बोली “किमैशं केशी तबियत शै ?”



“तबियत तो ठीक है ललवाइन लेकिन खाना नहीं खाया रहा। सब चमारों ने एका करके फारम पर काम करना बन्द कर दिया।

“क्यूँ शै ?” ललवाइन ने कढ़ाई से पूरी निकाल कर गर्माग लाला की थाली में रखते हुए पूछा।

“क्यूँ क्या ललवाइन ! गलती तो मुझ से हुई। मैंने खामए चौधरी रूपसिंह और दरोगा जी के चक्कर में आकर अपना नुकसा कर लिया।” दुखी मन से लाला चोखेराम बोले।

“थारी तो जूँ जुँ बढ़त हो त्यूँ-त्यूँ मत उलट-बावली होत जा है। थानू कितनी शमभायी कि थारी चौधरी और दरोगा शै कै-श मेल जोल ! शराबी, कबाबी, कहीं के। उन नीचन की शोहबत ! बैठक-उट्टक शै तुम अपना भी सत्यानाश करोगे।” ललवाइन बोली।

लाला चोखेराम अपनी भूल महसूस कर रहे थे। वह अपने फार्म के मजदूरों को समय पर वेतन देते थे। फिर उनका उस जन्मजात नादहिन्द चौधरी रूपसिंह और दूसरों का भी लेकर उकार न ले वाले दरोगा जी से क्या मेल ? नागहानी को उसने बैठे-बिठाये अपने काम ठप्प कर लिया।

ललवाइन बोली, “मैं पूछूँ शै ! जब हम सब मजूरों का टका टका टैम पं देत हैं तो हमारा काम कैश बन्द किया शै ?”

ललवाइन की बात का जवाब नहीं था लाला चोखेराम के पास वह शरमा कर गर्दन नीची करके बोले, “कह तो रहा हूँ कि दरोग के चक्कर में फंस कर मैंने खामखा अपने मजूरों को नाराज कर दिया।”

“नाराज करा है तो मनाओ अब जाकै। नहीं तो फसल में एक दान भी घर में नहीं आवैशै। चार दिन में शारी जमीन शूख के खंगार हो जाय शै।” ललवाइन बोली।

लाला चोखेराम उसी दम थाली पर से उठ कर खड़े हो गये। खाना नहीं खाया उन्होंने।

सीधे रामसिंह की भोंपड़ी पर जाकर आवाज दी, “रामसिंह !”  
रामसिंह पड़ोस में कनकू की भोंपड़ी में बैठा था। शहर जाने की तय्यारी थी।

लाला चोखेराम की आवाज सुनकर अपनी भोंपड़ी की तरफ आया और आदर भाव से नमस्कार करके बोला, “हुकम कीजिये सेठ जी ! कैसे तकलीफ की ? मुझे बुलवाते तो मैं खुद चला आता।”

“हाँ-हाँ चले क्यों नहीं आते रामसिंह ! तुम्हारा हमारा कुछ बँर थोड़े ही बँध गया है, और काम भी दोनों को वही करना है जो आज तक करते आते हैं।” लाताजी बोले।

लाला जी की बात पर रामसिंह पेंतरा काट कर बोला, “आप भूमधर हैं लाला जी ! आपकी तो जरूरी यही काम करना होगा, लेकिन हम मजूरों के लिए क्या जरूरी है इसका करना ? हमतो वही काम करेंगे जिससे हमें और हमारे बाल-बच्चों को रोटी मिलेगी।”

“हाँ-हाँ क्यों नहीं, क्यों नहीं रामसिंह ! रोटी के लिए ही तो दुनियाँ खटती है। देखते नहीं हो सुबह से शाम तक बहीखाते में कितनी मगजपच्ची करनी पड़ती है। यह सब पैसे के लिए ही तो है।”

“लेकिन हमें उतना पैसा नहीं चाहिए सेठ जी ! आपकी जरूरतों का हमारी जरूरतों से क्या मुकाबला ? हमें कपड़ा रोटी चाहिए और आपको नोटों की गड़्डियाँ।” रामसिंह बोला।

लाला बोले, “तो अब काम करने का इरादा नहीं है क्या ? क्या लीडर बनने की बात सोच ली है ?”

“काम नहीं करेगा मजदूर तो खायेगा क्या ? उसके पास सरमाया ब्रो है नहीं। उसका सरमाया तो उसकी मजदूरी ही है।” रामसिंह बोला।

रामसिंह के मुँह से ‘सरमाया’ शब्द सुनकर लाला चोखेराम का दिमाग झनझना उठा। उन्होंने गौर से रामसिंह के चेहरे पर देखा।

रामसिंह बोला, “काम की बात करने से पहले यह कहिए कि आप हमारे साथियों को अपने फारम से घास खोदने देंगे या नहीं। इसी बात पर हमार-आपका फैसला है।”

रामसिंह की बात सुनकर लाला चोखेराम को पसीना आ गया। सारी सिंठाई और सारी अकड़ पर पानी फिर गया। बार-बार खयाल आया कि चौधरी रूपसिंह और दरोगा जी क्या कहेंगे।

“कहेंगे क्या ? फसल नहीं बोई गई तो एक दाना भी पैदा न होगा। उसका नुकसान क्या दरोगा जी या चौधरी जी दे जायेंगे। नुकसान की बात सामने आते ही लाला बोले, “घास की क्या बात है रामसिंह ! घास की क्या कभी मनाही थी तुम्हें ? वह तो ज़िद-पर-जिद लग गई बेकार की। मैं इन ज़िदों में फंसकर अपना और तुम्हारा नुकसान नहीं करना चाहता।”

“तो ठीक है।” रामसिंह बोला। “मैं अपने साथियों की मीटिंग करके कल सुबह आपसे मिलूंगा।”

लाला धीरे-धीरे गाँव वालों से नजरें बचाते हुए चमारों की मंडैया से गाँव की तरफ चल दिये।

: २६ :

लाला चोखेराम के चले जाने पर रामसिंह ने कनकू और भूमन को लाला की बातें सुनाईं।

सुनकर भूमन पहलवान अँगड़ाई लेता हुआ बोला, “वह मारा पापड़ वाले को। लाला बेचारे चारों खाने चित्त आये।”

कनकू ने भूमन की बात सुनकर कहा, “देखो पहलवान ! सोच-समझकर काम करना। किसी से कानों-कान भी इस बात की खरचा न हो। जादा उभर कर चलने वाले को नीचा देखना पड़ता है।”

“कनक ठीक कहता है भूमन ! दरोगा जी और चौधरी रूपसिंह

को तुम कम मत समझना ! काले नाग हैं दोनों । उनकी फुंकार के सामने जंगल जलता है ।” रामसिंह ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

भस्मन जरा सहमता हुआ बोला, “माफ़ करना रामसिंह भय्या ! खुशी में जो कुछ कहा गया सो तुम्हारे ही सामने है । वैसे क्या मजाल कि भस्मन की जुबान से एक लफज भी कहीं निकल जाय । निकल जाय तो जुबान काट लेना भस्मन की ।”

रामसिंह मुस्करा कर बोला, “सो तो पूरा-पूरा भरोसा है तुम पर भस्मन पहलवान ! तुम्हारे घोर कनकू के झगड़े को ही लेकर मैंने पूरी मंडेया के चमारों को काम पर जाने से रोका था । वरना हमारे लाला चोखेराम का तो हाल कितना पतला है, यह तुमने देख ही लिया । बिचारे का पीठ पीछा है, झूठ नहीं बोल सकता मैं, कि वह कभी अपने किसी मजूर को किसी के खेत में चोरी करने को नहीं कहता ।”

“जामें का सक है । भगवान् कू जी देना है भय्या ! झूठ बोलने से का फायदा । लाला चोखेराम या माने में चोघरी रूपसिंह घोर बरोगा जी से लाख दर्जे भले हैं ।” भस्मन पहलवान बोला ।

कनकू ने भी भस्मन की बात का ताईव की ।

रामसिंह बोला, “रेल का बखत हो गया भस्मन ! मैं सहर जा रहा हूँ । सागर को सब बातों की खबर देनी है । कल सुबह लाला चोखेराम की बात का जबाब सागर से राय मिलाये बिना नहीं दिया जा सकता ।”

“जा मैं का सक है ?” भस्मन पहलवान बोला, “बिछासागर की राय प्रबल है । वाने ग्हारे लय्यों सारे गाम भर से बंरकसी लई है ।”

“जा मैं का सक है ?” कनकू बोला, “हम भी जी-जान लड़ा देंगे बाके लय्यों जब जी चाहै आजमा के देख ले ।”

रामसिंह का दिल कनकू घोर भस्मन की बातें सुनकर बाग-बाग हो उठा ।

उसके सीने में उभार था। वह मस्ती से स्टेशन की ओर बढ़ रहा था। भ्रमन स्टेशन तक उसे छोड़ने गया और कनकू मंडैया की हिफाजत के लिए वहीं बना रहा।

: २७ :

साँझ का सूरज डूबकर आकाश में अपनी गुलाबी लाली छिटकाता पश्चिम दिशा की गोद में खो गया। यह दृश्य रामसिंह ने रेल के डिब्बे में बैठे-बैठे देखा। फिर जंगल और लहराती हुई खेती और उसके बीच सटासट करती, दौड़ती, रेलगाड़ी की ओर उसका ध्यान गया।

तभी एंजिन ने जोरदार सीटी दी और सामने बिजली की बलियों की कतार रामसिंह ने देखी।

समझ लिया शहर आगया।

प्लेटफार्म पर उतर कर टिकट कलक्टर को टिकट देकर रामसिंह बाहर निकला तो ताँगे और रिक्शा वालों ने उसे घेर लिया।

“आओ चौधरी मेरे ताँगे पर चलो।”

“आओ चौधरी रिक्शा तय्यार है।”

परन्तु रामसिंह पैदल ही चला। चार कदम के लिए रामसिंह गया सवारी लेता।

आज रामसिंह के दिल में उभार था और उसके पंर आप-ही-आप उठ रहे थे। शहर की हर चीज उसे आज सुन्दर दिखाई दे रही थी। इससे पहले जब वह शहर आया था तो उसके दिमाग में अपनी परेशानी थी।

रामसिंह के सामने आज अपने जीवन की वे घटनाएँ आकर बारी-बारी से नाच रही थीं जब उसके गत जीवन में मानवता जागी थी और उसे ऊँची जाति और ऊँची स्थिति की दानवता ने कुचल दिया था।

इन्हीं गाँव के दरोगाजी ने पड़ोस के खेत से मटर का एक गट्टा

काट कर लाने को इन्कार करने पर थाने के दिवान जी से उसे इतना पिटवाया था, इतना पिटवाया था कि बदन लीला पड़ गया था।

आखिर गिड़-गिड़ाकर उसे माफी ही मांगनी पड़ी थी और रात को मटर का गट्टा भी चोरी से काट कर लाना पड़ा था।

इन्हीं गाँव के चौधरी रूपसिंह ने देशी शराब न खींचने पर रामसिंह का नाम इलाके के थानेदार से कह कर बस नम्बरियों में लिखा दिया था।

इसके कारण तीन साल तक उसके नाम पर पुलिस की आवाजें पड़ीं और आवाज देने वाले कांस्टेबलों की खातिरदारी करने का भार भी उस पर आ गया।

तभी से रामसिंह चोर बना। चौधरी रूपसिंह उसे सिक्रं फटा-टूटा कपड़ा और सूखी रोटी देते थे। कांस्टेबलों की पान बीड़ी और भेंट को वह रुपया कहाँ से लाता। वह रुपया उसे पास-पड़ोस के खेतों की चीजें चोरी से बेच कर पैदा करना होता था।

इसी रुपये दो-रुपये की चोरी में कभी-कभी वह खेत वालों से पकड़ा जाकर मार भी खा जाता था।

धीरे-धीरे रामसिंह हाथ की सफ़ाई में गाँव भर में नामी हो गया था। वह इस सफ़ाई से खेत काटता था कि क्या मजाल जो हवा को भी पता चले।

रामसिंह की ज़िन्दगी भर की इस कमाई में विद्यासागर ने आग लगा दी।

रामसिंह समिति के कार्यालय में खड़ा था। तभी उसका स्वप्न टूटा।

: २८ :

विद्यासागर बंठा चिट्ठियाँ लिख रहा था। रामसिंह को देखकर चिट्ठी लिखना बन्द कर दिया, कागज लपेट कर दूँ में रख दिये। और फिर रामसिंह की तरफ़ मुखातिब होकर कहा, “अभी-अभी तुम्हारे ही

विषय में सोच रहा था। आज कलक्टर साहब से भेंट हुई। बहुत ही संतोषजनक बात-चीत हुई।”

सुनकर रामसिंह की प्रसन्नता का पारावार न रहा। जैसा शुभ समाचार लेकर वह गाँव से चला था, उससे भी शुभ समाचार उसे यहाँ आकर मिला।

बिद्यासागर ने रामसिंह के चेहरे पर एक नज़र डाल कर कहा, “गाँव का हालचाल भी ठीक मालूम देता है आज तो।”

“तुमने कैसे जाना भइया !” रामसिंह ने आश्चर्य से पूछा ?

“तुम्हारा चेहरा कह रहा है ! ज़रूर कोई खास बात है।” बिद्यासागर ने कहा।

रामसिंह मुस्कारा कर बोला “लाला चोखेराम तो चित्त आये भइया ! ऐसी धोती खोली, ऐसी धोती खोली कि दो दिन की मार भी न भेल सके।”

“तो क्या खुद आये थे लाला तुम्हारे पास ?” बिद्यासागर ने प्रसन्न होकर पूछा।

“सुबह-ही-सुबह ! सच कहता हूँ भइया बिद्यासागर, ललवाइन ने लाला चोखेराम कू वा दिन रात भी सोना हराम कर दिया होगा। ललवाइन मेरा भोत ख्याल रखती हूँ।” सावगी के साथ रामसिंह बोला।

बिद्यासागर का ध्यान इस समय गाँव में था। उसने पूछा, “श्रीर बरोगाजी तथा चौधरी रूपसिंह के क्या हाल-चाल हैं ?”

रामसिंह ने बताया, “उनके दिमाग अभी ऊँचे ही हैं भइया ! वैसे एकबार दे दिये हैं हमने दोनों कू।

भूमन श्रीर कनक ने तो नरमी से कह भी दिया है कि चौधरी बरोगा जी बात हम भी पंडत जी तक ले जायेंगे।”

हमारे बेजुबान जानवरों का चारा बन्द करने का भूमधरों को का हक्क है ?”

“तो फिर क्या बोले चोधरी दरोगा जी ?”

“बोलते क्या ? पुराने-पुराने ऐहसान गिनाते हैं । कहते हैं कि उन्होंने पुलिस की मार से हमें बचाया था । यह है सबसे बड़ा एहसान उनका ।”

“पुलिस की मार, पुलिस की मार का क्या मतलब अब ? देश की पुलिस हमारी हिफाजत करने को है, हमें मारने को नहीं ।”

रामसिंह का दिल गुदगुदा उठा विद्यासागर की गम्भीर बात सुनकर उसने पूछा, “तो फिर भय्या ! लाला खोखेराम के फारम पे हम काम करने जाय या ना ?”

विद्यासागर बोला, “ज़रूर जाय । गांव की खेती का ज़रा भी नुकसान न होने पाये । इसका पूरा-पूरा ध्यान रखो । लेकिन इस बार काम करने की जो बातें तै हों वे सब काग़ज़ पर लिखी जानी चाहिएं ।”

“जामें का सक है ?”

और कहो तो लाला कू सहर लिखाऊँ ।”

“शहर लेखाघी तो क्या ही कहते हैं रामसिंह ! यहाँ लाला पर वह रौब डालूँ, वह रौब डालूँ, कि लाला भी ज़िन्दगी भर याद रखें ।”

रामसिंह उसी दम खड़ा हो गया । मानो आया ही नहीं शहर । बोला, “सुबह-ही-सुबह लो लाला को यहाँ । सुबह चार बजे की गाड़ी न पकड़ूँ तो मेरा नाम भी रामसिंह नहीं ।”

विद्यासागर रामसिंह की काम करने की लगन को देखकर बंग रह गया । उसके हृदय ने कहा, ऐसे ‘कर्मठ साथी का मिलना ही तो परमात्मा का मिलना है । यह परमात्मा नहीं है तो कौन है, जो सचाई के लिए रामसिंह के अन्दर इतनी निर्भोक्ता के साथ चल रहा है और साधन सम्पन्न जात के ठेकेदारों का टक्कर दे रहा है ।”

इसी विचार में निमग्न विद्यासागर खड़ा ही रहा और रामसिंह दूर



सड़क पर बिजली की बत्तियों की रोशनी में पैदल-पैदल लपकता जाता दिखाई दिया ।

: २६ :

बिद्यासागर के चेहरे पर गुलाबी रंग की खुशी छाई हुई थी । उसका दिल खिला हुआ था । पहला ही मोर्चा उसने चित्त मारा ।

तभी शीला और विनयमोहन आ गये । आज वे भी दोनों बहुत प्रसन्न थे । शीला लपक कर बोली, “अच्छा कहो बिद्यासागर आज हमारी पोटली में कितना रुपया होगा तुम्हारे विचार से ?”

“और मेरे पास कितनी सुन्दर-सुन्दर बातें होंगी तुम्हें सुनाने के लिए, जरा यह भी तो बताओ ?” मुस्करा कर बिद्यासागर बोला ।

“इसका मतलब यह हुआ कि आज दोनों रईस हो । अपने-अपने ढंग के । एक पर नावें की गठरी है तो दूसरे पर अपने किस्से कहानियों का खजाना है ।” विनयमोहन ने सरल स्वभाव से कहा ।

परन्तु उसने देखा कि शीला के चेहरे पर सुखी छा गई । उसके स्वांस की रफ़्तार में अन्तर आया और वह नजर घुमा कर मुस्कराती हुई बोली, “तो पहले तुम ही अपनी सुन्दर-सुन्दर बातें कह कर निपट लो, हमारे रुपये पीछे गिन लेना ।”

तीनों खिलखिला कर हँस-पड़े और आमने-सामने चाँदनी पर बैठ गये ।

बिद्यासागर बोला, “रामसिंह आया था गाँव से और चला भी गया । लाला चोखेराम को लेकर आयेगा सुबह ।”

“लाला चोखेराम को लेकर ?” शीला ने पूछा ।

“हां-हां यही तो मार्क की बात है । लाला का दिल धक्क-धक्क करने लगा । मैं जानता था कि लाला नुकसान उठाने की अपेक्षा दब-कर समझौता करना पसंद करेगा ।”

“तुमने वास्तव में मेरे रुपये की गठरी से अधिक सुन्दर और

महत्वपूर्ण बात सुनाई विद्यासागर !” संतोष के साथ शीला बोली ।  
“लाला के फ़ारम पर काम शुरू करा देना चाहिए । इससे चौधरी  
रूपसिंह और दरोगाजी के पैर उलझ जायेंगे ।”

“यही करने जा रहा हूँ मैं कल से ! लेकिन इस बार काम पर जाने  
से पहले कुछ बातें लिखत में ले आना चाहता हूँ जिससे बाव में लाला  
समय आने पर मुकर न सकें और काम करने वालों को बख्त-बे-  
बख्त आखें न दिखा सकें ।” विद्यासागर बोला ।

“यह तुमने बहुत सुन्दर बात सोची विद्यासागर ! इससे काम  
करने वालों के अधिकार सुरक्षित हो जायेंगे ।” विनय मोहन ने कहा,  
“और कहो तो मनोहर को बुला लाऊँ । बड़ी अच्छी प्रेक्टिस चल रही  
है उसकी ।”

विद्यासागर बोला, “सुना तो मैंने भी है । लेकिन काम हमारा  
और तकलीफ़ उसे बँ यह कहाँ की शराफ़त है ।” कहता हुआ विद्यासागर  
लड़ा हो गया ।

शीला से बोला, “तुम्हें भग्मा बुला रही हैं । तुम्हारे आने से  
पहले तीन बार देख जा चुकी हैं । तुम अन्दर जाओ और हम दोनों  
मनोहर से मिल आते हैं ।”

शीला घर में चली गई और विनयमोहन तथा विद्यासागर पेंदल-  
ही-पेंदल सड़क पर चल पड़े ।

: ३० :

मनोहर विद्यासागर से मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ । “तुमने बड़ी  
तकलीफ़ की विद्यासागर ! मुझे विजय के द्वारा कहलवा भेजते तो मैं  
स्वयं आ जाता ।”

विद्यासागर बोला, “यह मैं जानता था मनोहर भग्मा ! लेकिन मैं  
किसी काम-काजी आदमी को तंग करूँ, यह मुझे अच्छा नहीं लगता ।”

“क्या कह रहे हो विद्यासागर ? काम-काज तो जिम्बगी में चलता

ही रहता है और चलता ही जायगा लेकिन तुम जैसा निःस्वार्थ व्यक्ति मेरे पास कब-कब आयेगा ।” सरल भाव से मनोहर बोला ।

“साथियों का सहयोग ही सच्चा भगवान् का सहारा होता है मनोहर ! इसी से यह संसार चल रहा है और इसे जितना भी बढ़ावा दिया जायगा मानव-जीवन उतना ही प्रसन्नता की ओर अग्रसर होगा ।” विद्यासागर उसी सरलता के साथ बोला ।

मनोहर बोला, “इसमें कोई संदेह नहीं । सहयोग और सहायता देने पर आत्मा को जितनी प्रसन्नता होती है उतनी अन्य किसी वस्तु से प्राप्ति नहीं होती । पाने और देने में आकाश पाताल का अन्तर है ।”

इन चन्द वाक्यों के द्वारा मनोहर और विद्यासागर एक दूसरे के निकट आये । विद्यासागर ने लाला खोखेराम से फंसला करने तक की पूरी कहानी मनोहर को सुना दी और अन्त में कहा, “आप इस फंसले का एक ड्राफ्ट तय्यार कर दें जिसमें मजदूरों के हितों का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय ।”

“ड्राफ्ट सुबह तुम्हारे पास पहुँच जायगा विद्यासागर ! निश्चिन्त रहो तुम ।” मनोहर बोला ।

चलते समय विद्यासागर ने मनोहर को उसके सहयोग के लिए धन्यवाद दिया और मनोहर ने समिति के कानूनी कामों को देखने-भालने का आश्वासन दिया ।

: ३१ :

मनोहर के मकान से मनोरमा की कोठी बहुत नजदीक थी, लगभग दो फर्लांग ।

विद्यासागर के मन में आया कि जब यहाँ तक आया ही है तो क्यों न मनोरमा जीजी से भी मिलता चले ।

विनय से बोला “अच्छा विनय ! अब तुम जाओ मैं जरा मनोरमा जीजी से मिलकर आऊँगा । हो सकता है वहाँ कुछ बेर हो जाय ।”

विनय बोला, “ठीक है, मेरे भी एक मित्र यहाँ रहते हैं। मैं भी उनसे मिलता जाऊँ। बेचारे कई बार भ्राग्रह कर चुके हैं भ्राने के लिए।”

विद्यासागर विनय से प्रथक होकर धीरे-धीरे सड़क की बाईं पटरी पर भ्रागे बढ़ा।

सोचता जा रहा था कि क्या-क्या बातें करेगा मनोरमा जीजी से। सोचते-सोचते और चलते-चलते मनोरमा की कोठी भ्रा गई और विद्यासागर उनके ड्राइंग रूम के सामने जाकर खड़ा हो गया।

मनोरमा बेठी थी ड्राइंग रूम में। विद्यासागर को द्वार पर देखकर खड़ी होती हुई बोली, “भ्राभो विद्यासागर ! तुम तो ऐसे गायब हो जाते हो कि कई-कई दिन तक सूरत ही नहीं दिखाते।”

विद्यासागर मनोरमा का बात सुनकर मुस्कराता हुआ बोला, “मिलने की तो रोज़ जी चाहता है जीजी लेकिन बहुत से कामों में फँसा रहता हूँ जरा।”

“क्या हाल-चाल रहा तुम्हारे गाँव के मामलातों का ? जरा सुनूँ मैं भी तो। बड़ी हलचल पैदा करबी है तुमने जिसे भर के वातावरण में।” मनोरमा बोली।

“कर तो रहा हूँ कुछ जीजी ! लेकिन भ्राथिक परेशानियाँ बढ़ते-बढ़ते कबमों की रोक देती हैं। फिर भी काफी कामयाबी मिल रही है। हमारे गाँव के लाला चोखेराम दो दिन काम बन्द करने पर ही सीधे रास्ते पर भ्रा गये।”

मनोरमा बात बदल कर बोली, “भ्रच्छा भ्राब भ्रपनी पुस्तक की बात करो, जिससे मेरा सीधा मतलब है। क्या कुछ लिखा तुमने ?”

विद्यासागर बोला, “काम ठीक चल रहा है जीजी उस दिशा में भी। पुस्तक शुरू कर दी है मैंने और समाप्त भी बहुत शीघ्र करके दूँगा। मैंने सोचा है कि मेरी पहली रचना एक उपन्यास हो।”

मनोरमा बोली, “उपन्यासों की ओर आजकल पाठकों की अधिक रुचि है क्या ?”

एक साहब ड्राइंग रूम के कोने में छोटी मेज पर बैठे कुछ लिख रहे थे ।

वह विद्यासागर की बात सुनकर मनोरमा के बाद बोले, “हाँ उपन्यास ठीक रहेगा । लेकिन तीन सौ बीस पन्ने का होना चाहिए । सरकार की पंचवर्षीय योजना हो, कापरेटिव का उसमें जिक्र आना चाहिए । समाज-शिक्षा की झलक भी हो तो क्या कहने हैं । ग्राम-उद्योग और ग्राम-सुधार का भी ध्यान रखा जाय । और हो सके तो अछूतोद्धार की भी बातें ले आना कुछ उसमें ।”

उन महाशय की बात सुनकर विद्यासागर ने ध्यानपूर्वक उनके चेहरे पर दृष्टि डाली ।

मनोरमा बोली, “विद्यासागर आपसे तुम्हारा परिचय नहीं है क्या ? मैं कराती हूँ तुम्हारा परिचय । आप मेरे पति हैं श्रीनरेश मेहता और तुम्हारी पुस्तक के प्रकाशक ! आप भारत के प्रमुख प्रकाशक हैं ।”

विद्यासागर ने उन्हें खड़े होकर प्रणाम किया और फिर मुस्करा कर बोला, “आपके आदेशों की बंदिशों में रहकर पुस्तक लिखना मेरे लिए कठिन है ।”

विद्यासागर की बात सुनकर नरेश मेहता मुस्कराये और मुस्कराते हुए बोले, “विद्यासागर जी ! तुम अभी जुम्मा-जुम्मा सात दिन के लेखक हो । मेरे पास बड़े-बड़े धुरन्धर लेखक आते हैं, ऐसे लेखक जिनकी मिनिस्ट्रों तक पहुँच है । वे सब जैसा मैं कहता हूँ वैसा लिखते हैं और उसे पास कराकर कोर्स में भी लगवाते हैं ।”

विद्यासागर के जी में आया कि वह कह दे, “तो उनसे ही लिखा कर आप अपना काम चलायें । विद्यासागर किसी की बंदिश में रहकर सोच नहीं सकता, लिख नहीं सकता ।”

विद्यासागर के कुछ कहने से पूर्व ही मनोरमा बीच में बोल उठी,

“तुम्हारे उपन्यास का प्रकाशन मैं करूँगी विद्यासागर ! और इसी तरह के स्वतंत्र विचारों वाले अन्य लेखकों की पुस्तकें भी मैं छापूँगी ।”

“छाप तो सब लोगी लेकिन बेचेगा कौन उन्हें ?” नरेश मेहता मुस्करा कर बोले, “सरकार खरीदती है अपने मतलब की किताबें खामखा की रद्दी नहीं खरीदती सरकार । यह लिखेंगे अपने दिमाग की बातें तो उसे येही खरीदेंगे और यही पढ़ेंगे ।”

“लेकिन बेचेगा कौन उन्हें ।” नरेश मेहता के ये शब्द विद्यासागर के कानों में बड़े जोर से घम कर रह गये; छा गये दिमाग के वातावरण में ।

“इसका मतलब यह है कि पैदा करने से पहले उसके खपाने के रास्ते सोचने ही चाहिए ।” गम्भीरता पूर्वक विद्यासागर की जबान से निकला ।

विद्यासागर की बात सुनकर नरेश मेहता के मुख पर मुस्कराहट छा गई । वह विद्यासागर को एक नई बात समझाने में सफल हो गये । सरलता पूर्वक बोले, “अब समझे तुम । अपनी ही अक्ल से छापते जाओगे तो वे किताबें रद्दी वालों को तौलकर बेचनी होंगी और अगर उन्हें खरीदने वाले की मर्जी से छपा जाय तो उनकी जो चाहो कीमत ले-लो ।”

मनोरमा के पति ने क्या बात कही, उसकी पूरी गहराई तक विद्यासागर न जा सका । परन्तु हाँ-या-नाँ भी कुछ नहीं कहा उसने ।

विद्यासागर के मस्तिष्क में मनोरमा के पति के वे ही शब्द अकबर लगा रहे थे, “पैदा करने से पहले खपाने के रास्ते सोचने चाहिए ।”

और वह खड़ा होता हुआ नरेश मेहता की ओर मुँह करके बोला “आपने विचारने की एक विधा दी मुझको । मुझे विचारना होगा कि पैदा करने से पहले उसकी खपत का प्रबन्ध भी ठीक है अथवा नहीं ।

आपका सम्भवतः यही अभिप्राय है ?”

“बिल्कुल यही ।” गम्भीरता पूर्वक नरेश मेहता बोले । “बिक्री की गारन्टी हो और रुपया बढ़ता देखे तो कौन व्यापारी नहीं करेगा उस काम को ?”

मनोरमा बड़ी ही दिलचस्पी से अपने पति और विद्यासागर की

बातें सुन रही थी। साथ ही मुस्करा-मुस्करा कर दोनों की तरफ देखती जाती थी। उसकी मुल-मुद्रा से यह प्रकट नहीं हो रहा था कि वह अपने पति और विद्यासागर में से किस पर वे मुस्कान के पुष्प चढ़ा रही थी। दोनों में से प्रत्येक समझ रहा था कि वह पुष्पोपहार उसी को दिया जा रहा है।

विद्यासागर यकायक खड़ा होता हुआ बोला, “अच्छा जीजी! अब आज्ञा चाहूंगा। मैं केवल इतना पूछने आया था आपसे कि संस्था का रजिस्ट्रेशन हुआ या नहीं?”

मनोरमा उसी मुस्कराती हुई मुद्रा से बोली, “यदि तुम न आते तो मैं स्वयं यह समाचार लेकर तुम्हारे पास आती कि तुम्हारी संस्था रजिस्टर्ड हो गई है।”

विद्यासागर ने मनोरमा के चेहरे पर देखा। उसके मन में कृतज्ञता और खुशी के भाव भर आये। शब्द वह एक भी न बोल सका।

मनोरमा बोली, “माता जी को नमस्कार कहना मेरा और शीला को प्यार। कल संध्या को मैं समिति के कार्यालय में आऊंगी।”

विद्यासागर मनोरमा और नरेश मेहता को नमस्कार करके बिदा हुआ।

: ३२ :

विद्यासागर जब तक मनोरमा की कोठी में रहा तब तक उसके मस्तिष्क में “पैदा और खपत” की बात चक्कर लगाती रही परन्तु ज्यों ही वह कोठी से बाहर निकला तो उसे शीला की माता जी की बात याद आ गई। उन्होंने कहा था “वह तो मनोरमा को उसकी मर्जी का पति नहीं मिला।”

विद्यासागर का ध्यान नरेश मेहता पर गया। उनकी शक्ल-सूरत सामने आई। चेहरे-मोहरे की बनावट शानदार थी। कलाकार ने शरीर के एक-एक अंग को नाप-तौल कर पूरी सफाई के साथ बनाया था।

बातें करने का ढंग हर व्यक्ति का अपना-अपना होता है। नरेश मेहता का बातें करने का ढंग भी किसी प्रकार अशिष्ट, अव्यावहारिक या अविवेकपूर्ण नहीं था। उसमें गम्भीरता भी थी और अपने बड़प्पन तथा तजुरबे की छाप भी।

विद्यासागर ने उससे कुछ सीखा। अपने ज्ञान में वृद्धि की और फिर सोचा, 'मनोरमा जीजी को उनकी मर्जी का पति कैसे नहीं मिला?' आज की दुनियाँ का पूरा तजुरबा है इन्हें। यह नीचे और ऊपर दोनों तरफ़ से चलना जानते हैं। अक्सर आने पर सीधी चाल भी चलते हैं।"

तभी विद्यासागर को शीला की बात याद आ गई। उसने कहा था कि मनोरमा जीजी का कंठस्वर बहुत ही मधुर है।

व्यवहार और कला का कितना सुन्दर सामंजस्य था, कितना सहयोग हो सकता है दोनों की प्रकृति का ?

इन्हीं विचारों में उलझा हुआ विद्यासागर समिति के कार्यालय के सामने आ गया।

शीला कार्यालय के बाहर घूम रही थी।

विद्यासागर को देखकर अकेलेपन की परेशानी दिमाग़ से दूर हुई। मुस्कराकर कहा, "बड़ी देर कर दी वकील साहब से बातें करने में ?"

विद्यासागर बोला, "यहाँ अधिक देर नहीं हुई शीला ! देर मनोरमा जीजी के यहाँ लग गई। सोचा.....

बीच ही में शीला बोली, "बस-बस ! मैं पहले ही समझ गई थी कि तुम जीजी के पास चले गये होगे।"

विद्यासागर प्रसन्नता पूर्वक बोला, "और आज उनके पति श्री मेहता नरेश से भी भेंट हुई।"

"कैसे आदमी जैचे आपको श्री नरेश मेहता ? सीधा सवाल शीला ने किया।



विद्यासागर की आँखें शीला के चेहरे पर पड़ी। उसने शीला के चेहरे पर यह पढ़ने का प्रयत्न किया कि वह वास्तव में क्या सुनना चाहती है।

बोला, 'नरेश मेहता के विषय में आप लोग गलतफहमी में हैं। वह मनोरमा जीजी को बहुत प्रेम करते हैं। उनका बड़ा आदर करते हैं।'

शीला अवाक् रह गई यह सुनकर। विद्यासागर की बात को और उसकी परख को शीला यों ही हवा की बात नहीं समझ सकती थी।

'तो क्या वह सब दिखावा ही था ?' शीला की जबान से निकला।

'दिखावा भी नहीं था क्योंकि दिखावा करना न तो मनोरमा जीजी का स्वभाव है और न नरेश मेहता का ही। मन की बात मन में रखना दोनों नहीं जानते। कितना सुन्दर साम्य है दोनों का ? दोनों के दिल बिलकुल साफ़ हैं।'

इस पर शीला मुस्कराकर बोली, 'तो समझीता हो गया होगा मिर्या-बीवी का इस बीच में। दोनों ने सोचा होगा कि जब साथ-साथ ही चलना है जीवन में तो जहाँ-जहाँ विचारों और व्यवहार में साथ मिलकर चल सकें वहाँ तक तो मिलकर चलें।'

'कितना शुभ और सहयोगपूर्ण है यह व्यवहार कि यदि वह वास्तव में मनोरमा जीजी और नरेश मेहता के जीवन में घटा हो। मैं इसकी शुभकामना करता हूँ।' विद्यासागर बोला।

: ३३ :

विद्यासागर के जीवन में जो कुछ घटता जा रहा था उसे वह रचना-बद्ध करता जाता था।

प्रातःकाल चार बजे उठकर वह नित्यकर्म से निवृत्त होकर अपना उपन्यास लिखने बैठ जाता था। और पूरी पिछले दिन की डायरी उतार कर रख देता था।

उ्यों ही उसने आज डायरी के पन्ने लिखकर समाप्त किये त्यों ही लाला चोखेराम को साथ लिये रामसिंह आता दिखाई दिया ।

विद्यासागर उन्हें आता देखकर जरा शान के साथ तकिये से कमर लगाकर बैठ गया ।

रामसिंह और लाला चोखेराम ने कार्यालय में प्रवेश किया ।

विद्यासागर उन्हें देखकर खड़ा हो गया और आदर-पूर्वक बोला, “पधारिये सेठ जी !”

लाला चोखेराम की आत्मा प्रसन्न हो गई अपने लिए सेठ जी शब्द सुनकर । लेकिन उनकी मोटी-मोटी आंखें बड़े गौर से विद्यासागर को देख रही थीं । कार्यालय को देख रही थीं । कोठी को देख रही थीं ।

विद्यासागर भी सेठजी के चेहरे को भांप रहा था ।

इसी समय शीला की चाय आ गई और शीला भी अपने बालों को सँवारती, लापरवाही से साड़ी के पल्ले को कंधे पर डाले पीछे-पीछे चली आई ।

रामसिंह को देखकर बोली, “आ गये रामसिंह !” और फिर सेठ जी की तरफ देखकर पूछा, “आप ही हैं क्या सेठ चोखेराम जी ?”

“सेठजी आप ही हैं । बड़े पक्के धार्मिक विचार हैं आपके । देवी के पुजारी हैं आप । पंडित संकट लोचन का सारा पूजा का खर्च आप ही सँभालते हैं ।” विद्यासागर गम्भीर मुख-मुद्रा से बोला ।

सेठ जी बोले, “देवी की कृपा से सब चलता है । मैं क्या करता हूँ विद्यासागर । देवी जो कुछ कराती हैं वही करती हूँ मैं ।”

इसी समय मनोहर बाबू का मुंशी ड्राफ्ट लेकर आ गया । ड्राफ्ट पढ़कर विद्यासागर ने शीला को दिया ।

शीला ड्राफ्ट पढ़ने लगी ।

विद्यासागर सेठ जी की तरफ मुँह करके बोला, “सेठ चोखेराम जी आपसे एक बात पूछूँ ?”

“एक नहीं दो पूँछो विद्यासागर !” लाला चोखेराम ने कहा ।

“दोगले तो नहीं बनोगे बाद में । मोका पड़ने पर चौधरी रूपसिंह और दरोगा जी से तो नहीं जा मिलोगे ?

इस बात की कसम लो तो मैं तुम लोगों का फंसला अभी लिखा-पढ़ा कर तय्यार करता हूँ । कागज पर तुम्हारे हस्ताक्षर और इन सब के अंगूठे लगवा दूँ ।”

सेठ चोखेराम बोले, “सेठ की जुबान एक होती है विद्यासागर ।” फिर जरा सा उभार लेकर बोले, “और फिर चौधरी रूपराम और दरोगा जी से तो मेरी वैसे ही खटपट रहती है । चोर और नंग हूँ दोनों अश्वल दज्जे के । दरोगा थाने के सिपाही, दिवानों का दलाल है और रूपसिंह खामखा ही अपनी अकड़ में चूर है । अब कोई घास नहीं डालता इसे, लेकिन वह समझता अपने को अफ़लातून है । रस्ती जल गई लेकिन बल नहीं गये अभी ।”

विद्यासागर ने फंसले का ड्राफ्ट सेठजी के हाथों में देते हुए कहा, “लीजिये इसे पढ़ लीजिये और यदि कहीं मत-भेद हो तो उसे ठीक कर लीजिये और फिर आप और रामसिंह मिलकर वह शानदार खेती कीजिये कि आपके गाँव तो क्या आस-पास के देहात की भी अनाज की कमी दूर हो जाय ।”

: ३४ :

लाला चोखेराम ने पारस्परिक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये । समझौते के अनुसार वर्ष भर का अनाज और कपड़े की व्यवस्था से ऊपर बीस रुपया माहवार कम-से-कम फार्म के हर मजदूर को मिलना निश्चित हुआ ।

एक बार तो समझौते पर हस्ताक्षर करते हुए लाला चोखेराम का दिल जरा बहला, परन्तु वह शीघ्र ही सतर्क हो गये ।

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “घबराइये नहीं सेठजी ! आपका

व्यवहार काम करने वालों के साथ अच्छा रहेगा तो आपका काम चमक जायगा। मजदूर भी जी तोड़कर काम करेंगे।”

“जामें का सक है।” रामसिंह उभर कर बोला और फिर सेठजी की जरा प्रशंसा करते हुए कहा, “हमारे सेठ का दिल बहुत बड़ा है भय्या विद्यासागर ! सब त्योहारों पर त्योहारी और अपने घर की हर खुसी पे मञ्जूरों को भूलते नहीं हैं।

चौधरी रूपसिंह और दरांगा जी की तरह मञ्जूरों की खाल नहीं नोचते सेठजी।”

रामसिंह के मुँह से विद्यासागर के सामने अपनी तारीफ सुनकर लाजा चोखेराम मुर्दा जानवर की तरह फूल कर कुप्पा हो गये। और फिर आँख नाक मटकाते हुए बोले, “विद्यासागर कसम ले-लो जो आज तक किसी का जी दुखाकर एक पैसा भी कमाया हो। नियत सलामत रहे तो भगवान् देने में कमी नहीं करता।”

“जामें का सक है।” तन्मयता के साथ रामसिंह ने कहा।

विद्यासागर ने पारस्परिक समझौते का एक कागज लाला चोख राम को दे दिया और दूसरा रामसिंह को तरफ करके कहा, “लो रामसिंह इस कागज को सँभाल कर रखना।”

रामसिंह बोला, “भय्या विद्यासागर ! मेरी झोंपड़ी में कागज रखने की जगह कहाँ है ? इसे तुम अपने पास ही रहने दो।”

तभी शीला, जो चाय पोकर अन्दर चली गई थी, लौट आई। रामसिंह से पूछा, “हो गया रामसिंह तुम्हारा फंसला ?”

रामसिंह कृतज्ञता पूर्वक बोला, “हो गया बहन !” और साथ ही खड़ा होकर कहा, “अब मैं गाँव जाऊँगा। भूमन और कनकू मेरी राह देख रहे होंगे।”

फिर तभी मुस्करा कर बोला, “हमारी ललवाइन भी सेठ जी की राह में आँखें पसारे बैठें होंगी। भगवान् ने दोनों की जोड़ी खूब बनाई है विद्यासागर !”

रामसिंह की अंतिम बात सुनकर सबके चेहरे खिल उठे। विद्यासागर बोला, “सेठजी के साथ जब रामसिंह है तो ललवाइन को डरने की कोई बात नहीं।”

विद्यासागर के मुँह से ये शब्द निकलने थे कि लाला चोखेराम भावुकता से भर उठे और उन्हें वे सब दिन एक-एक करके याद आते गये जब-जब उनकी ललवाइन ने उन्हें किसी आसामो से कर्जा वसूल करने के लिए जाते समय रामसिंह के सुपुर्द किया था।

ननवा जुलाहे की भंस कुर्क कराते समय अगर ननवा की लाठी का रामसिंह ने न रोका होता तो लाला चोखेराम की वहीं कम्पाल क्रिया हो गई होती।

जुम्मा लुहार की दुकान का लोहा-लंगड़ नीलाम कराते समय अगर जुम्मा का हथौड़ा रामसिंह के हाथ पर न पड़ा होता तो लाला चोखेराम की खोपड़ी वहीं चकनाचूर हो गई होती।

धनीराम भूमिधर की फसल का अनाज उसके पैरों में कुर्क कराते समय जब उसके तीन नोजवान पट्टे तीन बाजों की तरह लाला चोखेराम पर झपटे थे तो अकेले रामसिंह ने ही लाठी तान कर कहा था, ‘एक कदम भी जिसने आगे बढ़ाया उसकी खोपड़ी धड़ से जुदा पायेगी।’

इन तीन मोटे-मोटे वाक्यांशों के अतिरिक्त भी रामसिंह के अहसानों की एक लम्बी कतार थी जिसपर नज़र जाने के बाद जब लाला चोखेराम रामसिंह के चेहरे पर नज़र डालते थे तो उन्हें लगता था कि मानो उनका शरीर अपने पिता से भी कहीं अधिक मजबूत व्यक्ति के संरक्षण में चल रहा था।

लाला चोखेराम का दिल कृतज्ञता से भर जाता था।

शीला बोली, “तुम्हारी रेल नौ बजे जाती है। आओ तब तक तुम्हें तुम्हारे बच्चों से भेंट करा लाऊँ। और फिर लाला चोखेराम की तरफ

मुँह करके बोली, “आप भी चलिये सेठजी ! देखिये आपके गाँव के बेकार फिरने वाले लड़कों ने कुछ तरक्की की है या नहीं ।”

शीला ने घंटी का बटन दबाया । नौकर ने आकर पूछा, “क्या आज्ञा है बीबी जी ?”

शीला बोली, “ड्राईवर को कहो, गाड़ी निकाले ।”

एक बाँकी अदा और रोव की झनझनाहट थी शीला के इस पूरे व्यवहार में ।

लाला चोखेराम और रामसिंह को कार में बराबर पीछे की सीट पर बिठलाकर शीला ने गाड़ी ड्राइव की और विद्यासागर उसके बराबर वाली सीट पर बैठ गया ।

: ३५ :

रुनकू विद्यासागर के गाँव से आये हुए लड़कों में सबसे समझदार था । सुबह चार बजे उठता था और अपने सब साथियों को उठाता था ।

सब लोग मिलकर फिर घर की सफ़ाई करते थे । वस्त्रों की सफ़ाई करते थे, शरीर की सफ़ाई करते थे ।

थोड़ा व्यायाम भी करते थे इसके पश्चात् और फिर काम पर जाने के साफ़ कपड़े पहनते थे ।

रुनकू बोला, “कपड़े पहन कर सब लेन बना लो । बीबी जी इन्तजार कर रही होंगी ।”

झुनकू पंक्ति के सिरे पर खड़ा होता हुआ बोला, “आज एक-एक केला मिलेगा सबको ।”

झुनकू की बात सुनकर रुनकू का मन खिल उठा । चितलीदार केले का गूदा मीठे मक्खन की तरह घुल कर रुनकू के मुँह में बड़ा आनंद देता था । उसे चितलीदार केला बहुत पसंद था ।

बात की बात में बीसों लड़के पंक्तिबद्ध खड़े हो गये थे। सबके थले कंधों पर थे और भोलों में बूट-पालिश का सब सामान।

यहाँ से ये सब समिति के कार्यालय में जाते और वहाँ से शीला इन्हें नाश्ता करा कर काम पर भेजती।

आज ज्यों ही सबके पंक्तिबद्ध होने पर रुनकू ने चलने का विचार किया तो शीला की गाड़ी सामने आकर खड़ी हो गई। और फिर उसके अन्दर से शीला, विद्यासागर, रामसिंह, और लाला चोखेराम उतर पड़े।

सब लड़कों ने सबको प्रणाम किया।

रामसिंह ने अपने बच्चे को देखा तो उसका बिल गद्-गद् हो उठा। सबके पास खाकी नीकर थे और खाकी कमीजें। सबके पैरों में जूते थे और सबकी मुद्राएँ प्रसन्न थीं। स्वास्थ्य ठीक थे सबके।

रामसिंह ने अपनी मंडिया के बच्चों की ओर देखा और फिर विद्यासागर के सरल चेहरे पर दृष्टि डाली।

वह कृतज्ञतापूर्वक बोला, “तुम असली बाप हो इन बच्चों के विद्यासागर !

तुमने इनकी जिन्दगी बना दी। और फिर इन बीसों लड़कों की तरफ मुँह करके कहा, “ये अगर इन्सान के बच्चे होंगे तो तुम्हारा गुण जिन्दगी भर नहीं भूलेंगे।”

और फिर शीला की तरफ देखते हुए कहा, “तुम असली माँ हो इनकी जो तुमने इन्हें जीने का सहारा दे दिया। इनका भार अपने ऊपर लिया।”

रामसिंह के मुँह से अपने लिए माँ और विद्यासागर के लिए पिता शब्द सुनकर शीला के गालों पर सुर्खी बौड़ गई। वह मुस्करा कर बोली, “रामसिंह इन फूल से बालकों को भार कैसे कहते हो तुम, ये तो फूल ह मानवता की बगिया के। इन्हें अभी खूब फूलना और फलना है। आग बढ़ना है जिन्दगी में।

ये सभी बच्चे अपनी ताकत से आगे बढ़ेंगे। इनमें से हर बच्चा

अपने पैरों पर खड़ा है। वह किसी का मोहताज नहीं और साथ ही आप लोगों की हड़ताल के समय आपकी भेंटों के लिए चारे का भी प्रबन्ध इन बच्चों ने अपनी मजदूरी से किया है।”

रामसिंह का सिर श्रद्धा से शीला के सामने झुक गया।

चोखेराम ने भी यह अनुभव किया कि वास्तव में शीला एक देवी है, वरना कौन किसी के बच्चों का खाने-पीने का प्रबन्ध करता है और कौन बीस लड़कों को नीकर सिलाकर बेता है। दरवाजे पर आने वाले भिखारी को एक चुकटो आटा भी कोई देता है तो हजार बातें सुनाता है मुस्टंडा कहीं का। मेहनत नहीं होती। हराम का खाने की आदत पड़ गई है। सरकार भी नहीं रोकती इन्हें।”

लाला चोखेराम की श्रद्धा का बहाव शीला की तरफ था। शीला के त्याग में उन्हें अधिक सत्यता दिखाई दे रही थी। इसमें पैसे का त्याग था और पैसे के त्याग का ही लाला चोखेराम के जीवन में सबसे अधिक महत्व था।

विद्यासागर के घर की दशा से वह परिचित थे। विद्यासागर पैसे का त्याग कर नहीं सकता था। इसीलिए लाला चोखेराम की श्रद्धा का बहाव विद्यासागर की ओर प्रयत्न करने पर भी नहीं हो रहा था।

रामसिंह ने और आगे बढ़कर रुनकू से पूछा, “बेटा रुनकू मजे में तो हो। कोई तकलीफ तो नहीं है तुम्हें।”

रुनकू बोला, “बीबीजी हमें खिलाकर सब आप खाती हैं खाना। ताऊ बड़े मजे में हैं हम सब। एक-एक केला रोझीना मिलता है सबको।”

रुनकू का मन खिल रहा था ताऊ से यह बात कहते हुए।

रामसिंह ने पूछा, “तो तुम्हारे माँ-बाप, भाई-बहनों से कह दूँ कि तुम सब बड़े मजे में हो।”

रुनकू बोला, “हाँ चाचा कह दीजो भय्या सँ। आने वाले इतवार को हम सब गाँव आयेंगे।”



“गाँव आओगे ?” आश्चर्य पूर्वक रामसिंह ने पूछा ।

“हाँ रामसिंह !” पीछे से शीला बोली “हमने यह निश्चय किया है कि महीने में एक बार ये सब जाकर घर वालों से मिल आया करें।”

शीला के चेहरे पर इस बार जो रामसिंह की दृष्टि गई तो वह उसे साक्षात् देवी के रूप में दिखाई दी । “तुम सबकी माता हो।” उसके होठों से अस्फुट शब्द निकले ।

शीला आगे बढ़कर बोली, “रुनकू गाड़ी में केले रखे हैं । सबकी लाकर एक-एक दे दो और फिर सेठजी के जूते को जरा पालिश करके ऐसा चमकाओ कि मुँह दिखाई देने लगे।”

शीला ने यह बात इतनी सरलता से कही कि लाला चोखेराम उसे उपहास नहीं समझ सके ।

परन्तु शीला और विद्यासागर के नेत्रों ने आपस में कुछ कहा, कुछ सुना ।

: ३६ :

बच्चे काम पर चले गये । लाला चोखेराम और रामसिंह को शीला और विद्यासागर ने रेलवे स्टेशन पर छोड़ा ।

चलते समय विद्यासागर ने गम्भीरतापूर्वक कहा, “लाला चोखेराम ! एक बार फिर याद दिलाता हूँ । चौधरी रूपसिंह और दरोगा जी के चक्कर में आये तो मेरा तुम्हारा सम्बन्ध टूट जायगा ।”

विद्यासागर की बात सुनकर लाला चोखेराम सहम गये । विद्यासागर के कहने का उत्तर देने से जी चुराना चाहते थे, परन्तु कर नहीं सके यह ।

टिचकी लेते हुए बोले, “लाला चोखेराम हव दर्जें तक निभायेगा विद्यासागर ! पर जो तनै लुटिया डुबो दी तो यूँ जानलें कि चौधरी रूपसिंह और दरोगा जी मेरी फसल दिन-बहाड़े खड़ी ही कटवा लेंगे ।

थानेदार सँ दरोगा का बड़ा रसूक है।”

विद्यासागर बोला, “कितना ही रसूक हो चाहे उनका सेठजी ? अपना रसूक भी दरोगा जी से कम नहीं है । दरोगा जी हमारी भलाई के लिए हैं । हमारी बुराई क्यों करेंगे वह ?”

रामसिंह और लाला चोखेराम को रेल में बिठाकर विद्यासागर और शीला सीधे कार्यालय में आये ।

डेस्क से आवश्यक क्रागञ्च निकाल कर विद्यासागर बोला, “भारतीय सहयोग समिति” की बैठक आज शाम को होगी । समिति के प्रधान-पद के लिए मैं सोच रहा हूँ कि क्यों न मनोरमा जीजी का नाम पेश किया जाय ।”

शीला ने कोई उत्तर न दिया । नीची आँखें करके केवल इतना ही कहा, “तुम जैसा उचित समझो ।”

“मैं यही उचित समझता हूँ कि ऐसी उदार देवी के संरक्षण में हमारा कार्य दिन-पर-दिन उन्नति करेगा ।”

दोपहर बारह बजे तक आस-पास के गाँवों में गये हुए सब साथी लौट आये ।

उजागर सिंह बहुत प्रफुल्लित था । विद्यासागर ने उससे पूछा, “कहो उजागर साथी ! कैंसी कटी ? कोई विरोध तो नहीं हुआ तुम्हारा गाँव में बसने पर ।”

“बिल्कुल नहीं साथी ! मेरे साथ मेरे गाँव का बच्चा-बच्चा हर काम के लिए खड़ा होने को तय्यार है । जो चाहे जितना काम ले सकता है सब आदमियों से ।”

“तो तुम्हारे गाँव में मजदूरों और भूमिधरों का किस्सा नहीं है क्या ?” शीला ने पूछा ।

“हमारे गाँव में सभी भूमिधर हैं । कुछ कम जमीन के और कुछ अधिक के । सब अपनी-अपनी जमीन पर खेती करते हैं । आपस के झगड़े-फिसाव बहुत कम होते हैं और जो होते भी हैं उन्हें काका न्यावरसिंह सुलटा देते हैं ।” उजागरसिंह बोला ।

“यह काका ग्यादरसिंह कौन हैं ?” विद्यासागर ने पूछा ।

“काका काका ही हैं बस साथी विद्यासागर ! उनकी क्या तारीफ़ करूँ तुमसे ? आदमी के रूप में देवता हैं । जब सारी जमीन गाँव वालों पर चली गई तो मुस्करा कर बोले, “चली जाने दो । सारे गाँव के रहने वालों को मैं अपना बच्चा समझता हूँ ।”

‘तो क्या उनके आगे-पीछे कोई आस-प्रोलाद नहीं है उजागरसिंह !’  
विद्यासागर ने पूछा ।

“बिल्ली का बच्चा भी नहीं है लेकिन नाँवा खूब है काका पै । जमीन में गाड़ रखे हैं जार्ज पंजम के चाँदी का रुपये ।” मुस्करा कर उजागरसिंह ने कहा ।

: ३७ :

‘भारतीय सहयोग समिति’ की संध्या को बैठक हुई । विनय मोहन, उजागरसिंह, विद्यासागर, मनोरमा जीजी, शीला और उनके अन्य सब साथी उपस्थित थे ।

शीला ने सर्व प्रथम खड़ी होकर कहा, “कितनी प्रसन्नता का दिन है आज कि हम लोगों ने जिस कार्य को करने का विचार किया आज उसकी रूप रेखा सामने आ गई । हमारी संस्था का रजिस्ट्रेशन हो गया ।”

सभा के सब उपस्थित सज्जनों के चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे ।

विद्यासागर ने कहा, “संस्था का प्रारम्भ करने से पूर्व हमें एक प्रधान की आवश्यकता है और उसके लिए मैं मनोरमा जीजी का नाम प्रस्तुत करता हूँ ।”

उजागरसिंह हार्दिक प्रसन्नता के साथ बोला, “मैं साथी विद्यासागर के प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ ।”

मनोरमा जीजी के अतिरिक्त किसी ने कोई अन्य नाम प्रस्तुत नहीं किया और मनोरमा जीजी सर्व सम्मति से ‘भारतीय सहयोग समिति’ की अध्यक्ष हो गई ।

तभी मनोरमा जीजी ने धोषित किया कि वह समिति के मंत्री पद के लिए विद्यासागर को आमंत्रित करती हैं।

इस पर सभा में अत्यधिक प्रसन्नता का वातावरण छा गया।

चुनाव के पश्चात् सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ और समिति का संविधान पढ़ कर सुनाया गया।

अन्त में जो रचनात्मक कार्य की दिशा में कदम उठाया गया वह था शहर के मुख्य स्थानों पर दूध की विक्री की व्यवस्था करने का प्रबन्ध।

उजागरसिंह बोला, “वह दही सा दूध आयेगा हमारे देहात का, कि शहर वाले समझेंगे कि हमने कैसा सहयोग दिया; उन्हें स्वच्छ और शुद्ध घी, दूध और दही प्राप्त करने में।”

उजागरसिंह की बात सुनकर मनोरमा जीजी के चेहरे पर भी मुस्कान दौड़ गई और वह नम्रता पूर्वक बोली, “शहर वाले और देहात वाले दो-दो नहीं हैं उजागर सिंह। किसी जमाने में ये सब शहर भी देहात ही रहे होंगे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि शहरों की इस उन्नति में गाँव वालों ने अप्रत्यक्ष रूप से बहुत बड़ा सहयोग दिया है। शहरों के रहने वालों को गाँव वालों का कृतज्ञ होना चाहिए।”

: ३८ :

विद्यासागर को घर से शहर आये कई दिन हो गये थे। आज उसे गाँव जाना था। उसी की तयारी कर रहा था।

सबसे पहले उसे चमेली की याद आई और उसने बाजार से केले, रेवड़ी, मूँगफली, दो चुटीलने और दो बिंदियों के अतिरिक्त एक सिली सिलाई कमीज भी ली और चार गज लट्ठा।

बापू की कमजोरी दूर करने की सेर भर छाँवले का मुरब्बा लिया और थोड़े से चाँदी के बर्क भी।

मनोरमा जीजी ने विद्यासागर की पुस्तक की रायल्टी के अग्रेस्ट उसे सौ रुपया और दे दिया था ।

एक थैले में यह सब सामान लेकर विद्यासागर शीला से बोला, “अच्छा शीला ! अब चला । पाँच बज कर पच्चीस मिनट पर गाड़ी छूट जाती है ।”

शीला बोली, “जाओ विद्यासागर लेकिन चौधरी रूपसिंह और दरोगा जी से होशियार रहना । उनके पास जाने की कोई जरूरत नहीं । उनके हाथ का दिया कुछ खाने-पीने की जरूरत नहीं । केवल अपने घर का खाना खाना ।”

विद्यासागर ने शीला के चेहरे पर देखा और कानों से उसकी बातें सुनीं । कितना स्नेह था उनमें, कितना संरक्षण का भाव और कितनी दूरअंदेशी थी ।

विद्यासागर ने नयनों की भाषा में ही कह दिया, “चिंता न करो शीला ! विद्यासागर बच्चा नहीं है अब । उसे जिवंदगी में चलना आता है और रास्तों में आने वाली मुसीबतों को उखाड़ फेंकना भी आता है ।”

विद्यासागर ने मुश्किल से पचास कदम आगे रखे होंगे कि शीला ने पुकारा, “विद्यासागर !”

विद्यासागर ने लौट कर पूछा, “क्या बात है शीला ?”

“कोई बात नहीं ।” जरा ठहर कर शीला बोली, “चलो मैं भी साथ चलती हूँ स्टेशन तक ।

सोच रही हूँ कि तुम्हारे चले जाने पर यहाँ कितना सूना हो जायगा । यहाँ के वातावरण में मानो मुस्कराना रहेगा ही नहीं ।”

विद्यासागर ने शीला के चेहरे पर तेजी से आँखें गड़ा कर कहा, “तुम भारत की वीर नारी हो शीला ! अभी बहुत काम करने हैं तुम्हें ।”

: ३६ :

गाड़ी चल पड़ी और शीला स्टेशन पर खड़ी रह गई। शीला ने अपना लाल रुमाल हिलाया और विद्यासागर ने अपना हाथ।

गाड़ी तेज होकर सिगनल से दाईं ओर को घूम गई और शीला विद्यासागर को दिखाई देनी बन्द हो गई।

विद्यासागर सीट पर बैठ गया।

विद्यासागर के साथ वाले सज्जन ने विद्यासागर का शीला से विदा होने पर गमगीन चेहरा देखा। उसने सहानुभूति के साथ पूछा।  
“आपकी देवी जी थीं यह?”

विद्यासागर ने उस व्यक्ति की ओर देखा परन्तु उत्तर कुछ न दिया।

गाड़ी पैंतालीस मिनट में गाँव के स्टेशन पर पहुँच गई और विद्यासागर अपना थैला लेकर गाड़ी से उतरा।

गाड़ी से उतर कर वह स्टेशन मास्टर के पास टिकट देने गया और फिर अपने गाँव की ओर रुख किया तो क्या देखा कि कनकू कान से भी आठ अंगुल ऊँची लाठी लिये स्टेशन के फाटक से बाहर खड़ा है।

विद्यासागर को देखते ही बोला, “आगये भय्या विद्यासागर! कल दोना टेम गाड़ी देखी और आज एक घंटे का बैठा हूँ इन्तजार में।”

“काई नई बात तो पैदा नहीं हुई ना!” विद्यासागर ने पूछा।

“सुना है दरोगा जी नै तुम्हारा वारंट कटा दिया है भय्या तेरे बापू राम भगत और तेरी माँ को बड़ी फिकर हो रही है।” कनकू बोला।

कनकू की बात सुनकर विद्यासागर को हँसी आ गई। वह उसी मुद्रा में बोला, “कनकू तुम तो बड़े बहादुर बनते हो, फिर इतनी छोटी-छोटी बातें सुनकर क्यों घबरा जाते हो? मैंने जब कोई गैर कानूनी काम किया ही नहीं तो दरोगा जी मेरा वारंट क्यों काट देंगे?”

“भय्या ! बड़ी गरम अकवाह है आस-पास के देहात में । मैं तो रामसिंह ने इसी खातर भेजा हूँ कि तुम गाँव में न आकर पहले थाने से खबर लो ।” कनकू बोला ।

“क्या बेकार की बातें करते हो कनकू ! मुझे थाने जाने की क्या आवश्यकता ? मैं सीधा अपने गाँव चलोंगा और देखूँगा कि मेरा वारण्ट कैसे मेरे ऊपर आकर चढ़ता है ?” गम्भीरता पूर्वक विद्यासागर ने कहा ।

विद्यासागर कनकू के साथ सीधा अपने गाँव आया और अपने बापू को नमस्कार करके हाथ का थैला चमेली को दिया ।

“अच्छे तो रहे बेटा !” रामभगत ने पूछा ।

“मैं बिल्कुल ठीक रहा बापू ! तुम अपना हाल बताओ । कमजोरी कुछ कम तो हुई होगी ?” विद्यासागर ने पूछा ।

“कुछ क्यों बँटा ? अब तो मैं खूब चल फिर लेता हूँ । कल ताना भी पूरा था मैंने । देख नहीं रहे हो पुरा पड़ा है खड़ी पर ।” रामभगत बोला ।

रामभगत बातें तो कर रहा था विद्यासागर से पर उसे चिन्ता थी उस अकवाह की कि विद्यासागर के गाँव में आते ही दरोगा जी उसे गिरफ्तार कर लेगे ।

रामभगत के चेहरे को पढ़कर विद्यासागर मुस्कराता हुआ बोला, “बापू ! तुम भी खामखा की बातों में आगये । मेरा वारंट दरोगाजी भला क्यों काटेगे ? मैं कोई जुल्म नहीं करता । किसी के नुकसान की बात नहीं सोचता मैं ।”

विद्यासागर की बात सुनकर रामभगत और उसकी माँ की चिन्ता कुछ दूर हुई, परन्तु दरोगाजी का भय अभी तक उनके दिमाग से पूरी तरह नहीं गया था ।

बिला कसूर कितने ही आवमियों को उन्होंने अपनी आँखों से दरोगा जी की चौपाल पर पिटते और गालियाँ खाते देखा था ।

कोई-कोई कई-कई दिन के लिए हवालात में भी बन्द कर दिया गया था और उनमें से कई के चालान करके उन्हें जेल भी भेज दिया गया था ।

भोला सुनार कितना सीधा और गऊ आदमी था । उसे इन्हीं दरोगा जी ने तीन महीने की जेल कटवाई थी ।

भुल्ला नाई को सात दिन हवालात में बन्द रखा था ?

बुन्दू बागवान की पिटवाते-पिटवाते चमड़ी उधड़वा दी थी ।

किसलिये ?

सुनार ने मुफ्त चीजें नहीं घड़ीं, नाई ने मुफ्त हजामत नहीं बनाई और बागवान ने मुफ्त अमरूद नहीं खिलाये ।

: ४० :

विद्यासागर को गाँव में आये तीन दिन हो गये और उसका वारण्ट लेकर दरोगा जी नहीं आये ।

रामसिंह, कनकू और अम्मन में यह देख कर जरा जान आई । और वे समझ गये कि अफवाह झूठी थी । रामभगत के दिल की बेचनी कुछ दूर हुई और सभी के दिलों में जरा तसल्ली हुई ।

विद्यासागर की माँ सूत की आटी बनाती हुई हाथ रोक कर बोली, “देखा तुमने चमेली के बापू ! मेरे विद्यासागर से लोग कितने चिढ़ते हैं ? कैसी झूठी-झूठी अफवाह फैलाते हैं ?”

रामभगत मुस्करा कर खड़की का काम रोकता हुआ बोला, “लेकिन मेरा बेटा भी कितना निडर है, यह भी तुने देखा ? रस्ती भर परवा नहीं करता वह दरोगा जी या चौधरी रूपसिंह की ।”

“या बात की ही तो चर्चा सारे गाम भर में है चमेली के बापू ! बड़ी जाल बालों के घर जब मैं सूत लेने जाती हूँ तो हिरा-फिरा कर सब इसी बात की चरचा करते हैं ।” विद्यासागर की माँ बोली ।

“और तू क्या जवाब देती है ?” रामभगत ने सतर्क होकर पूछा ।



“मैं के जबाब देती ? कह दियो जब बेटा-बेटी बड़े हो जायें हें तो उन्हें माँ बाप किस-किस काम से रोक सकें हें ? तुम्हीं अपने बेटा-बेटियों को देखल्यो कितनी कहना मानते हें ?” विद्यासागर की माँ ने कहा ।

“इसपै के बोलों चौधराइन ?”

“इसपै के बोलती ? मुँह फीकी पड़ गयी । अपने बेटे निहाल के कारनामे सुनाने लगीं ।”

“के के करनामे सुनाये, मैं भी तो सुनूँ ।” रामभगत ने पूछा ।

कहन लगीं के, “कहूँ विद्यासागर की माँ ! मेरे निहाल कू तो दरोगा नें खराब कर दियो । किसी दोन को नहीं छोड़ो । पढ़नी-लिखनी छुड़ा के कह्यो कि दीवान बनवा दूँगा पुलिस में ।”

“फिर बनवायो नहीं वाने ?” मुस्करा कर रामभगत ने पूछा ।

“विद्यासागर की माँ के चेहरे पर भी हँसी आई । वह बोली, “बनायो के मरे नें । चोर-उच्चका बना दियो । सुनो है अब तो दूसरन के खेत काट लावन में नाम पा गयी है ऊ । भूमन और कनकू के यू काम छोड़ने पे ऊ करन लग्यो है ।”

“और याके बदले में दरोगा वाकू सराब प्यावे है कभी-कभी तफरी कराने सहर भी ले जावे है ।”

“यूही लफज चौधराइन के भी थे ।” विद्यासागर की माँ बोली, “बिचारी बहुत दुख मान रही थीं । श्रीलाव नालायक है जाय तो मा-बाप के कलेजा पे कंसी गुजरें है या बात कू माँ-बाप का ही कलेजा जानें है ।

तभी विद्यासागर बाहर से आया और रामसिंह के पास जाकर बोला, “चौधरी रूपसिंह के बेटे को पुलिस पकड़ कर लिये जा रही है बापू ! देख लो जरा खटिया से उठकर । चौधरी लोगों के कारनामे देख लो ।”

“भोला सुनार के घर कूल करके घुस गये थे जनाब ।”

“फिर पकड़े कैसे गये रे सागर ? जाग हो गई के ? भोला भी पहलवान है ।” रामभगत बोला ।

“भोला ने वाकई बड़ी हिम्मत से काम लिया बापू ! निहालसिंह

ने चाकू गुभो दिया उसके हाथ में लेकिन उसने गट्टा नहीं छोड़ा उसका । और इतने जोर से चिल्लाया कि भूमन के कानों में उसकी आवाज पड़ गई ।”

“फिर के हुआ ?” रामभगत ने उत्सुकता पूर्वक पूछा ।

“रक्षा समिति” के पहरेदारों ने चारों ओर से घर घेर लिया और भूमन के साथ दो और नौजवान एक दूसरे के कंधों पर चढ़कर भोला की छन पर चढ़ गये और फिर दनादन घर में कूद पड़े ।”

“भूमन ने बड़ी जीदारी का सबूत दिया ।”

“तो के भूमन ने पकड़ा है निहाल कू ?”

“भूमन और उसके दोनों साथियों ने पकड़ कर रस्सी में बांध लिया उसे । सारा गांव इकट्ठा हो गया ।”

“तो के दरोगा और चौधरी रूपसिंह नहीं पहुँचे मौका पं ?”

“क्यों नहीं पहुँचे । दोनों अपनी-अपनी दुनाली बन्दूकों को लेकर पहुँचे ।”

लेकिन गोली एक भी न चला सके दोनों ।

मैंने सारे गांव के सामने आगे बढ़कर उनसे पूछा, “आने चोर बंदे को बन्दूकें लेकर छुड़ाने आये हैं आप दोनों । ताकत हो तो गोली चलाओ ।”

वरना वापस लौट जाओ । जिस गांव में ‘रक्षा समिति’ बन चुकी उसमें चोर नहीं रह सकता ।”

“फिर ?” गम्भीरता पूर्वक रामभगत ने पूछा ।

“फिर रामसिंह शेर की तरह बबकारता हुआ एक बम मेरे सामने आ गया और कड़क कर बोला, चौधरी साहब ! चौधरी नाम कू सलामत रखियो ! हमारी जुबान खराब न हो, या बात को खपा ल रहे । विद्यासागर की बाल भी बाँका है गयो तो थारी हबेली की ईंट-सैं-ईंट बजाय देंगे ।”

कनकू आँखें लाल करके बोला, “आ में का सक है ?”

विद्यासागर की माँ अपने बेटे का मुँह देखकर बोली, “फिर के हुया रे सागर ?”

“फिर क्या होता माँ ! पुलिस आई और पकड़ कर लिये जा रही है निहाला को ।”

रामभगत और विद्यासागर की माँ भौंचक्के रह गये ।

तभी सिर पर पानी के दो घड़े, एक के ऊपर एक, रखे मस्ती में झूमती हुई चमेली ने घर में प्रवेश किया और दोनों मटकियों को छोड़ कर आँखें तरेरती हुई बोली, “पुलिस ले गई माँ निहाला को हथकड़ी भर कं । अब मजा मिल जायगा इस हमारी और आँख मटकावन का ।”

कह कर वह पलहँडी पर पानी के मटके रखने चली गई ।

: ४१ :

विद्यासागर ने चार आदमियों के बैठने उठने के लिए अपने घर की कच्ची दुबारी को गुबरेंटी से लिपवा कर साफ़ कर लिया था । एक तख्त भी उसने बनवाकर उसमें बिछा लिया था और उस पर एक दरी बिछा कर ऊपर से खदर की सुफंद चादर डाल दी थी ।

संध्या को रामसिंह आया । कनकू और भूमन भी थोड़ी देर बाद आ पहुँचे । तीनों ने दिन भर के किस्से सुनाये ।

कनकू बोला, “यू पहला वाक्ता है भय्या सागर ! जामें छोटी जात का एक भी आदमी गिरफ्तार नहीं किया पुलिस ने । नहीं तो चोरी कोई करता था और पकड़े हम जाते थे ।”

भूमन ने भी कनकू की बात को सिर हिला कर सहारा दिया और बोला, “कनकू ठीक कहता है भय्या ! या गामका यू ही हाल रह्या है ।”

कनकू और भूमन की बात सुन कर विद्यासागर मुस्करा कर बोला, “इसमें छोटी और बड़ी जात की कोई बात नहीं है कनकू !

आदमी सब बराबर हैं। सबके काम सबके साथ हैं। जो चोरी करेगा उसी को जेल जाना होगा।

हमारे थाने के दारोगा धीरसिंह जी निहायत ईमानदार किस्म के आदमी हैं। वह एक पैसा भी रिश्वत लेना गऊ-मांस के बराबर समझते हैं। उन पर चौधरी रूपसिंह और दारोगाजी का रंग नहीं चढ़ सकता।

कनकू, भूमन और रामसिंह ने विद्यासागर के मुस्कराते हुए चेहरे पर देखा। उन्होंने पाया कि उसकी मुस्कराहट में गम्भीर निर्भोक्ता थी और सरलता भी पूरी-पूरी। उसके अन्दर भाँक कर देखा तो एक बूढ़ा आदमी बैठा था, जिन्दगी-भर के तजुरबों को लेकर, और ऊपर से देखो तो वह एक भोला-भाला युवक था,—कोई अजीब नहीं,—वही अपने गाँव के जुलाहे रामभगत का बेटा, सागर।

रामसिंह बोला, “तो थानेदार साहब थारे पहले के वाकफकार हैं सागर भट्टा।”

विद्यासागर ने बात का रुख बदल दिया और बोला, “हाँ रामसिंह! मैं तो तुमसे कहना भूल ही गया था। कल संध्या को थानेदार साहब गाँव में आयेंगे। गाँव की चौपाल के सामने वाले चौक में सभा होगी। गाँव और आस-पास के देहात में ढंडोरा पिटवा दो इसका।”

फिर बात चौधरी रूपसिंह के लड़के के विषय में चल पड़ी। विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “भूमन और कनकू देखा तुमने, चौधरी रूपसिंह के सपूत गये बड़े घर। तुम दोनों ने अगर उसका साथ न छोड़ा होता तो तुम्हारा भी बिस्तर कल गोल हो गया होता।”

“यामें का सक है।” गम्भीरतापूर्वक कनकू ने कहा।

भूमन ने भी वही बात दोहराई और उसका मन विद्यासागर के लिए स्नेह से भर आया।

दोनों ने अनुभव किया कि वास्तव में विद्यासागर ने उन्हें गलत रास्ते पर चलने से रोक कर ठीक रास्ते पर लगा दिया ।

जिन्दगी सुधार दी उनकी ।

अब उन्हें अपने-अपने घरों का ध्यान रहता था । अपने बाल-बच्चों में दो घड़ी प्यार से उठते-बैठते थे और मंडैया के रहने वालों में मिलते-जुलते थे । रात-बिरात दूसरों के खेत काटते नहीं फिरते थे वे । जो कुछ कमाते थे उसे अपने और अपने बाल-बच्चों के अंग से लगाते थे, या मोटा-भोटा पहन-फाड़ते थे ।

दारू से सम्बन्ध छोड़ दिया उन्होंने ।

भावनाओं में बह कर रामसिंह, भूमन और कनकू सोचते जा रहे थे ।

रामसिंह बोला, “मोकू लगता है सागर भय्या ! कि तुम गाम का रस्ता बदल दोगे ।”

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “मैं कुछ नहीं कहूंगा रामसिंह ! करोगे सब कुछ तुम लोग ही । मैं तो... जो कुछ तुम करते जाओगे उसका किस्सा लिखता जाऊंगा ।”

विद्यासागर की बात सुनकर रामसिंह कनकू और भूमन से बोला, “भय्या किताब भी लिखत हैं रे कनकू ! वा मैं मेरा, थारा और सबन का किस्सा रहैगा ।”

“क्यूँ भय्या सागर !” भूमन ने पूछा ।

विद्यासागर ने गर्दन हिला कर कहा, “जामे का सक है भूमन !”

: ४२ :

दूसरे दिन संध्या को गाँव में सभा हुई । सब लोग एकत्रित हुए । थानेदार धीरसिंह भी आये ।

सभा में चौबरी रूपसिंह और बारोगाजी नहीं आये ।

विद्यासागर ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। ठीक समय पर सभा की कार्यवाही प्रारम्भ कर दी।

थानेदार धीरसिंह ने अपने भाषण में कहा, “गाँव का पहरा देने को, आपने जो ‘रक्षा-समिति’ बनाई है उनका मैं दिल से स्वागत करता हूँ। आपके थाने की पुलिस, आप विश्वास रखें, हर आवश्यकता के समय आपका साथ देगी।”

थानेदार धीरसिंह की बात सुनकर भूमन की छाती फूल गई। वह खड़ा होकर बोला, “थानेदार साब, आपका हाथ कमर पे रहै तो के मजाल जो गाम में तो के आस-पास के देहात में भी कोई चोर पर मार जाय।”

कनकू भी सीना तान कर बोला, “उस्ताद भूमन कतई ठीक कहत हैं थानेदार साब ! का की सामत नै धक्का दियो है जो म्हारे पहरे में चोरी कर सकै ?”

अन्त में विद्यासागर ने कहा, “गाँव के वजुर्गों और साथियो, आज की यह सभा हमारे गाँव के इतिहास में पहली सभा है, जिसमें बैठ कर हमने अपने गाँव की सुरक्षा के बारे में सोचा है। हमारे थानेदार साहब ने इस शुभ अवसर पर आकर जो हमारी ‘रक्षा-समिति’ की सहयोग देने का विश्वास दिलाया है उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

आप सबने जो गाँव की सुरक्षा का काम अपने कंधों पर लिया है उसे आप पूरा करेंगे, इसकी मुझे पूर्ण आशा है।”

आज की सभा में थानेदार धीरसिंह ने जमालपुर गाँव के दिलों से सबियों पुरानी गुलामी के समय की जमी हुई पुलिस के प्रति अविश्वास की भावना को जोरदार ठोकर लगाई।

थानेदार धीरसिंह ने चारों ओर देख कर पूछा, “बौधरी रूपसिंह और दारोगा जी नहीं आये ? क्या खबर नहीं मिली उन्हें आज की सभा की ?”

“ग्राम आदमियों में खास आदमी बैठना-उठना पसंद नहीं करते।” मुस्कराकर विद्यासागर ने जवाब दिया।

लाला चोखेराम आज की सभा के प्रधान थे। सभा समाप्त होने पर थानेदार साहब ने उनसे पूछा, “कहिये लाला जी आपके फार्म पर तो अब काम ठीक चल रहा है ना ! कोई दिक्कत तो नहीं है आपको ?”

लाला चोखेराम हाथ जोड़कर बोले, “सरकार की मेहरबानी हो तो दिक्कत का क्या काम ? उस्ताद रामसिंह के सब आदमी काम पर आ गये हैं।”

थानेदार धीरसिंह मुस्कराकर बोले, “सुना है अब तो भूमन और कनकू के आदमियों को भी आपने अपने ही फार्म पर लगा लिया है।”

“लगा तो लिये हैं थानेदार साहब !” गर्दन झुकाकर लाला चोखेराम बोले “लेकिन यह समझ लीजिये कि दारोगा जी और चौधरी रूपसिंह से जिन्दगी-भर का बैर बँध गया।”

थानेदार धीरसिंह लापरवाही से बोले, “बँध जाने दो लाला ! कनकू और भूमन के रहते तुम्हारा रूपसिंह और दारोगा बाल भी बाँका नहीं कर सकते। ये ही तो वे दो आँखार थे जिनसे उन्होंने सारे देहात को नाकों चने चबा रखे थे।”

लाला चोखेराम ने थानेदार साहब के चेहरे पर ऐसी दृष्टि से देखा कि उनके नेत्रों की पुतलियों में लिखे अक्षरों को पढ़ने में थानेदार धीरसिंह को देर न लगी।

वह मुस्कराकर बोले, “लाला चोखेराम समझते तुम भी हो, जो कुछ मैं कह रहा हूँ।” उनके चेहरे पर थानेदार साहब की बात सुनकर मुस्कराहट नाच उठी। लाला चोखेराम और विद्यासागर गाँव के बाहर तक थानेदार धीरसिंह को छोड़ने गये।

एक तरफ अलहदा में उसने उनसे कुछ विशेष बातें भी कहीं। विद्यासागर बोला, “दीवान जी सुना है कुछ घुस-मुस कर रहे हैं दारोगा जी से मिलकर ?”

“मैं पूरा ध्यान रखता हूँ इस पर। तुम बेफिक्र रहो। रोजनामचे के पन्नों को एक-एक हफ्ता पढ़कर डाक खाना करता हूँ। पूरा अमला-का-अमला गंदा है विद्यासागर जी ! चरित्र ही खराब कर दिये हैं रिश्वत की आदत ने सिपाहियों के। हर वक़्त लूट-खसोट की ताक-भाँक में रहते हैं। ड्यूटी-को-ड्यूटी न समझकर खानापूरी समझते हैं।

मेरी शक्ल देख लेते हैं तो बिल्ली के सामने चूहों-जैसी दशा हो जाती है सबकी।”

“आपकी कठिनाइयों को मैं पूरी तरह समझता हूँ। आपने इस गाँव का वायुमंडल ठीक करने में जो मुझे सहयोग दिया है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।”

तभी रामसिंह थानेदार साहब का घोड़ा लेकर आ गया और उन्होंने सब से विदा ली।

: ४३ :

आज की सभा का जमालपुर के रहने वालों पर गहरा असर हुआ और आस-पास के देहात में भी विद्यासागर का नाम फैल गया।

रामसिंह, कनकू और भूमन का हीसला दोबाला हो गया।

लाला चोखेराम ने यह महसूस करते हुए भी कि उन्हें अपने मजदूरों के सामने बनना पड़ा, इसी बात पर संतोष किया कि उनकी आर्थिक हानि अधिक नहीं हुई।

गाँव-भर के अच्छे मजदूर उन्हें अपने फार्म पर काम करने के लिए मिल गये, इस बात का भी उन्हें संतोष था।

लेकिन रूपसिंह और दारोगा जी की दशा आज ठीक नहीं थी। उनके क्रोध का पारावार नहीं था। उनकी ताकत में होता तो वे घड़ी की चौथाई में विद्यासागर को हवालात में बन्द करा देते। पुलिस से कह कर गाँव के किसी भी कमीन-धमीन घुना-जुलाहे को हवालात बन्द करा देना चौधरी रूपसिंह और दारोगा जी के बायें हाथ



का खेल था। लेकिन थानेदार धीरसिंह पर कुछ पार नहीं बसा रही थी उनकी।

चौधरी रूपसिंह को अपने बेटे का चालात हो जाने का हार्दिक खेद था। और जब उन्हें अधिक रंज होता था तो वह ग़म ग़लत करने के लिए दारु पीते थे।

खाली बोतल हाथ में लिये खड़े थे, कि तभी दारोगा जी ने उनकी बैठक में प्रवेश किया।

दारोगा जी को देखकर चौधरी रूपसिंह सब पुरानी बातें भुलाकर भावुकता में भर गये। पुराने खान्दानी द्वेष न जाने कैसे एक दम काफ़ूर हो गये। बाप-दादों की मुकदमेबाज़ियाँ और सर-फुटव्वल की कथाएँ मस्तिष्क के काफ़ूर हो गईं।

दारु की खाली बोतल कानस पर रख कर बोले, “आग्रो, आग्रो दारोगा भय्या ! बंठो ! मैं तो स्वयं ही कई दिन से तुमसे मिलने की बात सोच रहा था।”

“तुम सोचते ही रह गये रूपसिंह और मैं आ भी धमका। समय नहीं था देर करने का। गाँव की फ़िज़ा खराब कर दी है, रामभगत जुलाहे के बेटे, सागर ने। गाँव के कमीन सर पर चढ़ कर बोलने लगे हैं।”

“इसमें कोई शक नहीं।” मूछें पेंनाकर आँखों की त्योरी चढ़ाते हुए चौधरी रूपसिंह बोले, और तभी उनका ध्यान लाला चोखेराम पर गया।

क्रोध में उनकी ज़बान से निकला, “गाँव की फ़िज़ा खराब करने में लाला चोखेराम को सागर से अधिक जिम्मेदार समझता हूँ दारोगा भय्या ?”

“इसमें भी कोई शक नहीं।” त्योरी चढ़ा कर बलखाते हुए दारोगाजी बोले, “वह मरबूब अगर इस सागर के बच्चे से न मिल जाता तो श्रब क इन चमारों की भ्रमल ठिकाने आ गई होती। इनके मवेशियों को मारा देना इसी का काम है।”

बातें करते-करते दोनों तख्त पर बिछे-पुराने कालीन पर बैठ गये ।

पहले इस तख्त के लिए चौधरी रूपसिंह हर साल नया कालीन लाते थे, लेकिन अब कई वर्ष से यह बदला नहीं गया था ।

दारोगाजी की नज़र सामने कानस पर शराब की बोतलों पर थी । लेकिन जब उनकी पैनी बिल्ली जैसी कंजी आंखों ने देख लिया कि वे सब खाली थीं, तो उन्हें बड़ी निराशा हुई ।

और सच बात तो यह थी कि उनको आज यहाँ खींच कर लाने वाली सबसे बलवती उनकी शराब पीने की इच्छा ही थी । वह यही सोच कर आये थे कि रूपसिंह के पास दारू का जखीरा रहता है । बोतल-दो-बोतल की तो गिनती ही क्या थी वहाँ ।

दारोगाजी की नज़रों को पहचान कर चौधरी रूपसिंह बोले, “बोतलें खाली हैं दारोगा जी ! हलक सूखा जा रहा है । कोई वस्तु था जब इस कानस पर बिलायती शराब की बोतलों की क़तार लगी रहती थी और एक आज का भी दिन है जब देसी देहात की खिची शराब का भी एक क़तरा इन बोतलों में नहीं है ।”

दारोगा जी का दिल भर आया । चौधरी रूपसिंह की लाचार बात सुनकर । चौधरी रूपसिंह गांव के रिश्ते से उनके भाई होते थे ।

वह रंजीदा चेहरा बनाकर बोले, “भय्या रूपसिंह ! हम तो इस कांप्रेसी सरकार को रोते हैं और रोते ही रहेंगे जब तक जिन्दा रहेंगे । मैंने वह भी जमाना देखा है जब ऐश की महफिलें मयखाना बनती थीं । शराब पानी की तरह बहती थी । और फिर मैं उसी शराब को गम-गलत करने के लिए पीता रहा । लेकिन आज वह दिन भी आगया जब उसी की खातिर तुम्हारे पास तक आया और तुम्हारी बोतल में भी एक क़तरा शराब न निकली ।”

चौधरी रूपसिंह और दारोगा जी की बातें चौधरी रूपसिंह की चौधराइन बैठक में से जनानखाने में जाने वाली खिड़की पर पड़ी चिक के अन्दर से सुन रही थीं ।

सरूपरानी पति की मानसिक पेशानी को समझ रही थीं। उन्हें पता था कि चौधरी रूपसिंह के लिए इससे अधिक कष्टदायक और कोई बात नहीं थी कि उनका कोई मित्र, रिश्तेदार या साथी उनके घर आये और वह उसे शराब पेश न कर सकें।

वह इसे अपनी खान्दानी इज्जत से छोटी बात समझते थे और फिर दारोगा जी पर वह किसी दशा में भी अपनी तंगदस्ती को जाहिर नहीं करना चाहते थे।

सरूपरानी ने खिड़की की कुंडी खटखटाई।

चौधरी रूपसिंह ने कुंडी की आवाज को सुना, और उनके चेहरे पर मुस्कराहट खेल उठी। उनकी आंखों के सामने अपनी पत्नी का गोल और गुलाबी चेहरा, कमल-पांखों जैसी कटारेदार आंखें खिल उठीं।

वह खड़े होकर खिड़की के पास गये।

दारोगा जी की नजर भी दूसरी तरफ न जा सकी। उन्होंने देखा कि एक गोरे मुलायम हाथ ने चौधरी रूपसिंह के काले भुजंग मजबूत हाथ में एक पूरी शराब की बोतल थमा दी।

दारोगा जी का दिल बाग-बाग हो उठा।

अपनी भाभी की समझदारी पर आज वह लट्टू हो गये और चौधरी रूपसिंह के लौटने पर उनके सामने जानी-अनजानी भाभी की तारीफों के पुल बांध दिये।

पत्नी की तारीफ सुनकर चौधरी रूपसिंह बोले, “देवी है दारोगाजी! पत्नी के मामले में मैं अपने को सबसे अधिक भाग्यवान समझता हूँ। मेरे दिल को ऐसे पहचानती है जैसे बच्चे को माँ पहचानती है।”

शराब की बोतल हाथ में लेकर दारोगाजी ने देखा और देखा कि वह हिलिस्की थी, ऐसी हिलिस्की जैसी वह अपने दारोगाई के जमाने में रिश्वत के बतौर पिया करते थे।

दारोगा जी ने शराब की बोतल को गौर से देख कर फिर चौधरी रूपसिंह के चेहरे को उससे भी अधिक गौर से देखा।

चौधरी रूपसिंह ने दारोगा जी की नजर पहचानते हुए कहा, “या गिरी हुई दशा के जमाने की शराब है दारोगा जी ! वरना मैं तो देस द्विस्की को छूता तक भी नहीं था ।” कहते-कहते चौधरी रूपसिंह सीने में उभार आ गया और दारोगाजी ने उनके बड़प्पन को दिल महसूस किया ।

और फिर ज़रा मुस्कराकर बोले, “भय्या रूपसिंह ! दौलत भी तं ताऊ जी कितनी छोड़ गये थे मरते वक्त । सारे गाँव और आस-पास वे देहात-भर के जेवर उनके पास गिरवी पड़े थे ।

तुमने क्या लौटाया है उनमें से एक भी ?”

“मैं था ही क्या पिताजी के मरते समय भय्या ! आठ साल का उम्र थी । लाला चोखेराम ही सब कुछ करते-धरते थे । ये ही पिताजी के मुनीम थे और माताजी को भी इन पर पूरा विश्वास था ।”

और फिर शराब की बोतल हाथ में लेकर बोले, “इस बोतल में मेरा सम्बन्ध जोड़ने वाला यही पाजी चोखेराम है । इसी ने मुझे शराब पीना सिखाया और यही आज शराब न पीने का ढंडोरा पीट रहा है ।”

चौधरी रूपसिंह बातें भी करते गये और तख्त के सामने एक छोटी सी मेज डालकर उस पर शराब की बोतल को भी टिका दिया । दा काँच के रंगीन गिलास निकाले और बाहर के दरवाजे बन्द करके दिय सलाई से कैरोसिन आयल का लैम्प जला दिया ।

: ४४ :

द्विस्की की मीठी-मीठी छुमारी ने चौधरी रूपसिंह और दारोगाजी के मस्तिष्क की थकावट और मामूली उलझनों को सुलझाकर विचार की दौड़-भाग के लिए मैदान साफ़ कर दिया ।

दोनों का विचार अपनी-अपनी खेती की बरबादी पर केन्द्रित हो गया ।

चौधरी रूपसिंह बोले, “भय्या दारोगाजी ! एक बात माननी ही होगी आपको कि शराब का आनन्द भी तभी आता है जब मन को चैन हो और दिल में राहत हो ।”

“इसमें क्या शक है रूपसिंह ! दिमाग में उलझनें लेकर जब उन्हें गलत करने के लिए शराब पी जाती है तो भी असल बात मन पर सवार रहती ही है ।

इस समय आपके साथ बैठा शराब पी रहा हूँ लेकिन दिमाग पर वही सागर का बच्चा सवार है । नशे के हर परत को फाड़कर खिल-खिलाता हुआ सासने आ खड़ा होता है मरदूद कहीं का ।”

“ठीक यही दशा मेरे भी भस्तिष्क की है दारोगा भय्या ! चोखे-राम ने कैसी हरामजदगी की है । चमारों से जाकर मिल गया । कनकू और भज्जन को भी उसने अपने फ़ारम पर काम दे दिया है ।

कितना नमक-हराम निकला, तुम ही देख लो ।”

“सब देख रहा हूँ रूपसिंह ! मैं लाला की नस-नस को पहचानता हूँ । ताऊ जी को मैंने कई बार इस बदनाश की चालबाजियों से आगाह किया था, लेकिन वह मरते समय तक इससे अपना पिंड न छुड़ा सके ।” दारोगा जी बोले ।

“और मरते समय भी माता जी से कह गये कि मुनीमजी को कभी काम से अलग न करना । वह तो मेरा ही दम था दारोगा भय्या ! जो मैंने इसका पत्ता काट दिया । नहीं तो इसने तो तुम्हारी भाभी के जेवरतों और जवाहरतों पर भी नज़र रखनी प्राम्भ कर दी थी ।” शराब की रमक में दिल खोलकर चौधरी रूपसिंह कह गये ।

दारोगा जी के कानों में जेवरतों और जवाहरतों की बात ऐसे खनखना उठी मानो किसी ने पास में चाँदी के खरे जार्ज पंचमी रुपयों की न्योली खोल कर बरसा दी हो ।

उसके दिल को निश्चय हो गया कि अभी चौधरी रूपसिंह की गाँठ खाली नहीं है । उसने निश्चय कर लिया कि वर्तमान दशा में एक

टक्कर लाला चोखेराम और चौधरी रूपसिंह की हो जाय । इसी टक्कर में अगर कहीं सागर भी लपेट में आ जाय तो उसे भी आटे-दाल का भाव याद दिला दिया जाय । इस सब चक्करबाजी में अपना भी कुछ दाल-दलिया हो ही जायगा ।

दरोगा जी ने मन की भावना मन में ही सुरक्षित रखी । चौधरी रूपसिंह के घर से आज शराब पीकर प्रेम्पूर्वक विदा हुए ।

चौधरी रूपसिंह उन्हें अपने दीवानखाने से आगे बढ़कर चौपाल की मुँडेर तक छोड़ने गये ।

विदा होते समय दरोगाजी बोले, “कोई चिंता की बात नहीं है रूपसिंह ! अपने लिए यह सब बालकों का खेल है । तीस साल ठसके की दरोगाई की है, और जिन थाने में भी रहा हूँ उसका बच्चा-बच्चा मेरे नाम से काँपता है । चोखेराम और सागर-जैसे लाला और धुने-जुलाहों को मैं नाखून के मँल के बराबर भी नहीं समझता ।

चैन की नींद सोओ और मौज से सुबह सोकर उठो । सब चिंताओं का भार मुझ पर छोड़ दो ।”

कहकर दरोगाजी रात्रि के शांत वातावरण में जोर से ठहाका मारकर हँस पड़े और चौधरी रूपसिंह ने भी शराब के नशे में दरोगा जी की हँसी में अपनी हँसी उतने ही जोर से न मिलाना अपनी तौहीन समझा ।

वातावरण फिर शांत हो गया ।

दरोगाजी अपने घर की तरफ चले गये और चौधरी रूपसिंह अपने दीवानखाने में ।

: ४५ :

कनकू, भम्भन और रामसिंह सागर की दुबारी से निकल कर लाला चोखेराम को उनकी हवेली पर छोड़ने जा रहे थे । रास्ते में

दारोगाजी और चौधरी रूपसिंह की हँसी का ठहाका सुन पड़ा। चारों खड़े हो गये।

चौधरी रूपसिंह की बैठक के सामने एक बड़ा नीम का पेड़ था। उसी के नीचे चारों ने दारोगाजी का अंतिम वाक्य भी सुना जिसे सुनकर लाला चोखेराम के दिल की धड़कनें बढ़ गईं।

लाला को कनकू और भम्मन ने दोनों ओर से सँभाला।

दारोगाजी और रूपसिंह के चले जाने पर कनकू और भम्मन ने लाला को जरा जोर से झँझोड़ा और रामसिंह ने कहा, “लाला चोखेराम ! हृद कर दी तुमने तो ! अभी-अभी विद्यासागर के सामने कैसी शेखियाँ बघार कै आये हो और अब दारोगाजी की जरा-सी जबानी लपलपी से थारी हालत खराब हो गई।”

लाला चोखेराम ने धीरे-धीरे अपने को सँभाला और देखा कि चौधरी रूपसिंह और दारोगाजी जा चुके थे।

वह संभल कर आँखें मलते हुए बोले, “कोई खास बात नहीं है रामसिंह ! मैं रूपसिंह और दारोगा के सामने नहीं पड़ना चाहता। आखिर क्यों किसी से शत्रुता बढ़ाई जाय। वैसे डरता नहीं हूँ मैं किसी से।”

लाला चोखेराम की बात सुनकर कनकू और भम्मन को हँसी आ गई और वे दोनों ठीक उसी प्रकार ठहाका मार कर चौधरी रूपसिंह के दीवानखाने के सामने हँस पड़े जैसे अभी-अभी कुछ क्षण पूर्व चौधरी रूपसिंह और दारोगाजी हँसे थे।

रामसिंह, कनकू और भम्मन तो अपनी हँसी में ही डूबे खड़े रहे, परन्तु लाला चोखेराम अवसर पाकर धीरे से खिसक गये। रूपसिंह की उस हवेली के सामने खड़े रहने का साहस उनमें नहीं था जिसमें से उन्होंने जीवन-भर छोटी-मोटी न जाने कितनी चोरियाँ की थीं।

लाला सीधे तीर की तरह यहाँ से छूटकर अपनी हवेली में पहुँचे । उनकी ललवाइन जाग रही थीं ।

“किमें शै के बात शै ?” ललवाइन ने लाला को हाँपते हुए देख कर पूछा ।

लाला की जवान से कोई उत्तर न निकला और वह ललवाइन के चेहरे पर गम्भीरतापूर्वक देखते हुए धीरे से सामने बिछे पलंग पर बैठ गये ।

रामसिंह सीधा अन्दर घुसता चला आया और ललवाइन के पास जाकर बोला, “तुम जो कहती थीं कि अब लाला रूपसिंह दारोगा जी से डरते नहीं हैं सो आज हमने परख लिया । लाला जी में आपकी जैसी हिम्मत नहीं है ।”

रामसिंह ने मुँह से अपनी हिम्मत की तारीफ़ सुनकर ललवाइन का कलेजा फूल गया और वह लाला चोखेराम की ओर मुसकराते हुए देखकर बोलीं, “किमें शै के चौधरी रूपसिंह मिल गया था रास्ता में ?”

रामसिंह ने पूरा किस्सा सुनाया तो ललवाइन भी जोर से खिल-खिला कर हँस पड़ी और उसे हँसता देखकर लाला चोखेराम को भी हँसना पड़ा । वह भी अपना मोटा पेट सँभालकर अपनी भोंप उतारने के लिए खूब हँसे ।

इस हँसी को सुनकर कनकू और भूमन से भी ड्योढ़ी पर खड़े न रहा गया और वे दोनों भी अन्दर आ गये ।

भूमन बोला, “आज तो हमारा भी बड़ा भाग है की हम सिठानी जी के दर्शन पा गये ।”

“और म्हारा भी ।” कनकू बोला ।

यह सुनकर ललवाइन का मन और भी फूलकर कुप्पा हो गया—। वह चुपके से कोठे में जाकर तीन बूरा के लड्डू निकाल लाई और एक-एक लड्डू तीनों को खाने के लिए दिया ।



: ४६ :

जमालपुर गाँव में एक देवी का मन्दिर था जिस पर वर्ष में एक बार मेला लगता था। देवी का मन्दिर एक छोटी-सी पहाड़ी के टीले पर था।

आज मेले का दिन था। विद्यासागर भी मेले में गया। उसने जाकर देखा कि मेले में आस-पास के देहातों का जन-समुदाय उमड़ा पड़ रहा था। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों और बच्चों की संख्या अधिक थी।

चाट-पकौड़ी वाले, मिट्टी के खिलौनों वाले, गन्दी-संदी मिठाइयों वाले, बच्चों को भुलाने की हरटों वाले, जलेबियों वाले और इसी तरह के अन्य दूकानदारों तथा खेल-तमाशे वालों ने मंदिर के चारों ओर बाजार लगाया हुआ था।

हर दूकान पर खरीदारों और देखने वालों की भीड़ थी।

लेकिन सबसे अधिक भीड़ देवी के मन्दिर पर थी; जहाँ आदमी-पर-आदमी चढ़ रहा था और बच्चे तथा स्त्रियों की बुरी दशा थी। एक-से-एक कुचला जा रहा था।

विद्यासागर और आगे बढ़ा, तो उसने देखा कि ठीक मन्दिर के दाईं ओर चौधरी रूपसिंह का डेरा लगा हुआ था। डेरे के बाहर एक प्याऊ थी जिस पर पानी पीने वालों की भीड़ थी।

चौधरी रूपसिंह और दारोगाजी दो मूढ़ों पर आसने-सामने बैठे थे। दोनों की मूर्छें चढ़ी हुई थीं। मलमल के सफेद कुत्ते दोनों ने पहने हुए थे।

अपने डेरे पर से ही मेले की सैर कर रहे थे।

दोनों की दृष्टि एक बार ही विद्यासागर पर गई और दारोगाजी छूटते ही बोले, “मेले की सैर को आया है सागर का बच्चा भी ! कनकू न हुआ आज मेरे पास। वह होता तो क्या यह मेले से अपने पैरों पर वापस चला जाता ?”

चौधरी रूपसिंह ठंडी साँस लेकर बोले, “और वह भूमन का बच्चा भी तो इसी से जा मिला । नहीं तो इसके लिए तो वह भी काफ़ी था । निहाला अगर जेल न गया होता तो मैं आज कुछ कर ही गुज़रता ।”

तभी दोनों की दृष्टि कनकू, भूमन और रामसिंह पर पड़ी जो विद्यासागर के पीछे-पीछे मस्ती में झूमते आ रहे थे । उन्हें देखकर दोनों के दिलों में थरथरी आ गई । दोनों काँप कर सहमे से बैठे रह गये ।

मन्दिर के द्वार खुलने वाले थे और पण्डित संकटमोचन अपना अँगोछा बाँधकर मस्तक पर सिद्धी तिलक दिये पूजा के लिए तय्यार थे ।

देवी के सर्व-प्रथम दर्शन चौधरी रूपसिंह को होने थे, क्योंकि उन्होंने ने देवी के लिए सबसे कीमती तीयल ( वस्त्र ) बनवाई थी; पर आज ज्योंही वह अपनी पूजा का सामान लेकर आगे बढ़े, त्योंही आस-पास के देहातों के छोटी जातियों के लोगों का चारों ओर जमाव दिखाई दिया ।

कनकू भीड़ में आगे बढ़कर बोला, “आज देवी के दरसन सबसे पहले उस्ताद भूमन की माँ करेंगी । अस्सी साल की हैं वह । इस तमाम भीड़ में उनसे बड़ा अगर कोई और आदमी हो तो वह माला सँभाल ले ।”

भीड़ थोड़ा पीछे हटी । भूमन की माँ से बूढ़ा और कोई आदमी आगे नहीं आया । भूमन की माँ आगे बढ़ गई । उसके हाथों में फूलों की माला थी । एक छोटी-सी सूतन, कमीज और एक पीले गोठे की ओढ़नी ।

यह देखकर रूपसिंह और बारोगाजी की त्योरी चढ़ गई । पण्डित संकटमोचन की भी आँखें लाल हो गईं । उनका चेहरा तमतमाने लगा ।

पण्डित संकटमोचन आगे बढ़कर बोले, “ये नीच जाति के लोग आज देवी के मन्दिर में कैसे आये ? मैं दरवाजा बन्द करता हूँ मन्दिर का । खबरदार, जो किसी ने भी मन्दिर में प्रवेश किया !”

इस पर कनकू कड़क कर बोला, “ओ संकटमोचन पण्डित ! जरा जुवान सँभाल के बोल । और देवी के द्वारे से दूर हट जा । देवी सारे गाँव की है । तू ठेकेदार नहीं है देवी का ।”

विद्यासागर तभी आगे बढ़कर गम्भीरतापूर्वक बोला, “पण्डितजी होश कहाँ हैं आपके ? जेल जाने की ठानी है क्या ? मालूम नहीं है आपको कि आज किसी को नीच जात कहना अपराध है । जैसे रक्त और माँस के बने पुतले आप हैं, वैसे ही तो ये सब लोग भी हैं । आप में क्या विशेषता है जो इनमें नहीं है ?”

विद्यासागर की बात सुनकर जन-समुदाय में जोश भर गया । पण्डित संकटमोचन थर-थर काँपने लगे । गाँव के सब ऊँची जाति के लोगों को भी क्रोध आ रहा था, परन्तु आज नीची जाति के लोगों की संख्या उनसे कई गुनी थी ।

इसी समय मेले में इंतजाम के लिए आई हुई पुलिस के सिपाही भी वहाँ आ पहुँचे । थानेदार धीरसिंह उनके साथ थे ।

थानेदार धीरसिंह की दृष्टि विद्यासागर से मिली और दोनों मुस्करा दिये ।

विद्यासागर ने चौधरी रूपसिंह की सहमी हुई सूरत देखी और अवसर पाकर बोला, “गाँव के पुराने और सभ्य व्यक्तियों से मैं प्रार्थना करूँगा कि वे समय की बदलती हुई हवा को पहचानें और उसी के साथ उसका आनन्द लेते हुए आगे बढ़ते चलें । उससे टक्कर लेने का साहस न करें ।”

फिर जरा और आगे बढ़कर कहा, “मैं चौधरी रूपसिंह से आज विनयपूर्वक प्रार्थना करके कहता हूँ कि वह स्वयं आगे बढ़कर अपने हाथ की तीयल को उस्ताद भूमन की माताजी के हाथों में दे दें और देवी की पूजा प्रारम्भ करायें ।

इससे बड़ा काम करने का अन्य अवसर उनके जीवन में कभी नहीं आयेगा । मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह इसे पूरा करेंगे ।”

विद्यासागर के प्रभावशाली शब्दों ने चौधरी रूपसिंह के दिल को हिला दिया और चौधरी रूपसिंह के कदम आप-से-आप आगे बढ़ गये।

भूमन की माँ को वह पहले भी माँ कहकर ही पुकारते थे। उन्होंने अपने हाथ की तीयल भूमन की माँ के हाथों में देदी और स्वयं उसे साथ लेकर मन्दिर की ओर बढ़े।

जन-समुदाय ने जमालपुर की देवी की जं के नारे लगाये। और दारोगाजी चुपके से एक ओर को खिसक गये।

आज से जमालपुर की देवी के मन्दिर का द्वार मनुष्य मात्र के लिए खुल गया। जमालपुर और इसके आस-पास के देहातों में यह महान् क्रांति हुई।

: ४७ :

चौधरी रूपसिंह की धर्मपत्नी सरूपरानी डेरे पर से ही यह दृश्य देख रही थी। उन्हें अपने पति की समझदारी पर हार्दिक संतोष हुआ।

विद्यासागर पर उनकी दृष्टि गई तो मानो गड़कर रह गई। वह कितनी ही देर तक उसे देखती रहीं और उनका ध्यान तभी टूटा जब कुमारी लता ने उनकी साड़ी का पल्ला पकड़ कर पूछा, “यही हमारा सागर, विद्यासागर है माँ ? इसी ने आस-पास के देहात में तहलका मचाया हुआ है ? इसी ने ताऊ भूमन को हमारे काम पर आने से रोक दिया ? इसी को दारोगाजी उस दिन हजार गालियाँ दे रहे थे ?

लेकिन बुरा आदमी तो नहीं लगता यह माँ ?”

सरूपरानी ने कुमारी लता की बातों का उत्तर दिया, “हाँ यही है विद्यासागर, बेटे हमारे जुलाहे रामभगत का बेटा। बड़ा पढ़ लिख गया है। एम० ए० पास करके भी इसने नौकरी नहीं की। देहात के लोगों की भलाई के लिए देहात में ही रह रहा है।”

तभी चौधरी रूपसिंह उधर आते दिखाई दिये । उनके साथ-साथ थानेदार धीरसिंह भी थे ।

सरूपरानी और कुमारी लता डरे के अन्दर चली गईं । वे दोनों बाहर सूइयों पर बैठ गये ।

थानेदार धीरसिंह बोले, “आज तुमने बड़ी समझदारी से काम लिया चौधरी रूपसिंह ! मैं तुम्हारी समझदारी की दाव देता हूँ ।”

चौधरी रूपसिंह बोले, “थानेदार साहब, अगर सच दूखी तो मैंने जो कुछ भी आज किया उसमें समझदारी से अधिक मेरी भावुकता थी । और उससे भी बड़ा सच यह है कि सागर की बात में मुझे इतनी गहरी सचाई दिखाई दी कि उसे न मानना मेरे लिए कठिन हो गया । मेरे पैर अपने-आप उस ओर बढ़ गये ।”

थानेदार धीरसिंह बोले, “विद्यासागर जी बड़े समझदार व्यक्ति हैं । आप जैसे साधन सम्पन्न लोग यदि उन्हें सहयोग दे तो कोई बाधा नहीं कि यह आपके गाँव और देहात को स्वर्ग न बना दे । मैं उन्हें नेक इंसान समझता हूँ । इसीलिए उनके हर काम में सहयोग देता हूँ ।”

तभी सामने से दारोगाजी आ गये और मसखरी आवाज में बोले, “ओ हो, थानेदार साहब तयारी कर रहे हैं । मेले की देख-भाल के लिए आये हैं शायद ?”

इतना कहकर पास में पड़े तीसरे सूइयों की तरफ़ा कर उस पर बैठ गये ।

थानेदार धीरसिंह ने मुस्कराते हुए पूछा, “कौरी हालचाल हैं दारोगाजी के ? कौसी गुजर रही है ? फसल बो दी या नहीं अभी ।”

दारोगाजी सिर खुजलाते हुए बोले, “फसल आप कहाँ बोने देंगे थानेदार साहब ! आपकी ही तो दी पाकर सब मजदूरों ने काम पर आना छोड़ दिया । वरना क्या मजाल थी किसी की जो जमालपुर गाँव में रहता, और हमारे खेतों पर काम करने न आता ?”

कहकर दारोगाजी चुप हो गये ।

थानेदार धीरसिंह हँसकर बोले, “वह समय नहीं रहा है दारोगाजी अब जिसका आप स्वप्न देख रहे हैं । अपना रंग-ढंग सुधारिये तभी मजदूर मिल सकेंगे आपको ।”

इतना कहकर थानेदार धीरसिंह मूढ़े से खड़े हो गये । चौधरी रूपसिंह उनके साथ-साथ चले परन्तु दारोगाजी खड़े भी नहीं हुए । वह मन-ही-मन कुढ़ते वहीँ मूढ़े पर बैठे रहे ।

कुढ़ते रहे और सोचते रहे कि क्या यह थानेदार धीरसिंह का अच्छा हमारे थाने में जीवन भर बना रहेगा ? कभी तो इसका तबादला होगा ही ।

तब देख लूंगा इस कल के छोकरे सागर को । हमारे ही जुलाहे का लड़का और हमीं को स्याऊं । उनका मन कुढ़-कुढ़ कर कह रहा था, ‘कैसा चालबाज निकला यह बदनाम लड़का । रूपसिंह को भी उल्लू बनाकर ले उड़ा अपने साथ ।

अवश्य ही यह इस काठ के उल्लू को अपना गुलाम बना लेगा ।’

: ४८ :

दारोगाजी अकेले बैठे गांव के भविष्य, अपने भविष्य और रूपसिंह के भविष्य के बारे में विचार कर रहे थे । उन्हें रह-रह कर रूपसिंह की आज की बेहूदगी पर तरस खाना पड़ रहा था ।

कल जब रात को वह चौधरी रूपसिंह के दीवानखाने से शराप पीकर निकले थे तो उनके मस्तिष्क की दशा कुछ और थी और इस समय जब चौधरी रूपसिंह सागर के कहने पर अपनी देवी की तीयल और सबसे पहले देवी के दर्शन करने का अधिकार भूमन की बूढ़ी माँ को दे चुके थे, तो कुछ और ।

रात-भर में उन्होंने जो मनसूबे बाँधे थे और अपने वर्तमान खर्च की जो रूप-रेखा बनाई थीं वे सब स्वप्न में विलीन हो गईं ।”

कल वह इस चिंता में थे कि जब फ़सल नहीं बीजी गई तो आगामी वर्ष का खर्चा कैसे चलेगा। इसी चिंता को गलत करने के लिए उन्हें जब देसी देहात की खिची शराब की एक बूँद नसीब नहीं हुई तो चौधरी रूपसिंह के दीवानखाने में पहुँचे थे।

वहाँ इन्हें शराब भी बढ़िया किस्म की मिल गई और यह भी पता चल गया कि चौधरी रूपसिंह की धर्मपत्नी पर अभी काफ़ी जेवर और जवाहरात हैं।

यदि यह पता उन्हें तब चल जाता जब कनकू उनके पास था तो सात तहखानों के बीच से भी तिजोरी निकलवा कर मँगवा लेते; परंतु आज दारोगाजी के हाथ-पैर कटे हुए थे। कनकू उनके पास नहीं था। और उन्होंने यह भी सुना था कि कनकू ने अब भविष्य में चोरी न करने का प्रण कर लिया है।

दारोगाजी के माथे पर पसीना आ गया।

रूपसिंह की मूर्खता पर उन्होंने रह-रह कर तरस खाया।

और तभी वह मुस्करा कर खड़े हो गये।

डैरे की तरफ़ मुँह करके बोले, “बेटी लता ! रूपसिंह आयें तो कह देना कि मैं गाँव की तरफ़ जा रहा हूँ। कुछ ज़रूरी काम है मुझे।”

केवल इतना कह कर वह गर्दन नीची किये धीरे-धीरे गाँव की तरफ़ चले गये।

: ४६ :

चौधरी रूपसिंह थानेदार धीरसिंह को उनके घोड़े के पास तक छोड़ने गये।

चौधरी रूपसिंह के मन में थानेदार धीरसिंह की ओर से बड़ी जलन थी। उन्हीं के हाथों उनका बेटा निहालसिंह चोरी के मामले में पकड़ा गया था।

चलते समय थानेदार धीरसिंह बोले, “चौधरी रूपसिंह रुकू

हादिक खेद है कि मेरे द्वारा आपका बेटा निहालसिंह पकड़ा गया, लेकिन आप विश्वास रखें कि यदि उस जगह मेरा अपना बेटा भी होता तो मैं उसे भी बन्दी किये बिना न रहता ।”

चौधरी रूपसिंह ने निहालसिंह की बात सुनकर डबडबाई आँखों से धीरसिंह के चेहरे पर दीन भाव से देखा । मौके पर चोरी करता पकड़ा गया था इसलिए कहते भी क्या । परंतु बेटे की ममता आँखों में छलछला रही थी ।

थानेदार धीरसिंह बोले, “आपके इतने बड़े परिवार को दाग लग गया, इसका भी मुझे हादिक खेद है; परंतु आपने भी तो कुछ समझ-दारी से काम नहीं लिया ।

दारोगाजी जैसे छूटे हुए आदमी की संगत में उसे बंठने देकर आपने उसका जीवन बर्बाद कर दिया । उसे चोर बना दिया, अय्यार बना दिया, निकम्मा कर दिया ।”

चौधरी रूपसिंह मौन थे । धीरसिंह के सामने उनकी गर्दन झुक गई । उनकी सही बात का कोई जवाब नहीं था रूपसिंह के पास । उन्होंने तो दारोगाजी के पास बंठने-उठने की इसलिए आज्ञा दे दी थी कि दारोगाजी उसे पुलिस में नौकरी दिलाने जा रहे थे । थानेदार साहब चलते-चलते बोले, “मेरी आज की बातों का मतलब आप समझ गये होंगे चौधरी रूपसिंह, मैं चाहता हूँ कि बेहात में अमन-चैन रहे । आपस में बैर भाव न हो । एक दूसरे का हमदर्द और मददगार हो । आप सब मिलकर अपनी हिफाजत करें । अपने जीवन आपसी लड़ाई भगड़ों में नहीं, अमन-चैन से बितायें ।”

चौधरी रूपसिंह ने थानेदार साहब की बातें धुनाई । दारोगाजी इस समय उनकी दृष्टि के सामने खड़े थे ।

उन्हें रह-रह कर एक-एक बात याद आई । दारोगाजी की नई-पुरानी वे सब शक्लें मस्तिष्क में उतर आईं जिन-जिन रूपों में उन्होंने अपने को समय-बे-समय चौधरी रूपसिंह के सामने पेश किया था ।



नौकरी से बर्खास्त होकर जिस दिन दारोगाजी गांव में आये थे तो बड़े दबदबे के साथ आये थे । दो-तीन दस नम्बरी बदमाश वह अपने साथ लाये थे और उन्हीं की मदद से उन्होंने जमालपुर और उसके आस-पास के देहात में एक अजीब खलबली पैदा कर दी थी ।

दिन-बहाड़े लोगों के खेत कटवाकर इन्होंने अपने जानवरों के घारे में इस्तेमाल किये थे । लेकिन यह दशा अधिक नहीं चल सकी, क्योंकि उन दस नम्बरी बदमाशों के लिए अब पूरा चारा नहीं रह गया था दारोगा जी के पास । जब वह थानेदार थे तो इन बदमाशों को इलाके में कोहराम मचाने की पूरी छूट थी । हकूमत अपने हाथ में थी । परन्तु अब न तो हकूमत ही थी और न इलाका ही अपना था । हकूमत की दलाली-भर थी अपने पास ।

इसलिए वे दस नम्बरी बदमाश एक-एक करके नौ-दो-ग्यारह हो गये । तब इन्होंने कनकू और उसकी चौकड़ी पर हाथ रखा । इस चौकड़ी ने गांव में काफ़ी गुल खिलाया ।

रातों-रात लोगों के खेत साफ हो गये । आज किसी की भोंपड़ी में चोरी हुई तो कल किसी के घर में कूमल हो गया । आज किसी की फ़सल का अनाज उठ गया तो कल किसी के बाग के सब फल रातों-रात तोड़ लिये गये ।

रोजाना पुलिस पड़ी रहने लगी जमालपुर में और थाने के दारोगा जी का हन्टर रोज बरसने लगा बेकसूर गरीब लोगों पर । कनकू के साथी ऐश करते और उनके पड़ोसी खामखा पिटते ।

समय बदल गया । दारोगाजी के खर्चे कम नहीं हुए । ग्रामदानी का कोई जरिया न बना । जमीन पर खेती करना उनके वश की बात नहीं थी । और जो इसी समय भगवान् की ओर से उत्कापात हुआ वह था थाने में धीरसिंह थानेदार का आ जाना ।

थानेदार धीरसिंह ने पहली ही मुलाकात में दारोगा जी से स्पष्ट कह दिया था, “अब रिश्तत नहीं चलेगी दारोगाजी और ये चोरियां जो आपके इलाके में हो रही हैं, आपको बन्द करानी होंगी ।”

“तो ये चोरियाँ मैं करता हूँ। आपका यह मतलब है ?” दारोगाजी ने तुनक कर कहा था।

“बिल्कुल-बिल्कुल। मेरा यही मतलब है। और यदि आप इन्हें बंद नहीं करायेंगे तो मैं बंद करा दूँगा। आप निश्चित रहें।” थानेदार धीरसिंह ने मुस्करा कर कहा था।

ठीक वे ही शब्द चौधरी रूपसिंह के सामने दारोगाजी ने बुहरा कर मूर्खों उमेंठते हुए कहा था, “कल का छोकरा। थानेदार बनकर आ गया है, तो मुझी पर रौब गाँठना चाहता है। बड़ा आया है ईमानदार का बच्चा बनकर।”

परन्तु सच यही निकला कि थानेदार धीरसिंह ने वास्तव में इलाके के अन्दर इस सरगर्मी से काम किया कि चोरों के रास्ते बंद हो गये और उनका हिलना-डुलना भी कठिन हो गया।

ऐसी दशा में कनकू को भी फ़ाकों की नौबत आ गई और उसका वर्ष-भर का वेतन रुक गया।

पाता भी कहाँ से वह ? खेती करते नहीं थे दारोगाजी और जो काम वह करते थे वह थानेदार धीरसिंह ने बंद कर दिया।

तभी थानेदार धीरसिंह बोले, “अबका रूपसिंह मैं अब चला। दो-चार दिन में फिर आऊँगा।” कहकर उन्होंने घोड़े को बड़ा दिया।

चौधरी रूपसिंह अपने डेरे की तरफ़ चल दिये।

: ५० :

संध्या को विद्यासागर की दुआरी में कनकू, अम्नन, रामसिंह और लाला चोखेराम बंठे थे।

लाला चोखेराम इन चारों में सबसे अधिक प्रसन्न थे। उनके गोल-मटोल चेहरे का काला रंग दमदमा रहा था। मोटे पेट पर मलमल का कुर्ता पड़ा था और दिल में प्रसन्नता के कारण लहरें उठ रही थीं।

लाला चोखेराम बोले, “विद्यासागर, और चाहे जो कुछ भी हो,

तुमने आज मात खूब दी चौधरी लोगों को। बड़ा नाक वाला बनता था रूपराम। मेरे जैसे सेठों की भी कमीन-धमीनों में गिनती कराता है।

चोखेराम की बात सुनकर विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “लाला चोखेराम हमने किसी को मात नहीं दी है। यह मात और विजय की बातें आप निकाल दें अपने अस्तिष्क से। हमने एक सही काम किया है। देवी के मंदिर का द्वार मनुष्य मात्र के लिए खुलना चाहिए था। देवी सब की माता है। उसके दर्शन सब करना चाहते हैं। मनुष्य होने के नाते कोई कमीन नहीं है, कोई छोटा नहीं है।”

विद्यासागर की बात सुनकर लाला चोखेराम सहमे-से रह गये।

तभी उस्ताद भम्मन ने मुस्करा कर कहा, “अच्छा सेठ जी और जो हुआ सो हुआ ही, परंतु यह तो बताओ कि आप आज रहे कहाँ ? देवी के दर्शन करने क्यों नहीं आये ?”

भम्मन की बात सुनकर लाला चोखेराम थूक सटकते हुए गला साफ़ करके बोले, “आता क्या भय्या सागर ! मैं तो कहना ही भूल गया। आज सुबह से ही तबियत ऐसी खराब हुई, ऐसी खराब हुई, कि क्या कहूँ तू तो जानता ही है रामसिंह सेठानी की आदत को जहाँ कि मेरी तबियत ज़रा उल्टी हुई और उसने ड्योढ़ी पर ताला लगाया।

लाख विनती की मैंने कि मुझे जाना जरूरी है देवी के मेले में, लेकिन एक नहीं सुनी उसने। ठीक सात बजे ताला खोला तो मंदिर जाने का समय समाप्त हो चुका था। सीधा इधर चला आया। मेरा मन और मन की लगन यहीं लगी थी।”

लाला चोखेराम की बात सुनकर कनकू, भम्मन और रामसिंह खूब जोर-जोर से हँसे परंतु विद्यासागर शांत ही बना रहा।

तभी सबने आश्चर्यपूर्वक देखा कि चौधरी रूपसिंह विद्यासागर की दुबारी में खड़े थे।

विद्यासागर ने खड़े होकर उनका स्वागत किया।

कनकू, भूमन, रामसिंह और लाला चोखेराम दुबारी से बाहर चले गये ।

एक मिनट चौधरी रूपसिंह और विद्यासागर आमने-सामने चुपचाप खड़े रहे । तब विद्यासागर बोला, “कच्ची जमीन पर बिछी चटाई के ऊपर विराजने के लिए आपसे कहते संकोच तो होता है परंतु यही है आपके जुलाहे रामभगत के बेटे सागर के पास । पधारिये इसी पर ।

चौधरी रूपसिंह चटाई पर बैठ गये और फिर भी बहुत देर तक विद्यासागर के चेहरे को ध्यानपूर्वक देखते रहे ।

रामभगत अंदर चौक में खड़ी पर कपड़ा बुन रहा था । उसे जब पता चला कि उसके घर चौधरी रूपसिंह आये हैं तो उसका हृदय प्रसन्नता से भर उठा ।

कपड़ा बुनना छोड़कर वह भी दुबारी में जा पहुँचा और हाथ जोड़ कर बोला, “चौधरी साहब पाँव लागन ।”

“अच्छे तो हो रामभगत !” धीरे से चौधरी रूपसिंह ने पूछा ।  
“इधर काफ़ी दिन से दिखाई नहीं दिये ।”

आपकी मेहर है चौधरी साहब ! आपने आज इस गरीब की भोंपड़ी को अपने पैर रख के पवित्र कर दिया ।” कृतज्ञतापूर्वक रामभगत बोला ।

चमेली भी दुबारी की बगल से चौधरी रूपसिंह को देखकर सीधी घर में दौड़ी चली गई और अपनी माँ से बोली, “ठीक भय्या के पास बैठे हैं चौधरीजी । मेरा भय्या भी उनके पास बैठा बड़ा आदमी-सा जंच रहा है री माँ !”

“जमीन पे ?” आश्चर्यपूर्वक विद्यासागर की माँ ने पूछा ।

“हाँ माँ ! जमीन पे ही ।” चमेली ने उत्तर दिया ।

विद्यासागर की माँ की छाती गर्व से कई इंच चौड़ी हो गई । उसके हर्ष का पारावार नहीं था । गाँव का सबसे बड़ा चौधरी आज

उसके घर आया था, उसके लाल से मिलने, यह कुछ कम गर्व की बात नहीं थी उसके लिए ।

: ५१ :

चौधरी रूपसिंह ने थानेदार धीरसिंह से जो उनकी बातें हुई थीं वे ज्यों-की-त्यों विद्यासागर के सामने दुहरा दीं ।

विद्यासागर बोला, “चौधरी साहब ! हमारे गाँव और आस-पास के देहात का सौभाग्य है कि जो धीरसिंह जो जैसे थानेदार हमारे थाने में आये । आज के जमाने में, जब रिश्वत और घूसखोरी का बोलबाला है, ऐसे आदमी को मैं देवता ही कहूँगा ।

वह कैसे नेकनीयत इंसान हैं । यह बहुत कम लोग जानते हैं । इन्सान के रूप में देवता हैं वह । भूठ और रिश्वत से उनको बड़ी भारी चिढ़ है ।”

चौधरी रूपसिंह मुस्कराकर बोले, “आदमी वास्तव में बेजोड़ हैं धीरसिंह, आज मुझे काफ़ी खुलकर बातें हुईं । निहालसिंह के जेल जाने का उन्हें हादिक खेद है ।”

“खेद मुझे भी कम नहीं है चौधरी साहब ! निहालसिंह को मैं अपना बड़ा भाई समझता हूँ । लेकिन मैं अपने बड़े भाई को भी कभी यह अधिकार नहीं दे सकता कि वह गाँव के किसी घर में जाकर चोरी करे और गाँव के शांत वातावरण को अशांत कर दे ।

निहालसिंह आपका बेटा है इसलिए आपके दिल पर बहुत गहरी चोट लगी । सो लगनी ही चाहिए थी । उस चोट को खाकर आप मुझ पर क्रोधित हुए, इसे भी मैं स्वाभाविक समझता हूँ । मुझे कोई रोष नहीं, कोई शिकायत नहीं ।

आपका मैं उतना ही आदर करता हूँ जितना मेरे पिता रामभगत करते हैं । उसमें कभी कोई अंतर नहीं आया, कभी कोई अंतर नहीं आयेगा ।”

आज चौधरी रूपसिंह की गर्दन झुक गई विद्यासागर के व्यक्तित्व के सामने । वह विनम्र होकर बोले, “मेरे ऊपर, सच बात यही है कि उस समय दारोगा भट्टा का ऐसा प्रभाव था सागर, कि जिसने मेरी आँखें बंद कर दी थीं ।

उसी ने मुझे समझाया था कि पास-पड़ोस वालों को कभी पनपने नहीं देना चाहिए । रात-बिरात उनकी खड़ी फ़र्स्ते कटवाकर अपने बेलों को चारे में खिला देनी चाहिए । गाँव की छोटी जात के लोगों को कभी इस योग्य नहीं होने देना चाहिए कि वे दो समय पेट-भर रोटी खा सकें और उन्हें तन ढाँपने को पूरा बपड़ा मिल सके । तभी वे हमारे दबाव में रह सकते हैं ।

उसने मुझसे वायदा किया था कि वह निहालसिंह को पुलिस में दारोगा बनवा देगा । इसी लालच में मैंने उसे उसकी चौकड़ी में बैठने से नहीं रोका ।”

विद्यासागर बोला, “और निहालसिंह दारोगा न बनाकर बना दिया चोर, उचक़्का, अय्यार, शराबी, नशेबाज और न जाने क्या-क्या ? एक नौजवान का जीवन बर्बाद करके रख दिया । वरना इतना हसीन आदमी है कि उसका सानी हमारे आस-पास के देहात में दूसरा नहीं है ।”

विद्यासागर की बात सुनकर चौधरी रूपसिंह की आँखों के सामने निहालसिंह आखड़ा हुआ । और वह उसकी बरवादी का उत्तरदायित्व आज अपने ऊपर लेने को तय्यार हो गये ।

उन्होंने गम्भीरतापूर्वक कहा, “तुम सच कहते हो सागर ! निहालसिंह के जीवन को बर्बाद करने का उत्तरदायित्व मेरे ही ऊपर है । मैंने ही उसे गलत संगत करने से न रोका । मुझे रोकना चाहिए था ।”

चौधरी रूपसिंह की बात सुनकर उनका भारी मन हलका करने के लिए विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “आप कर भी कुछ नहीं सकते

थे चौधरी साहब ! सच तो यह था कि आप जिस रास्ते पर चल रहे थे, उसे आप गलत ही नहीं समझते थे । फिर रास्ता बदलते कैसे ?”

“तुम्हारा यह कहना भी सच है सागर ! मैं वास्तव में दारोगा भय्या की संगत को गलत नहीं समझता था । अभी परसों रात को ही तो मैं उसके साथ बैठकर शराब पी रहा था ।

वह अपना शत्रु तुम्हें बतला रहा था और मैं अपना शत्रु लाला चोखेराम को कह रहा था । परंतु आज की घटनाओं से मुझे ज्ञात हुआ कि मेरा सबसे बड़ा शत्रु मेरा भाई दारोगा ही है । इसी ने मेरा और मेरे बेटे निहार्सिंह का रास्ता गलत करके मेरे जीवन में एक अजीब प्रकार की उदासी पैदा कर दी, मेरी सब जिन्दादिली समाप्त करके रख दी ।

सच जानो सागर ! जिस दिन से निहार्सिंह पकड़ा गया है उस दिन से किसी चीज में भी मन नहीं लगता । उसकी माँ सरूपरानी की कंसी दशा हो गई है यह तुम स्वयं मेरे यहाँ आकर देखना । बेटी लता भी अपने भाई के बिना बड़ी उदास है ।”

चौधरी रूपसिंह को विदा करते समय विद्यासागर ने वचन दिया कि वह दूसरे दिन प्रातःकाल कलेवा के समय चौधरी रूपसिंह की हवेली में आयेगा ।

: ५२ :

चौधरी रूपसिंह जमालपुर के सबसे बड़े जमींदार थे । लाड़-चाव : में पले । कई घरों में इकलौते बेटे थे । ऐसी दशा में पढ़ना-लिखना उनके लिए विशेष आवश्यक नहीं था ।

परन्तु समय एकसा नहीं चलता । वह बदला लम्बी-चौड़ी रियासतें और जमींदारियाँ सरकारी कानून ने समाप्त कर दीं । जो जमीनें अपनी जोत में थीं केवल वे ही जमीनें जमींदारों के पास रह गयीं ।

चौधरी रूपसिंह की बहुत बड़ी जमींदारी इस प्रकार उनके हाथों

से जाती रही । परन्तु फिर भी उनके पास आय के कम साधन नहीं थे । चार बाग थे आमों के, जिनकी फसलें तीन-तीन, चार-चार हजार रुपये की प्रति वर्ष बिकती थीं ।

खेती भी होती थी और उनके परिवार का खर्चा भी कुछ अधिक नहीं था । सबसे अधिक खर्चा उनकी अपनी शराब का था ।

वह भी अब सरूपरानी ने काफ़ी कम कर दिया था ।

आज चौधरी रूपसिंह ने अपने दीवानखाने के तख्त पर नई चांदनी बिछवाई और दीवानखाने को भी साफ़ कराया । वह विद्यासागर के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

विद्यासागर निश्चित समय पर पहुँचा । चौधरी रूपसिंह इस समय दीवानखाने के सामने वाले चबूतरे की फ़सील पर खड़े थे ।

दूर से ही देखकर बोले, “आ गये सागर ! मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था ।”

विद्यासागर ने सादर नमस्कार किया और वह चबूतरे की सीढ़ी से ऊपर चढ़कर चौधरी रूपसिंह के साथ-साथ उनके दीवानखाने में चला गया । बिना संकोच के वह पैर साफ़ करके तख्त पर बिछी चांदनी पर बैठ गया ।

चौधरी रूपसिंह भी उसके सामने बैठ गये । तभी सरूपरानी ने भी दीवानखाने में प्रवेश किया ।

सागर ने खड़े होकर उन्हें नमस्कार किया ।

वह भी तख्त पर बैठ गई । वह विद्यासागर के चेहरे को एकटक देखती रहीं और फिर अचानक ही बोल उठीं, “बेटा सागर ! तुमने कल बहुत बड़ा काम किया । देवी सब की माता है । उसके मन्दिर में सबका प्रवेश होना चाहिए ।”

तब तक कुमारी लता भी दीवानखाने में आ गई और वह विद्यासागर को एकटक देखती हुई न जाने क्या सोचती रही ।



विद्यासागर सरूपरानी की बात सुनकर मुस्कराता हुआ बोला, "देवी के मन्दिर के पुजारी संकटमोचन चर्मकारों की बस्ती में जाकर उनकी स्त्रियों के सिर से देवी को उतारते हैं और यहाँ देवी के मन्दिर में उन्हीं चर्मकारों को प्रवेश नहीं करने देना चाहते। कितनी विचित्र बात है ?

दूसरे हमारे माननीय दारोगाजी, जो धर्म के नाम का काला अक्षर भी नहीं पढ़े, कभी पूजा नहीं की, कभी हवन नहीं किया, जीवन में कभी किसी नियम-व्रत का पालन नहीं किया यह भी देवी के ठेकेदार बनना चाहते हैं। कौंसी विडम्बना है ! ये समझते हैं कि दुनिया को धोखा दे रहे हैं, परन्तु वास्तव में सत्य यह है कि ये स्वयं धोखा खा रहे हैं।

"आपके कल के कार्य की मैं हृदय से प्रशंसक हूँ" पीछे से कुमारी लता ने कहा "ताऊ दारोगाजी का जमातपुर में आकर बसना इस गाँव और इस देहात के लिए एक महामारी के समान हुआ। मैं इस बात से पहले ही डरती थी और मैं एक पत्र भी पिता जी को बनारस से इस विषय में लिखा था।"

"पत्र अथवा लिखा था लता ने सागर ! मैंने उस पत्र को नाचनगढ़ बच्ची का पत्र समझकर एक ओर डाल दिया था। परन्तु यदि मैं उन पत्र पर अमल करता तो मेरे घर की ऐसी बरबादी न होती। मेरा ताल मुझे न छितना। मेरी आबरू मिट्टी में न गिरती और मेरे परिवार को सर्वश के लिए दाग न लगता।" चौधरी रूपासिंह गम्भीरता-पूर्वक बोले।

विद्यासागर ने देखा कि यह तो बैठते ही वातावरण गम्भीर होने लगा, वह मुस्कराकर बोले, "चौधरी साहब ! अब बीती बातों पर मिट्टी डाल दीजिये और आने वाले जीवन को अपनी और सब की भलाई के कामों में लगाने की बातें सोचिये। यह संपार कर्म-क्षेत्र है, इसमें साहस और सहयोग से आगे बढ़ना चाहिए।"

और फिर कुमारी लता की ओर देखकर बोला, "आप से मेरी

यह प्रथम भेट है। आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ रही हैं। क्या विषय है आपका ?”

कुमारी लता ने मुस्कान-भरे मुख से मीठी वाणी में उत्तर दिया, “मैंने हिन्दी एम० ए० ज्वाइन किया है इस वर्ष।”

“तब तो आप मेरे धन्यवाद की पात्री हैं ? आपने हिन्दी में एम० ए० लिया है तो निश्चित रूप से आपकी हिन्दी-साहित्य में रुचि होगी। आपको कविता से प्रेम है या गद्य से। प्राचीन साहित्य में विशेष रुचि है या नवीन साहित्य में।” विद्यासागर ने पूछा।

विद्यासागर और लता की बातों का रुख ही बदल गया और उनके साथ-साथ चौधरी रूपसिंह और सरूपरानी के मन भी तो। वे दोनों विद्यासागर और लता की बातों में रस लेने लगे।

लता ने उत्तर दिया, “मैं गद्य और पद्य, दोनों प्रकार के साहित्य में रुचि रखती हूँ। मुझे कविता भी उतनी ही प्रिय है जितना उपन्यास। कविता पुत्री है तो उपन्यास पुत्र। पुत्री और पुत्र दोनों ही प्रिय होते हैं माता को।”

विद्यासागर ने लता का उत्तर सुनकर उसके चेहरे पर गम्भीर दृष्टि से देखा और फिर सरलतापूर्वक स्वीकार किया, “आपने ठीक ही कहा। साहित्य दो प्रकार का होता है, एक वह जिसमें नारी के गुण होते हैं और एक वह जिसमें पुरुष के। दोनों का मिश्रित रूप भी मिलता है। उसके विषय में आपका क्या मत है ?”

लता ने अब गम्भीर दृष्टि से विद्यासागर के मुस्कराते हुए चेहरे पर देखा। और फिर भी मुस्कराकर बात बदलती हुई बोली, “क्या पूछ सकती हूँ कि आपने इतना पढ़-लिखकर भी जमालपुर में ही रहना क्यों पसन्द किया ? सुना है आपका एम० ए० में फ़र्स्ट डिवीजन आया था। थोड़ा परिश्रम करके सिविल सर्विस में निकल जाते तो जीवन बन जाता।”

विद्यासागर के चेहरे पर लता की बात सुनकर हँसी खेल उठी।

वह हँसता हुआ बोला, “लता !...क्षमा करना भूल से आपका नाम निकल गया मेरी जवान से । कुमारी जी ! आपका प्रयोजन देर से आया और अब समय निकल गया सिविल सर्विस की परीक्षाओं का ।

परन्तु मैंने जो कुछ किया है, वह बहुत समझ-बूझकर किया है । मुझे अपने किसी किये गये काम से असंतोष नहीं । मेरे जीवन का प्रयोजन केवल अपने को ऊपर उठाना और धनवान-भर अफसर बनना नहीं है । मैंने अपने जीवन को जन-उद्योग में लगाने का निश्चय किया है । जहाँ तक मेरा मस्तिष्क काम देगा, मैं सबकी भलाई का रास्ता बनाने का प्रयत्न करूँगा ।”

विद्यासागर के मुख से निकलने वाले एक-एक शब्द को अमृत की बूंदों की तरह लता के कानों ने ग्रहण किया । लता मंत्रमुग्ध थी ।

चौधरी रूपसिंह और सरूपरानी पर भी विद्यासागर के शब्दों का कम प्रभाव नहीं पड़ा । उन्होंने उसके शब्दों में सचाई की ध्वनि सुनी और उसकी निःस्वार्थता तथा त्याग पर दृष्टि डाली ।

कोई पैसे वाला या जमींदार का बेटा इतना पढ़-लिखकर नौकरी न करता तो कोई बात नहीं थी, परन्तु गरीब रामभगत के बेटे का नौकरी न करना बहुत बड़ा त्याग था ।

लता निर्लिप्त भाव से बोली, “आपने वास्तव में अपने गाँव और अपने देहात के लिए महान् त्याग किया है । मैं आपके कार्य में आपको पूरा-पूरा सहयोग दूँगा ।”

विद्यासागर बोला, “आपके सहयोग से मैं जमालपुर और इसके आस-पास के देहात के नारी जीवन में एक नई जागृति का संचार कर सकूँगा, मेरा ऐसा विश्वास है ।”

आज की बातें यहीं तक रहीं ।

नाश्ता भी सामने आया और विद्यासागर ने निःसंकोच भाव से चौधरी रूपसिंह, सरूपरानी और कुमारी लता के साथ बैठ कर नाश्ता किया ।

घर के तीनों प्राणियों ने विद्यासागर को प्रेमपूर्वक विदा किया। विद्यासागर को गाँव में आये कई दिन हो गये, परन्तु वह अपने निश्चित कार्यक्रम की ओर अभी तक न बढ़ सका था।

वह इसी चिंता में बैठा था कि लता ने उसकी दुबारी में प्रवेश किया।

कच्ची दुबारी थी गोबर की लिपी हुई। चमेली ने अपने भय्या की दुबारी बड़े चाव से लीप-पोत कर साफ की थी। झाड़ कर टाट बिछाया था और उस पर साफ धुली हुई खदर की चादर थी। धूप-बत्ती की सुगन्धि भी फैली हुई थी उसमें।

लता ने दुबारी की महँक में साँस लेते ही कहा, “धूप की सुगन्धि आ रही है। मैं भी अपने कमरे में धूप-बत्ती जलाना बहुत पसन्द करती हूँ।”

विद्यासागर ने लता का खड़े होकर स्वागत किया। “आइये कुमारी जी ! इस फटे-टूटे टाट पर बैठने के लिए आपसे प्रार्थना करते लज्जा तो अवश्य आती है परन्तु यही कुछ है मेरे पास तो अतिथि का स्वागत करने के लिए।”

“मैं अतिथि नहीं हूँ विद्यासागर जी ! मैं उसी गाँव की रहने वाली हूँ जिसके आप हैं। इस गाँव और इसके आस-पास के देहात की गिरी दशा देख कर जैसी कसक और दर्द आपके हृदय में होता है वैसा ही मेरे हृदय में भी होता है।” सरलतापूर्वक लता ने कहा।

“आपके हृदय का यह दर्द जमालपुर और इसके आस-पास के रहने वालों के जीवन-कष्टों की शीषधि बने, यह मेरी हार्दिक कामना है ! आप भी उसी मिट्टी-पानी से बनी हैं जिससे मैं बना हूँ। आइये आज मैं और आप मिलकर अपनी जन्मभूमि के उद्धार की शपथ लें।” विद्यासागर जाने किस धुन में कहता ही चला गया।

उत्साह की कमी लता में भी न थी। विद्यासागर के चेलेंज को अस्वीकार करना उसने अपनी मान-हानि समझा।

वह भी विनम्रतापूर्वक बहुत मीठे शब्दों में बोली, “इसी उद्देश्य को लेकर मैं आई हूँ इस समय आपके पास । मैं यह हृदय से चाहती हूँ कि हमारा गाँव और हमारा देहात वैसा बन जाय जैसी हम लोग स्वर्ग की कल्पना करते हैं ।”

“यह बात तो कल ही कह दी थी आपने । आज तो दूसरा दिन है । जबानी बातें कल समाप्त हो चुकीं । आज कुछ कार्य करने से काम चलेगा ।” विद्यासागर मुस्कराता हुआ बोला ।

“आप स्वयं आ गईं, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ । परन्तु पता नहीं मेरे मन की बात आपके पास तक पहुंची कैसे ?”

“क्या बात ?” लता ने आश्चर्यपूर्वक पूछा ।

विद्यासागर बाईं ओर देखता हुआ बोला, “यही कि आपका यहाँ इस समय आना आवश्यक था, क्योंकि आपको यहाँ लाने का प्रोग्राम आपके यहाँ से लौटने पर भ्रमन, कनकू और रामसिंह ने बनाया था ।”

“सुनो भी तो ! किस चीज का प्रोग्राम ? मुझे कहाँ चलना होगा ?” लता ने पूछा ।

“चमारों की मंडैया तक । आज चमारों की सब औरतें आपका स्वागत करेंगी और आप उन्हें उनके लाभ की बातें बतायेंगी । जो कुछ उनमें नहीं है वह उनमें पैदा करने में उन्हें सहयोग प्रदान करेंगी ।”

तब तक रामसिंह और कनकू भी आ गये ।

कनकू लता को देखकर बोला, “अरे बिटिया तो यहाँ ही आ गईं ।” और फिर लता को ओर देखकर बोला, “बिटिया अच्छी तो हो ?”

“हाँ ताऊ कनकू ! खूब अच्छी हूँ । तुम तो आनन्दपूर्वक हो ?”

कनकू लम्बी साँस खींचकर बोला, “हाँ ! बिटिया ! जो भगवान् करा वे वही भला है । मुल-ही-मुल है, दुःख कैसे कहूँ मैं ?”

“क्यों क्या बात हुई ?” लता ने मुस्कराकर पूछा और फिर

बोली, “पिताजी दारोगा ताऊ जी के जाल में फंस गये थे कनकू ताऊ ! तुम जानते ही हो कि पिताजी इतने सीधे हैं कि कोई भी उन्हें चक्कर दे लेता है।”

“जा मैं का सक है बिटिया। चौधरी साहब तो भगवान् के श्रीतार हैं, पर थारा दारोगा ताऊ बड़ा घाग है।” और हँसकर बोला, “पर जा बार मात खा गया दारोगा।”

लता कनकू की बात सुनकर मुस्कराती हुई बोली, “ताऊ दारोगा जी के मात खाने में ताऊ कनकू को बहुत आनंद आया।” और फिर हंसकर कहा, “ताऊ कनकू, तुम लोगों ने भी कमाल कर दिया हड़ताल करने में। बहुत सफल हड़ताल रही तुम्हारी। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई यह सब सुनकर।”

रामसिंह बोला, “सब सागर की बदौलत हुआ बिटिया।”

विद्यासागर बोला, “बिल्कुल गलत कह रहे हैं यह कुमारी जी ! ये लोग सफल हुए हैं अपने साहस, संगठन और सहयोग के बल पर। मेरा नाम व्यर्थ ले रहे हैं।”

विद्यासागर ने यह बात इतनी सरलता-पूर्वक कही कि लता के चेहरे पर मुस्कराहट की रेखा खिल उठी और वह उसी मूद्रा में बोली, “घबराइये नहीं ! दारोगा ताऊजी जब ताऊ कनकू, भूमन और रामसिंह का कुछ नहीं बिगाड़ सके तो आपका भी कुछ नहीं कर सकेंगे ?”

इस पर विद्यासागर बोला, “उन्हें छूट है कुमारीजी ! कि वह मेरा जो कुछ बिगाड़ सकते हैं बिगाड़ लें और आप मेरी यह बात नमक मिर्च लगाकर उनके कानों तक पहुंचा दें, यह मेरी आपसे प्रार्थना है।”

“आपकी प्रार्थना अवश्य स्वीकार की जायेगी।” कुमारी लता ने उसी भाव-भंगिमा से कहा। और फिर सब लोग चमारों की मंडैया की ओर चल पड़े।

: ५३ :

लता और विद्यासागर ने घूम-फिर कर पूरी चमारों की मंडय्या की संर की। कनकू ताऊ के द्वार पर जाकर लता ठहरी और कनकू की ओर मुंह करके पूछा, “ताऊ रुनकू भुनकू दिखाई नहीं दिये कहीं। परसों से मैं गांव में आई हुई हूँ और उन्होंने आकर अपनी सूरत तक नहीं दिखाई।”

कनकू ताऊ बिटिया लता की बात सुनकर हल्के से मुस्करा कर बोले, “उन दोन कू तौ सागर ने सहर भेज दिया बिटिया ! चोखा काम कर रहे हैं दोनों। महीना दर पंद्रा-रुपय्या भेज देत हैं घर।”

“तब तो बड़े काम के निकले रुनकू भुनकू ताऊ !” और फिर और फिर विद्यासागर की ओर देखकर लता ने पूछा, “क्या कहीं पर सर्विस दिला दी है आपने उन्हें ?”

लता की बात सुनकर विद्यासागर मुस्कराता हुआ बोला, “सर्विस किसी को मैं क्या दिला सकता हूँ कुमारी जी। मैं स्वयं भी सर्विस में कहां हूँ ? जैसा मैं स्वतंत्र मजदूर हूँ वैसा ही उन्हें भी बनाने का प्रयास कर रहा हूँ।”

विद्यासागर का गोल-मोल जवाब लता के प्रश्न की उत्कंठा का समाधान न कर सका। वह फिर भी प्रश्नवाचक दृष्टि से विद्यासागर के चेहरे पर देखती रही।

विद्यासागर मुस्कराता हुआ बोला, “संसार कर्म-क्षेत्र है कुमारी जी ! इसमें कहा-सुना नहीं जाता। देखा और किया जाता है। आज आप रुनकू और भुनकू की मंडय्या की संर कर रही हैं। कल आप उन दोनों के कार्य-क्षेत्र का निरीक्षण करेंगी।

अर्थात् कल शहर चलना होगा आपको।”

“मैं अवश्य चखूंगी।” गम्भीरता पूर्वक लता ने कहा। “और चलकर देखूंगी कि मेरे गांव के बच्चे कौसी उन्नति कर रहे हैं ?” “वे कैसे स्वतंत्र मजदूर बन रहे हैं ?”

मंडैया की स्त्रियों ने लता का स्वागत किया। लता ने उनके वस्त्रों और घर-द्वारों को देखा। मामूली कच्चे कोठों के सामने फूस के छप्पर पड़े थे। ये ही थे कुल उनके मकान जिनमें उनके पूरे परिवार अपना जीवन बिता रहे थे। उन्हीं के सामने जिनके पास गाय या भैंस थीं, बाँध ली थीं।

कल रात में अचछा-खासा छीटा पड़ जाने के कारण सूखी जमीन बहुत कम थी मंडैया भर में। लता बड़ी कठिनाई से रास्ते के कीचड़ में चल रही थी। पंजे से एड़ी तक के चप्पल को बड़ी सावधानी से उठाना पड़ रहा था।

यह दशा देखकर यकायक लता को ध्यान आया कि उनकी पुरानी हवेली के पास वाला लम्बा चौड़ा अहाता खाली पड़ा है। उसने कनकू रामसिंह और भूमन से पूछा, “यदि मैं आप सब लोगों के जानवरों को बाँधने और चारा खिलाने के लिए अपनी पुरानी हवेली वाला अहाता पिताजी से दिला दूँ तो क्या आप लोग अपने मवेशियों को बस्ती से बाहर निकालकर वहाँ बाँधना पसन्द करेंगे?”

लता के प्रस्ताव को सुनकर विद्यासागर मन-ही-मन खिल उठा। उसे हार्दिक संतोष हुआ कि लता उसकी योजना की आत्मा में पंठना चाहती है। उसका पग आप-से-आप आगे बढ़ रहा है।

विद्यासागर के मस्तिष्क में अपने उस विचार का चित्र साकार हो उठा, जिसे लेकर वह इस बार शहर से देहात में आया था। वह गाँव और शहर के सहयोग से दोनों जगहों के रहने वालों को विशुद्ध घी और दूध देने की बात सोचकर मन में आया था। परन्तु गाँव में आकर कुछ समय तो उसका यहाँ की समस्याओं की उलझनों में चला गया और शेष बेघी के मन्दिर पर दलित वर्गों के निशस्त्र दल बल के साथ अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए आक्रमण करने में निकल गया।

विद्यासागर को हार्दिक प्रसन्नता थी कि उसका रूढ़िवादी शत्रु साहस छोड़कर मंदान छोड़ बैठा।



लता ने देखा कि कनकू, भूमन और रामसिंह विद्यासागर के चेहरे पर प्रश्नवाचक दृष्टि से देख रहे थे। मानो पूछना चाहते थे, “हमारे नेता कहो हमें क्या करना चाहिए ? लता के प्रस्ताव को स्वीकार करने में हमारा मान और हित है या अस्वीकार करने में।”

विद्यासागर उसी सरलता के साथ बोला, “कुमारी लता को धन्यवाद दो रामसिंह, कनकू और भूमन। और फिर लता की ओर देख कर कहा, “आप जैसी उदार देवी ने भी तुम्हारे गाँव में जन्म लिया है, यह देखकर मैं आज जिस प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ, उसका वर्णन करना मेरे लिए कठिन है।

आपके इस प्रस्ताव ने मेरी योजना को आगे बढ़ाने में बहुत बड़ा सहयोग प्रदान किया है। इसके लिए मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ।”

लता न समझ सकी कि कैसी योजना और क्या है उसका वह योगदान जिस पर रीझ कर विद्यासागर इतने भावुक हो उठे।

कनकू भूमन और रामसिंह ने तभी तमाम मंडेया के लोगों को इकट्ठा करके एक छोटी सी सभा की और सबके सामने कुमारी लता का प्रस्ताव रख दिया।

सबने एक स्वर से प्रस्ताव स्वीकार किया और दूसरे ही दिन चौधरी रूपसिंह की पुरानी हवेली का वीरान पड़ा हुआ लम्बा-चौड़ा अहाता आबाद हो गया।

: ५४ :

दूसरे दिन लता विद्यासागर के साथ शहर गई। चौधरी रूपसिंह और सरूपरानी ने अन्दर-ही-अन्दर इसका विरोध किया परन्तु लता स्वतन्त्र विचारों की लड़की थी। उसने स्पष्ट कह दिया, “मैं विद्यासागर के साथ शहर अवश्य जाऊँगी। विद्यासागर की कार्य-प्रणाली ने मुझे बहुत प्रभावित किया है पिता जी !”

सरूपरानी बोली, “बेटी लता ! जैसा ठीक समझे कर, पर परि-

वार के नाम को धब्बा न लगे, इतना ध्यान रहे। विद्यासागर नेक लड़का है परन्तु हमारे परिवार की मान-मर्यादा.....” और कहते-कहते रुक गईं।

लता मुस्करा कर बोली, “आप जो कहना चाहती हैं, वह मैंने समझ लिया माता जी ! परिवार और समाज दोनों ही मानवता की साफ़-सुथरी जमीन पर कुछ ऊँचे बने हुए चबूतरे हैं। उन पर कुछ लोग जन्म से, कुछ बाद से और कुछ तिकड़मों से चढ़कर बैठ गये हैं। उन चबूतरों ने मानव-जीवन के स्वतंत्र प्रवाह में रुकावटें पैदा की हुई हैं। वे ही रुकावटें आपको भी परेशान कर रही हैं।”

सरूपरानी लता की बात का स्पष्ट मतलब न समझ सकीं। तभी विद्यासागर वहाँ आ गया।

विद्यासागर ने माता सरूपरानी को प्रणाम किया और चौधरी रूपसिंह को भी। फिर लता की ओर देखकर पूछा, “क्या विलम्ब है चलने में ?”

“एक क्षण का भी नहीं।” कहकर लता ने अपने माता पिता को प्रणाम किया और विद्यासागर के साथ शहर के लिए चल दी।

: ५५ :

शीला कई दिन से बड़ी उत्सुकता के साथ विद्यासागर के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। ‘भारतीय सहयोग समिति’ का कार्य शीला ने शहर में अपनी जीजी मनोरमा के सहयोग से बहुत सुचारु ढंग से संचालित कर लिया था। विनयमोहन और मनोहरलाल ने भी अपना काफ़ी समय शीला को देकर समिति के नगर में चार बड़े केन्द्र स्थापित करा दिये थे। विनयमोहन ने नगर के स्कूल और कालिज के छात्रों में इसका बहुत अच्छा प्रचार किया।

शीला अपने क्रिये गये कार्य पर आप मुग्ध थी और सबसे बड़ी प्रसन्नता उसे इस बात की थी कि वह अपनी सफलता का विवरण जब

विद्यासागर के सम्मुख प्रस्तुत करेगी तो विद्यासागर के हृदय और मस्तिष्क में उसका स्थान कहाँ होगा ?

‘कहाँ होगा’.....वह आत्मविभोर हुए यही सोच रही थी कि विद्यासागर ने लता के साथ कार्यालय में प्रवेश किया ।

शीला ने विद्यासागर के साथ एक अपरिचित लड़की को देखकर प्रश्नवाचक दृष्टि से विद्यासागर की ओर देखा ।

विद्यासागर मुस्करा कर बोले, “यह कुमारी लता हैं शीला ! हमारे गाँव के पुराने सब से बड़े जमींदार चौधरी रूपसिंह की सुपुत्री । बनारस विश्वविद्यालय में एम० ए० में पढ़ रही हैं ।” और फिर लता की ओर देखकर बोला, “कुमारी जी ! यह शीला देवी हैं, ‘भारतीय सहयोग समिति’ की कार्यालय-सचिव ! हमारा नगर का कार्य सब इन्हीं के द्वारा संचालित होता है । आपको शीला देवी से भेंट करके बहुत प्रसन्नता होगी ।”

लता और शीला ने एक दूसरे को नमस्कार किया और फिर तीनों कार्यालय में बिछड़ी चाँदनी पर बैठ गये ।

अभी ये लोग बैठे ही थे कि रुनकू भुनकू और उनके सब साथी एक साथ कदम-दर-कदम मिलाकर कार्यालय के सामने आ गये । सबके सब एक क्रतार में थे ।

उन्हें देखकर विद्यासागर, लता और शीला कार्यालय से बाहर निकल आये । विद्यासागर लता की ओर देखकर बोला, “ये हैं आपके गाँव के बच्चे कुमारी जी ! देखिये कुछ परिवर्तन आया इनके जीवन में ? ये लोग सब इस समय अपने-अपने काम से लौट रहे हैं । यहाँ से ये सब अपने बोर्डिंग हाउस में जायेंगे ।”

लता ने आश्चर्य-जनक दृष्टि से अपने गाँव के उन बच्चों की ओर देखा, जिन्हें वस महीने पूर्व जब वह बनारस गई थीं तो फटे-पुराने और मंले चीथड़ों में लिपटा हुआ छोड़ गई थीं ।

रुनकू और भुनकू लता को पहचान कर ऊँचे स्वर में बोले,  
“जीजी राम-राम ।”

“राम-राम रुनकू ! अरे भुनकू तू भी यहीं है । ताऊ कनकू से कल पता चला कि तुम लोग शहर आ गये हो तो मेरा मन नहीं माना कि मैं तुम्हें बेखे बिना वापस बनारस लौट जाऊँ । तुम अच्छे तो हो यहाँ ?”

“जीजी, बहुत अच्छे हैं । गाँव से कई गुना अच्छे हैं । दोनों टंम खूब बढ़िया खाना मिलता है । एक-एक केला भी मिलता है जीजी । दो-दो कमीजें और दो-दो नेकर हैं हम सबके पास । एक-एक जूता भी सबके पैरों में है ।” कहकर सबने ऊपर से नीचे तक अपने-अपने कपड़ों पर दृष्टि डाली ।

लता की आत्मा प्रसन्न हो उठी यह सब देखकर । वह मंत्र मुग्ध सी खड़ी थी । तभी शीला ने मुस्कराते हुए लता की ठोड़ी पर अपनी उँगली लगाकर ऊपर उठाते हुए कहा, “क्या देख रही हो लता ! अब ये तुम्हारे बच्चे नहीं, मेरे बच्चे हैं । अब तुम इनकी माँ नहीं, मैं इनकी माँ हूँ ।”

लता मौन रही परन्तु उसके नेत्रों की पुतलियों ने अपने को शीला के गोल ग्लाबी चेहरे पर पसार कर स्वीकार किया... कहा : “तुम सच कहती हो शीला बहन ! तुम ही वास्तव में इनकी माँ हो... परन्तु मैं भी इनकी कुछ हूँ, कुछ न होती तो यहाँ आती ही भला क्यों ?”

: ५६ :

बच्चे सब अपने बॉडिंग को चले गये । शीला, लता और विद्या-सागर फिर कार्यालय की चाँदनी पर जा बैठे ।

विद्यासागर ने पूछा, “क्या उजागरसिंह नहीं आये अभी ?”

“आ चुके कभी के । आप ही आज की सभा में आने वाले सबसे लेट व्यक्ति हैं । वे सब लोग हमारे नगर-केन्द्रों का निरीक्षण करने गये हैं ।” शीला गर्व के साथ बोली ।

“नगर-केन्द्रों का निरीक्षण करने ?” आइचर्य के साथ विद्यासागर ने कहा और फिर प्रसन्नता पूर्वक पूछा, “तो कितने नगर-केन्द्रों की स्थापना कर सकीं तुम शीला ?”

शीला तनिक शरमाती-सी बोली, “चार ।”

“बहुत सुन्दर शीला ! बहुत सुन्दर ! तुमने अपना टार्जेंट पूरा कर लिया । उजागरसिंह को भी अवश्य अपने कार्य में सफलता मिली होगी और हमारे अन्य साथियों ने भी अपने-अपने गाँवों में अपने जानवरों के केन्द्र स्थापित कर लिये होंगे ।” विद्यासागर उत्साह के साथ बोला ।

“उजागरसिंह के काम में इस बार काका न्यादरसिंह ने बहुत बड़ा सहयोग प्रदान किया है विद्यासागर जी ! उजागरसिंह के त्याग और कार्य को देखकर उजागरसिंह का कहना है कि काका उन पर लट्टू हो गये और अपना सबसे बड़ा अहाता उन्होंने गाँव के दूध वाले जानवरों को एक जगह बाँधने के लिए दे दिया ।

उजागरसिंह का कहना है कि “उनके गाँव से हमें प्रति दिन दस मन दूध और एक मन घी मिल सकेगा ।”

लता चुनचाप विद्यासागर और शीला की बातें सुन रही थी और फिर उनका सम्बन्ध अपने गाँव में किये जाने वाले विद्यासागर के कार्य से जोड़ कर विचार कर रही थी कि कितनी क्रम बढ़ता है उनके कार्य में ।

लता यह सोच ही रही थी कि विद्यासागर सरल मुस्कराहट होठों पर लेकर बोला, “उजागरसिंह को काका ने सहयोग प्रदान किया और मुझे कुमारी लता ने । इस बार तो सच जानो शीला, चमत्कार ही हुआ मेरे कार्य में । कल सुबह तक मैं यही सोच रहा था कि आज की सभा में क्या मुंह लेकर उपस्थित हूँगा ।”

“तब क्या आपके कार्य-क्रम की रूपरेखा कल ही निश्चित हो सकी ?” सरलता पूर्वक शीला ने पूछा ।

“यही बात है शीला ! परन्तु प्रसन्नता की यह बात है कि जो कुछ

भी हुआ वह स्वयं हुआ, बिना प्रयास हुआ, यानी होना ही था उसे, इस समय यही कहूंगा मैं ।” और फिर लता की ओर मुंह करके पूछा, “कहो कुमारी जी ! मेरी बात सच है ना ?”

लता प्रसन्नता पूर्वक बोली, “इसमें किंचित् मात्र भी गलत नहीं है शीला बहन ! और यदि सच जानो तो मैं कहूंगी कि क्या कुछ हुआ उसका थोड़ा बहुत ज्ञान मुझे अब आप दोनों की बातों से ही हो रहा है ।”

विद्यासागर हर्षित होकर बोला, “देख लो शीला ! कितनी विचित्र बात है यह कि कुमारी लता ने सब कुछ स्वयं अपनी इच्छा और प्रेरणा से किया और इन्हें यह भी पता नहीं । कि इन्होंने क्या कुछ कर दिया है ।”

शीला बोली, “जादूगर बनते जा रहे हो विद्यासागर जी !” केवल ग्राम-सुधारक बनकर संतोष नहीं हुआ आपने तो लेखक बनने की ठानी । अब देख रही हूँ कि जादूगिरी भी करनी प्रारम्भ कर दी है ।”

शीला के मीठे व्यंग्य को सुनकर लता का हृदय गुदगुदा उठा । उसने अपने अन्दर-ही-अन्दर एक आनन्द की अनुभूति की; परन्तु चेहरे पर बड़ी सावधानी से अधिकार जमाये रखा । क्या मजाल जो आकर्षण की एक रेखा का भी आभास शीला और विद्यासागर कर पाते ।

विद्यासागर ने शीला की बात सुनकर लता से कहा, “सुना आपने कुछ कुमारी जी ? शीला की यह पुरानी बान है कि जिस कार्य में यह वक्ष हो जाती हैं और उसके विषय में दूसरों को बतलाना चाहती हैं तो उसका आरोप अपने किसी सहयोगी पर कर देती हैं ।”

विद्यासागर की बात सुनकर लता मुग्ध हो उठी । शीला के दिल में भी मीठा-मीठा स्पन्दन हुआ जरा गुदगुदी, तनिक सिहरन ।

लता बोली, “मेरे विचार से शीला बहन का यह आरोप अपने उनके अन्य सहयोगियों की अपेक्षा आप पर ही अधिक फ़िट बैठता होगा ?”

बात की बात और प्रश्न का प्रश्न—विद्यासागर और शीला ने सुन कर एक साथ लता के चेहरे पर देखा; वह मुस्करा रही थी।

तीनों की आँखों ने स्वीकार करने वाली बातें स्वीकार कर लीं।

: ५७ :

लता, शीला और विद्यासागर की बातें चल ही रही थीं कि तभी कोठी के सामने एक कार आकर रुकी।

कार की आवाज सुनकर शीला खड़ी होती हुई बोली, “मनोरमा जीजी आ गईं।” और वह आगे बढ़कर पोर्टिगो में चली गई।

लता ने विद्यासागर से पूछा, “मनोरमा जीजी कौन हैं?”

विद्यासागर ने बताया, यह ‘भारतीय सहयोग समिति’ की प्रधान हैं। शीला की बड़ी बहन हैं।” दो शब्द में विद्यासागर ने मनोरमा जीजी का लता को पूरा परिचय दे दिया।

मनोरमा के कमरे में प्रवेश करने पर विद्यासागर ने उन्हें प्रणाम किया और लता ने भी।

मनोरमा की मनोरम आभा पर लता ने एकटक निहारा और निहारती ही रही वह कुछ देर तक। होठों से पुष्प बरसाते हुए मनोरमा ने लता की ओर संकेत करके विद्यासागर से पूछा, “बहन का परिचय नहीं मिला मुझे। कंसी मुसीबत में डाल देते हो विद्यासागर! आखिर अपनी नई बहन को किस नाम से सम्बोधित मैं करूँ?”

“मुझे लता कहकर पुकारिये मनोरमा जीजी!” मुस्कराते हुए लता ने कहा।

मनोरमा लता का सीधा उत्तर सुनकर प्रसन्नता से खिल उठी और बोली, “कितना प्यारा नाम है लता! लता मेरी एक सहेली थी। तुम्हारे मुँह से लता नाम सुनकर सहेली की स्मृति हो आई। कितना मधुर कंठस्वर था उसका, क्या कहूँ तुमसे। कोकिलकंठी कहा करती थी उसे मैं।”

आपसी बातें आगे न बढ़ सकीं। विद्यासागर के सब साथी जो उजागरसिंह के साथ शीला के नव स्थापित केन्द्रों को देखने चले गये थे, लौट आये। सभा का समय हो गया था। कार्यवाही प्रारम्भ की गई।

मनोरमा जीजी ने प्रधान-पद संभाला और विद्यासागर ने पहली सभा की रिपोर्ट पढ़कर सुनाई। फिर सब सदस्यों ने अपने-अपने गांवों में किये गये कार्य का विवरण प्रस्तुत किया।

सभी सदस्यों का कार्य आशाप्रद था। कुछ गांवों में दूध के जानवरों को एक जगह बाँधने का प्रबन्ध हो सका और कुछ में नहीं, परन्तु इस कार्य में सबको सफलता मिली कि उनके गांव के ऐसे लोग जिसके परिवार के भरण-पोषण का प्रधानाधार उनके दूध देने वाले जानवर थे, वे सब अपने जानवरों को एक ग्रहाते में बाँधन के लिए उद्यत थे।

विद्यासागर गम्भीरता पूर्वक बोला, “यह आप लोगों की सबसे बड़ी सफलता है। ग्रहाते या मकान का प्रबन्ध धीरे-धीरे सब हो जायगा। जब आपके गांवों के लोग यह देखेंगे कि आपके कार्य से उन्हें लाभ है, जिन्हें आप सहयोग की कड़ी में बांध रहे हैं, तो सब लोग आप-से-आप तुम्हारी ओर खिंच आयेंगे। उन्हें खींचकर लाने की आवश्यकता नहीं होगी तुम्हें।

समय बदल रहा है साथियो ! देश की मानव-बुद्धि का विकास हो रहा है। वह अपने हित और अहित को पहचानने लगी है। उसके लिए तुम्हें परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे रास्ते पर जो-जो आता जाय उसे स्नेह और ममता के साथ छाती से लगाते चलो। अपना रास्ता बनाते चलो। अपने रास्ते पर देश के जन-जीवन को लाते चलो। परन्तु यह तभी सम्भव है, जब आप उनके जीवन में मिस्रकर एक हो जायें। उनका विश्वास तुम्हारा अधिकार बन जाये।”

विद्यासागर की बात उसके सब साथियों ने दत्तचित्तता के साथ सुनी और सबने एक स्वर में कहा, “हम लोग जन-जीवन में घुल-मिल



रहे हैं। हम पर हमारे देहात का दिल खुलता जा रहा है। हमारी बात पर लोग विश्वास करने लगे हैं।”

यह सुनकर मनोरमा। जीजी बोली, “यही तुम्हारी सफलता का रहस्य है, यही तुम्हारी शक्ति है। इसी के बल पर हम सब आगे बढ़ेंगे और अपना सहयोग का नया रास्ता बनायेंगे।”

फिर शीला ने नगर में किये गये अपने कार्य का विवरण प्रस्तुत किया। चार नगर-केन्द्रों की व्यवस्था और सहकारी समितियों के विषय में बतलाया। अंत में कहा, “मुझे इस कार्य में भाई विनयमोहन ने जो सहयोग प्रदान किया है मैं उसके लिए उनकी आभारी हूँ।”

एक कोने में बैठा विनयमोहन अन्दर से मुग्ध, परन्तु ऊपर से सरल मुखाकृति बनाकर बोला, “आभारी होने की आवश्यकता नहीं है शीला बहन।”

विनय की बात सुनकर सबके चेहरे खिल उठे। शीला संकोच वश बोली, आपको नहीं है, “परन्तु मुझे अवश्य है। साथियों को किसी काम की सही जानकारी न देना, विद्यासागर जी ने एक दिन कहा था, सबसे बड़ा जुर्म है। इसे क्षमा नहीं किया जा सकता।”

विद्यासागर शीला की बात सुनकर बोले, “बात शीला की सही है साथियो ! विनय मोहन के कार्य का श्रेय शीला लेना नहीं चाहतीं। पूरी ईमानदारी के साथ यह विनय का मीठा-मीठा श्रेय विनय के कानों में उड़ेल देना चाहती हैं। इतनी ऊँची सद्भावना समिति के सदस्यों में देखकर मेरा हृदय गद्-गद् हो उठा है।”

फिर शीला के कार्य की विद्यासागर ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की और अपने सब साथियों को लता का परिचय कराया। जमालपुरी में लता के सहयोग से किस प्रकार सहयोगी दूध-शाला की नींव रखी गई उसका विवरण बड़ी ही रोचकता से प्रस्तुत किया।

विवरण सुनकर मनोरमा ने अनुमान लगा लिया कि यह हो-न-हो विद्यासार के उपन्यास का एक अध्याय है।

अनायास ही उनके मुख से निकला, “तुम्हारा यह अध्याय बहुत सुन्दर रहा विद्यासागर ! कनकू, भम्मन, रामसिंह और उनकी स्त्रियों ने लता बहन की पुरानी हवेली में प्राण फूंक दिये होंगे । लीप पोतकर उसे सुन्दर बना दिया होगा । और उनकी नई बनी खोरों पर कतार-कतार जब उनकी गाय भैंसों खड़ी करके उन्हें सानी की जायगी, दूध दूहा जायगा और उस अहाते में से उन्हें दूहने वाली दूध की दुहानीयाँ बगल में या सर पर लेकर निकलेंगी तो बाबा नन्द के ग्राम नन्द गाँव की स्मृति जाग उठेगी ।”

“इसमें कोई संदेह नहीं मनोरमा जीजी !” भावुकता में भरकर विद्यासागर ने कहा, “मैं देखूँगा कि एक दिन जमालपुर से दूध की सरिता बह निकले और इसी प्रकार मेरे अन्य सब साथियों के गाँवों से भी । और वे सब सरिताएँ लहराती हुई आकर हमारे नगर के सागर में गिर जायेंगी ।”

“यही होगा विद्यासागर भय्या ! हम सबको उस समय तक चैन नहीं आयेगा जब तक हम अपनी योजना को फलीभूत नहीं कर लेंगे ।” उजागरसिंह ने उत्साह के साथ कहा और फिर गर्व से बोला, “शीला बहन की प्रगति ने मेरा साहस दस गुना कर दिया है ।”

सभा की कार्यवाही दूसरे दिन प्रातः काल पर स्थगित कर दी गई । सब लोग अपने-अपने इष्ट मित्रों के पास मिलने चले गये । समिति के कार्यालय में फिर वे ही चार व्यक्ति रह गये जो सभा प्रारम्भ होने से पूर्व थे ।

: ५८ :

मनोरमा ने उपन्यास की बात बीच में छोड़कर लता के मन में कुछ उत्सुकता-सी पैदा कर दी थी । ‘भारतीय सहयोग समिति’ की सभा में उपन्यास के अध्याय का क्या अर्थ ? इससे पूर्व शीला ने भी विद्यासागर के लेखक बनने का संकेत किया था ।

यह बात सभी सभासदों ने सुनी । सबने इसका यही अर्थ लगाया

कि मनोरमा जीजी साहित्यिक भाषा में बोल रही हैं। परन्तु लता को ऐसा कोई विचार संतुष्ट न कर सका। उसके मस्तिष्क में यही उधेड़-बुन मची थी कि यह बेमेल बात मनोरमा जीजी जैसी चतुर स्त्री ने कैसे कही ?

उसने सीधा प्रश्न विद्यासागर से किया, “तो यह कौनसा अध्याय है आपके उपन्यास का ? उपन्यास कितना लिखा जा चुका ?”

विद्यासागर मुस्करा कर बोला, “कैसा उपन्यास ? तुम भी मनोरमा जीजी की बातों में आ गईं। यह मुझे स्नेह करती हैं, इसी लिए इन्हें मेरी डायरी के पन्ने भी उपन्यास के रोचक अध्याय-से प्रतीत होने लगते हैं।”

लता विद्यासागर का उत्तर पाकर अपने मस्तिष्क की जिज्ञासा को शांत न कर सकी।

विद्यासागर का उत्तर लता की जिज्ञासा पूर्ति न कर सका। उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से मनोरमा जीजी की तरफ देखा और मनोरमा को भी उसका अभिप्राय भांप लेने में देर न लगी।

मनोरमा जीजी मुस्करा कर बोलीं, “कौन सा अध्याय है लता, यह तो मुझे भी नहीं मालूम, परन्तु मालूम यह उपन्यास का अध्याय ही वेता है। विद्यासागर एक उपन्यास लिख रहे हैं। क्या लिख रहे हैं, किस विषय पर लिख रहे हैं, किन पात्रों को लेकर लिख रहे हैं, यह सब मुझे कुछ पता नहीं।”

“तो आप उपन्यास लिख रहे हैं ?” विद्यासागर की ओर देखकर मुस्कराते हुए लता ने पूछा।

बात पूरी भी न हुई थी लता की ओर वह और कुछ पूछना चाहती थी कि इसी समय नरेश मेहता वहाँ आ गये।

उनके आते ही शीला ने उनकी छुटकी ली और मुस्करा कर विद्यासागर की ओर देखते हुए कहा, “आप मेरी ओर से बधाई के पात्र हैं विद्यासागर जी ! आपसे मिलने के बहाने आज इतने दिन बाद जीजा

जी के दर्शन इस प्रेमीसिस को हो सके, वरना तो सम्बन्ध विच्छेद-सा ही कर दिया था हमारे जीजा जी ने तो हम लोगों से ।”

शीला की बात सुनकर नरेश मेहता के भी बदन में हलकी-सी फर-हरी आगई, कुछ मीठा-मीठा स्पन्दन भी हुआ और आँखें उभार कर देखा तो शीला के मुख-मण्डल पर कुछ अच्छा-अच्छा लगा । तरुणाई के गुलाबी सौंदर्य की छटा में उनके नेत्र डूब से गये, परन्तु उन्होंने गर्दन के एक हलके से झटके से ही उस सब खुमार को उतार फेंका और सतर्क होकर बोले, “मैं यहाँ विद्यासागर जी के पास नहीं आया शीला ! मैं आया हूँ मनोरमा को लेने के लिए । कविवर रविकर जी बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं पक्कर चलने के लिए ।”

शीला ने दूसरा व्यंग्य-वाण मारा और मस्ती में इठलाकर कहा, “तो आप यहाँ प्रकाशक की हैसियत से नहीं आये ? इस समय आप हैं पति देवता के रूप में, एक सिने साथी के रूप में ।”

नरेश मेहता तिलमिला उठे इस व्यंग्य-वाण से और फिर सतर्क होकर बोले, “मेरे रूपों को तुम खूब पहचानने लगी हो शीला, शायद अपनी बहन मनोरमा से भी अधिक ।”

“इसमें कोई सन्देह नहीं जीजा जी ! परन्तु मैं कह रही थी.....  
.....” बात बदलकर शीला बोली, “आप विद्यासागर जी का उपन्यास क्यों नहीं छापते ? मैं कहती हूँ खूब बिकेगा ।”

“तुम बेचने जाओ तो वास्तव में खूब बिके शीला !” मुस्कराकर मीठी-सी चुटकी लेते हुए नरेश मेहता ने कहा ।

“मुझे बेचने जाने में कोई संकोच नहीं होगा जीजा जी ! मुझे मालूम है कि इनकी लेखनी से कौसा उपन्यास लिखा जायगा । उसमें क्या होगा और वह किन लोगों की चीज होगी । यह सच है कि उसे मुझ से अच्छा कोई नहीं बेच सकेगा ।” शीला बोली ।

रमेश मेहता ने शीला की बात सुनी और मन-ही-मन कहा हूँ ! बेच लेगी यह कल की छोकरी । बेच लेना ही तो टेढ़ी-खीर है पुस्तकों का

भारतवर्ष में। यहाँ पुस्तकें बिकती नहीं, बेची जाती हैं; खरीदी नहीं, खरीदवाई जाती हैं। हेडमास्टर्स, प्रिंसिपलों, हैड ऑफ़ दी डिपार्टमेंटों, लायब्रेरियनों, बी० डी० ओज़, म्युनिसिपल बोर्डों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के चेयरमैनो, पंचायतराज अफ़सरों, ऐजुकेशन डायरेक्टर्स, ऐजुकेशन एक्सपेंशन आफ़िसरों, लेबर आफ़िसरों और जाने किन-किन के तलवे सहलाने पड़ते हैं किताबें बेचने के लिए। इस कल की बच्ची को क्या पता। कच्चे मस्तिष्क पर थोड़ा-सा नई जवानी का रंग चढ़ गया है तो बस उसी में रंगकर उड़ना चाहती है। इसे क्या पता कि जीवन की टकराहट किसे कहते हैं।

सोचते-सोचते वह रुक गये। कलाई पर बँधी रिस्टवाच देखी और मनोरमा की ओर देखकर बोले, “मनोरमा चलो चलें। कविवर रविकर जी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह संसद-सदस्य बनकर आये हैं इस बार। कहते हैं पंडित जी तक पहुँच है उनकी। कार्ड भेजकर अन्दर जाने की आवश्यकता नहीं होती उन्हें कहीं भी।” और इतना कहकर वह खड़े हो गये।

मनोरमा भी खड़ी होती हुई बोली, “अच्छा अब आज्ञा चाहूंगी आप सब से। कल प्रातःकाल सभा में भेंट होगी।”

मनोरमा जीजी और नरेश मेहता को चलते समय लता, शीला और विद्यासागर तीनों ने प्रणाम किया।

अंत में विद्यासागर ने गम्भीरतापूर्वक नरेश मेहता के चेहरे पर दृष्टि गढ़ाकर पूछा, “तो संसद सदस्य बनने से कविवर रविकर जी का साहित्यिक मूल्य भी आपकी दृष्टि में बढ़ गया।”

“आफ़ कोर्स मिस्टर विद्यासागर ! हमारा इस चीज से सम्बन्ध नहीं है कि कोई क्या लिखता है। हमारा इस चीज से सम्बन्ध है कि कोई क्या बिकवा सकता है। तुम कूड़ा लिखो परन्तु उसे बिकवाने की ताकत होनी चाहिये तुम में। हमारे लिए फिर तुम ही सबसे बड़े लेखक हो।” बहुत ही स्पष्ट शब्दों में मिस्टर मेहता ने कहा।

मनोरमा जीजी की कार चल पड़ी। लता और विद्यासागर कोठी के सामने वाले प्लेटफार्म पर खड़े रह गये।

: ५६ :

लता ने आज रात्रि को शीला का अतिथि बनना स्वीकार कर लिया। विद्यासागर जी समिति के कार्यालय में ठहरे। परन्तु भोजन तीनों ने साथ बैठकर किया। शीला की माता जी ने प्रेमपूर्वक भोजन कराया।

लता ने मगर में आकर विद्यासागर की एक नई बुनियाँ देखी। एक संगठन-शक्ति के उसे दर्शन हुए और उसके बल का कुछ-कुछ आभास मिला।

वह सोती-सोती उठ बैठी और शीला को पुकारकर बोली, “सो गईं शीला बहन !”

“नहीं।” शीला ने उत्तर दिया। “अभी क्या सोने का समय हो गया ?”

“हाँ, मैंने देखा कि शायद आँखें भपक गईं। परन्तु तुमने आँखें क्यों मीची हुई थीं फिर ?” लता ने पूछा।

शीला इठलाकर हंस दी लता की ओर देखकर और फिर बोली, “आँखें मैंने मीच रखी थीं इसलिए कि तुम किसी के ध्यान में मग्न थीं। मैंने सोचा क्यों डिस्टर्ब करूँ तुम्हें ?”

लता पूरी तरह मुस्करा भी न पाई थी कि होठों पर मुस्कान की भोनी लहर लेकर शीला आँखें तरेर कर बोली, “पसंद आई लता तुम्हें हमारी बुनियाँ। अच्छा लगा तुम्हें हमारा रास्ता ?”

“बहुत पसंद आई शीला ! तुम सब साथी बड़ा प्रशंसनीय कार्य कर रहे हो।” नम्रतापूर्वक लता ने कहा।

“अभी हमारा कार्य प्रारम्भिक वशा में ही है लता ! परन्तु यह सच है कि हमारा हर सदस्य पूरी ईमानदारी के साथ निःस्वार्थभाव से

कार्य कर रहा है। सभी ने अपने जीवन का अमूल्य समय समिति को देकर इसमें प्राण फूँके हैं। विद्यासागर जी ने तो आप देख ही रही हैं कि इस कार्य के लिए अपना जीवन ही न्यौछावर कर दिया है। यह कैसे भी किसी सरकारी कम्पीटीशन में बैठे होते तो फ़र्स्ट आते।” उत्साह के साथ शीला ने कहा।

जब शीला ने विद्यासागर की प्रशंसा की तो उसके चेहरे पर लता ने विशेष अनुराग के साथ देखा। उसके गालों पर आती हुई लाली को देखा और पतले रुखों को खड़े होते पाया।

शीला मुस्कराकर बोली, “विद्यासागर जी का कार्य वास्तव में प्रशंसनीय है। इनमें बड़ा आदमी बनने के गुण विद्यमान हैं।”

शीला लता की बात सुनकर हँस दी और फिर लता को भँभोड़ती हुई बोली, “बड़ा आदमी बनने की बात तुमने खूब कही लता ! लेकिन मुझे तो जब तक बनेगा मैं इन्हें बड़ा आदमी नहीं बनने दूँगी। छोटे आदमी के रूप में ही यह मुझे भले लगते हैं। बड़े हो गये तो भेंट भी कठिन हो जायगी।”

शीला की बात सुनकर लता हँसती हुई बोली, “यह सब तुम्हारी ऊपर की बातें हैं शीला ! अपने साथी को बड़ा देखकर तुम्हारे हृदय में कितना उत्साह होगा और तुम्हें कितना बल मिलेगा उसके बड़प्पन से ?”

इसके पश्चात् भी जाने कितनी देर तक बातें करती रहीं और यह भी पता नहीं कि पहले निद्रा-देवी ने किसे सुलाया।

: ६० :

दूसरे दिन प्रातःकाल ‘भारतीय सहयोग समिति’ की सभा में सबने मिलकर आगामी कार्यक्रम निश्चित किया। बारह गाँवों में दूध-शालाओं की व्यवस्था और नगर के चार केन्द्रों द्वारा इन दूधशालाओं के दूध की बिक्री करने का निश्चय हुआ।

इसके पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

विद्यासागर के सब साथी पूरे उत्साह और उमंग के साथ अपने-अपने गांवों को चले गये ।

: ६१ :

मनोरमा ने लता को अपनी कोठी पर जलपान के लिये आमंत्रित किया ।

संध्या को विद्यासागर और शीला लता के साथ समय पर मनोरमा की कोठी पर पहुंचे ।

नरेश मेहता उपस्थित नहीं थे । शीला ने पूछा, “जीजा जी आफ़िस से नहीं आये । कहे तो फ़ोन करलूँ उन्हें ।”

“उन्हें फ़ोन करने की आवश्यकता नहीं है शीला !” उन्हें ऐसी किसी दावत में आनन्द नहीं आता जिसमें धन की प्राप्ति न होती हो ।”

“तब क्या आपको बुरा लगता है अपने घर में धन का आना ?” लता ने आश्चर्य के साथ पूछा ।

लता के आश्चर्य-चकित चेहरे को देखकर मनोरमा के मुख पर मुस्कराहट छा गई । वह विनम्र होकर बोली, “लता, तुम्हारे जीजाजी विचित्र प्रकार के व्यक्ति हैं । उन्हें पढ़ लेना कोई मज़ाक नहीं है ।”

मनोरमा की बात सुनकर लता को लगा कि अवश्य आज दोनों में कोई टकराहट हो गई है । लता बोली, “मज़ाक कैसे हो सकता है भला ? आपके पति मज़ाक के पात्र हो सकते हैं, यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकती ।”

लता की लच्छेदार बात सुनकर मनोरमा उसे झंझोड़ती हुई बोली, “लता, तुम तो मेरी पुरानी सहेली लता से भी अधिक लच्छेदार बातें करती हो । मैं तुम्हारे जीजा जी के किस्से सुनाऊँ तो तुम सचमुच ही हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाओगी और यह भी सम्भव है कि तुम्हें क्रोध आ जाये । परन्तु मैं क्रोध कभी नहीं करती । भाग्य पर विश्वास न करते हुए भी मुझे अपने पति के विषय में भाग्य को माग्यता देनी ही पड़ती है ।”



विद्यासागर दबा जा रहा था किसी विचार के भार से । वह नरेश मेहता को जितना अपनी विचार की डोर में बांधने का प्रयत्न करता था मेहता साहब उसके मस्तिष्क की परिधि से उतने ही दूर भागते जाते थे ।”

मेहता साहब के विषय में ये सब बातें सुनकर वह वास्तविकता के निकट न पहुँच सका । उसकी जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी ।

सब लोग घाय की मेज के चारों ओर पड़ी कुर्सियों पर बैठ गये । अभी पाँच मिनट भी व्यतीत न हुए होंगे कि मिस्टर मेहता आ गये ।

उन्होंने सीधे विद्यासागर के पास पहुँचकर कहा, “क्षमा करना, थोड़ी देर हो गई मुझे । दुकान पर कई कवियों, उपन्यासकारों और आलोचकों ने ऐसा घेर लिया कि जान छुड़ाकर आना कठिन हो गया ।

बड़ी दयनीय वशा है विद्यासागर जी हमारे देश के लेखकों की ।”

“क्यों ?” विद्यासागर ने पूछा ।

“सच कहूँ तो बात यह है कि प्रकाशन-व्यवसाय में कोई लाभ ही नहीं है । मैं तो इस काम में फँस गया हूँ इसलिये बाहर नहीं निकल सकता, वरना तो पूर्वजों की सब कमाई इसमें फँसा बैठा हूँ ।” और इसके पश्चात् बात का रुख बदल कर बोले, “आपका उपन्यास किस स्टेज पर है मिस्टर विद्यासागर ?”

विद्यासागर ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, “जिस स्टेज पर मैं और आप आमने-सामने खड़े बातें कर रहे हैं । यही है अन्तिम पंक्ति और यहीं तक के जीवन विकसित कर पाया हूँ । अपने सम्पर्क से पहले के जीवन भी अभी प्रकाश में नहीं आये ।”

नरेश मेहता उधल पड़े विद्यासागर की बात सुनकर और बनावटी हंसी हँसते हुए बोले, “कमाल का होगा आपका उपन्यास भी मिस्टर विद्यासागर ! आपके ही उपन्यास से हमारी देवी जी अपना जनरल बुक्स का प्रकाशन प्रारंभ करेंगी । हम भी सहयोग देंगे आपके उपन्यास की बिक्री में । कहीं किसी एजुकेशन एक्सपेंशन आफ़ीसर को फँसा-फँसू कर हजार-बारह सौ कापी खरीदवा देंगे । आखिर गलितर्या तो भरनी ही

पड़ेंगी हमें अपनी देवी जी की और डूबती हुई रकम को भी उभारना ही होगा ।”

“यानी जीजी गलतियाँ करती जायेंगी और जीजा जी उन्हें सुधारते जायेंगे । कितनी अच्छी बात कही आपने । कितने उदार व्यक्ति हैं आप ?” व्यंगपूर्ण दृष्टि से मेहता साहब के चेहरे पर देखते हुए शीला ने कहा ।

शीला की बात मेहता साहब के दिल में तीर सी लगती थी । पहले पहल जब उनकी भेंट शीला से हुई थी तो उन्होंने उसे मलाई का लच्छा समझा था । परन्तु ज्यों-ज्यों वह उसके सम्पर्क में आये, त्यों-त्यों वह एक विचित्र प्रकार की लड़की सिद्ध होती गई । उन्हें कभी-कभी तो ऐसा चुप हो जाना पड़ता था शीला के सम्मुख कि.....

लता ने बीच ही में कुछ न समझती सी बनकर विद्यासागर से पूछा “कुछ समझ में नहीं आ रहीं बातें ।”

“मैं स्वयं भी तुम्हारी ही तरह अल्प ज्ञानी हूँ । सब कुछ मैं समझ ही लेता हूँ ऐसी बात नहीं है ।” और फिर मेहता साहब की ओर देख कर बोले, “मिस्टर मेहता, आइये कुमारी लता से आपका परिचय कराऊँ । आप हैं कुमारी लता ! बनारस-विश्वविद्यालय हिन्दी एम० ए० की छात्रा । हमारे गाँव के चौधरी रूपसिंह जी की सुपुत्री ।”

इसके पश्चात् जब मेहता साहब का परिचय कराने लगे तो शीला बीच में आकर बोली, “इनका परिचय मैं कराऊँगी लता ! विद्यासागर जी जीजा जी को ठीक-ठीक नहीं जानते ।”

शीला की बात सुनकर नरेश मेहता अन्दर से कुढ़ते हुए भी ऊपर से प्रसन्न हो बने रहे और हँसकर कहा, “इसमें कोई संदेह नहीं कुमारी लता ! यहाँ मेरा परिचय शीला से बढ़कर अन्य कोई व्यक्ति नहीं करा सकता ।”

मेहता साहब का परिचय शीला ने अपनी समझ से पूरी-पूरी जानकारी के साथ दिया परन्तु तब भी उसमें से कितना कुछ रह गया यह मन में समझकर मेहता साहब को हार्दिक सन्तोष हुआ । उनके जीवन

के बहुत से गुप्त खजाने ज्यों-के-त्यों ठके-दबे सुरक्षित रह गये और जो कुछ कहा गया उसे भी उन्होंने अपनी योग्यता ही माना ।

सबने चाय पीनी प्रारम्भ की और बातों का सिलसिला भी चलता रहा । परन्तु मनोरमा आज एक शब्द भी नहीं बोलीं । इसी से चाय का मिठास फीका-फीका-सा लगा सबको ।

: ६२ :

प्रातःकाल पाँच बजे की गाड़ी से लता और विद्यासागर ने जमालपुर के लिए प्रस्थान किया । शीला स्वयं गाड़ी ड्राइव करके स्टेशन तक उन्हें पहुँचाने आई ।

प्लेटफार्म पर गाड़ी के डिब्बे के सामने खड़ी शीला बोली, “लता बहन, तुमने तो दो दिन में ही मुझे ऐसा कर दिया कि अब लगता है मेरा तुम्हारे बिना यहाँ रहना कठिन हो जायगा । या तो शीघ्र ही तुम्हें यहाँ बुलाना होगा और या मुझे ही तुम्हारे पास आना पड़ेगा ।”

लता बोली, “मैं निमंत्रित करती हूँ आपको अपने गाँव में आने के लिए । माता जी और पिताजी बहुत प्रसन्न होंगे तुम्हें देखकर और हमारे गाँव के कार्यकर्त्ताओं के उत्साह का तो पारावार ही नहीं रहेगा ।”

विद्यासागर बोला, “आना तो तुम्हें होगा ही शीला ! तुम्हारा तो प्रोग्राम है बारह-की-बारह दूधशालाओं के निरीक्षण का । तुम अपना प्रोग्राम जमालपुर का रखो, मनोरमा जीजी भी साथ आयें तो क्या कहने !”

बात निश्चित हो गई ।

गाड़ी के गार्ड ने सीटी बजाई । विद्यासागर और लता शीला से बिछुड़ गये । वह झूठी मुस्कराहट चेहरे पर लिये रूमाल हिलाती रह गई और इधर भी दोनों के हृदयों पर बिछुड़न का भारीपन था ।

लता ने सीट पर बैठकर विद्यासागर से कहा, “कितनी भोली और सरल है शीला । कितनी शीतल और मधुर है शीला ? शील की बेबी है सचमुच । कर्तव्य की प्रतिमा है ।”

शीला की प्रशंसा लता के अघरों से अमृत-बूंदों के समान भर कर विद्यासागर पर बरस पड़ी। विद्यासागर मंत्र-मुग्ध सा रह गया।

लता ने विद्यासागर के चेहरे को गम्भीरतापूर्वक देखा और बात बदलकर बोली, “गाँव में पहुँचते ही पहले पुरानी हवेली के अहाते में चलेंगे हम लोग।”

लता के इस वाक्य ने विद्यासागर की विचारधारा की दिशा बदली। वह किसी स्वप्न से में से जाग्रत होता हुआ बोला, “आपका विचार ठीक है कुमारी जी ! हमें गाँव में पहुँच कर अपना एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट न करना चाहिए।”

गाड़ी सटासट बढ़ती जा रही थी। लता की दृष्टि गाड़ी के डिब्बे में फँसी तो एक नज़र दरोगाजी पर पड़ी। वह लगभग वही बर्दी पहने थे जो जमालपुर वाले दरोगाजी पहन कर, नौकरी से बर्खास्त होने के बाद, गाँव में आये थे।

उन्हें देखकर लता मन-ही-मन मुग्ध होकर मुस्करा दी और फिर उसकी त्योरी पर बल पड़ने लगे। विद्यासागर ने उसकी दोनों शकलें देखीं और तुरन्त प्रश्न किया, “क्या देखा तुमने ?”

लता सामने बैठे दरोगा जी की ओर संकेत करके बोली, “इन महाशय को देखकर ताऊ दरोगाजी की याद आ गई।”

कहती-कहती लता ठहर गई। और फिर गम्भीरतापूर्वक बोली, “विद्यासागर जी यह हमारे ताऊ दरोगा जी बड़े चालाक व्यक्ति हैं। इनका काटा पानी नहीं माँगता। इनकी खोपड़ी हर समय काले नाग की तरह भूमती रहती है। इन्होंने गाँव में आकर गाँव के जीवन में विष घोल दिया है। मेरे भाई का जीवन नष्ट कर दिया।”

विद्यासागर ने देखा कि लता के हृदय में दरोगा जी की ओर से गहरी जलन थी। उसे अपने भाई के जीवन की बर्बादी का पूरा-पूरा माला था।

विद्यासागर भी गम्भीरता धारण करके बोला, “आपका विचार

सही है कुमारी जी ! परन्तु अब दरोगा जी को यदि जमालपुर में रहना होगा तो अपना रास्ता बदलकर रहना होगा । जिस रास्ते पर वह चल रहे हैं उसे बन्द कर दिया जायगा ।”

यह बात विद्यासागर ने इतनी स्पष्ट और बलपूर्वक कही कि लता उससे प्रभावित हुए बिना न रह सकी । उसने एक विशेष श्रद्धा और विश्वास के साथ विद्यासागर के चेहरे पर देखा । परन्तु वह उतना ही सरल था जितना पहले ।

लता के देखते-देखते ही विद्यासागर मुस्कराने लगा और बात की रख बदलकर बोला, “इस बार गाँव में बैठकर मुझे लाला चोखेराम की भी नाड़ी देखनी है । दूधशाला के लिए मैंने उनसे पुराना अहाता देने को कहा तो किरायानामा लिखाने की शर्त सामने रख दी ।”

लता हँसकर बोली, “मुनीमजी ज़रा लोभी प्रकार के व्यक्ति हैं । हमारी ही रियासत में चोरी-छुपके काट-छाँट करके उन्होंने यह जायदाद और जमीन खरीदी है । इतनी मेहनत और जीवन-भर की संलग्नता के पश्चात् कमाई हुई जायदाद का एक लम्बा-चौड़ा अहाता बिला किराया-नामा लिखाये आपके हवाले करने में विल तो दहलता ही ।

और फिर यदि वह तय्यार भी हो जाते तो उन्हें ताई जी का भी तो भय था । वह उन्हें नोंच-नोंचकर खा जातीं ।”

ताई की बात सुनकर विद्यासागर को हँसी आ गई । वह हँसते हुए ही बोला, “यह बात कहकर आपने लाला चोखेराम के प्रति मेरी सहा-नुभूति जगा दी । वास्तव में दोष उसका कम ही है ।

इन दिनों अपनी पत्नी के दास की हैसियत से ही वह जीवन बिता रहे हैं ।”

विद्यासागर के मुख से ‘दास’ शब्द सुनकर लता बोली, “यह बात भी नहीं है विद्यासागर जी ! ताई जी लाला चोखेराम को बड़ा प्रेम करती हैं । क्या मजाल जो उन्हें खाना खिलाये बिना एक कोर भी अपने मुँह में डाल लें । लाला चोखेराम के नाम के जितने भी दिन

वर्ष में आते हैं बहू पूरा व्रत करती हैं। इनकी ऐसे देखभाल रखती हैं जैसे कोई नेक माँ अपने बच्चे की रखती है।”

बातों-ही-बातों में जमालपुर का स्टेशन आ गया और दोनों उतर पड़े।

स्टेशन पर चौधरी रूपसिंह का बैल-ताँगा आया हुआ था। साथ ही कनकू, भूमन और रामसिंह भी विद्यासागर को लेने आये थे। इनके पास सवारी नहीं थी; ये पैदल ही थे।

लता को ताँगे में बिठलाकर विद्यासागर नमस्कार करता हुआ बोला, “अब आप गाँव जायें कुमारी जी ! हम चारों भी पैदल-पैदल अभी पहुँचते हैं।”

∴ ६३ :

लता का ताँगा दूर निकल जाने पर रामसिंह बोला, “सागर भय्या ! इन दो दिनन में तौ गजब है गयौ। दरोगा बड़ा सूँछन कू उमैठ कं और छाती कू चौड़ी करकं गाम में फिरत है। सुना है थानेदार धीरसिंह का तबादला है गया।”

“क्या ?” आश्चर्यचकित होकर विद्यासागर ने पूछा, “तुमसे किसने कही यह बात ?”

“थाने का एक सिपाही आया था। पूछें था थारे कू। तमं याद करा है थानेदार धीरसिंह नै।” भूमन ने कहा।

थाना यहाँ से पाँच मील पड़ता था। विद्यासागर बोला, “तो चलो फिर गाँव चलने से पहले थानेदार धीरसिंह जी से भेंट करते चलें। शायद उन्हें कोई आवश्यक सूचना देनी हो।”

“जामें का सक है।” गम्भीरतापूर्वक कनकू ने कहा।

“म्हारा भी यूँ ही ह्याल था अक गाँव जान सौं पहलै थाने में चला जाय।” भूमन बोला।

एक घंटे का पैदल रास्ता था। तीनों थाने की दिशा में चल पड़े।

रास्ते में चलते-चलते कनकू बोला, “सागर भय्या ! कल से तौ लाला चोखेराम जी रंगत बदल रहे हैं । और कल संध्या कू दारोगा जी बाके फारम पे भी आये थे ।”

विद्यासागर ने यह बात भी गम्भीरतापूर्वक सुनी । जबान से कहा एक शब्द नहीं ।

भूमन बोला, “घुसमुस तौ भौत की भय्या दरोगाजी नै, पर मामला गठा नहीं ।”

“गठता भी कैसे सागर भैया ! बाकू अपने खरच-पानी कू रूपैया चाहिये और रूपैया लाला चोखेराम दिवाल नाये है ।”

“यह सच है रामसिंह ! लाला चोखेराम कहीं दब कर रस भले ही दे-दें, वैसे भलमनसाहत से वह किसी को छदाम भी देने वाले नहीं हैं ।” मुस्कराकर विद्यासागर बोला, “सुना है बड़ी मेहनत से कमाई है उन्होंने यह धन-सम्पत्ति ।”

रामसिंह विद्यासागर की यह बात सुनकर तिलमिला उठा और पिछली सब बातें उगलता हुआ बोला, “सब कुछ रामसिंह की आंखन नै देखा है सागर भय्या ! जैसी मेहनत लाला नै करी है । हाँ, इतना जरूर है अक आदमी भागवान है । अच्छे करम करके आया है पहले जनम में तोही तौ यूँ सुख भोग रहा है ।”

भूमन ने उत्सुकतापूर्वक पूछा, “तौ के यूँ बात सच है रामसिंह कि लाला पहलै मूंगफली की छबड़ी लगायके बैठत हे ?”

“यामें भूठ ही कहा है । मेरी आंखन नै सब देखा है । कैसे बड़े चौधरी रूपराम के पिता इन्हें अपने साथ ल्याये और कैसे-कैसे आगे बढ़े ।” रामसिंह लम्बी सांस खींचकर बोला, “क्या सुनोगे सागर भैया ! उन इसानन कू जो-जो मैने यापे करे हैं ।”

कहते-कहते रामसिंह को ललवाइन की याद आ गई और वह एक दम शांत होता हुआ बोला, “सब बता देता सागर भैया ! पर ललवायन कू कसम बै रक्खी है । बाकू नहीं तोड़ सकता । लाला चोखेराम चाहै

कैसा भी बयूं ना हो, पर ललवायन बड़ी नेक है। दोनों टंम पूजा करत है गोपाल कन्हैया की।”

रामसिंह कहता-कहता बहक गया नहीं तो आज चोखेराम की आर्थिक उन्नति का इतिहास सामने आ जाता।

भम्मन पहलवान मुस्कराकर बोला, “ललवायन से रामसिंह की पुरानी आसनाई है सागर भैया ! वाके सामने करे परन कू यू जरूर पूरा करे है। और ललवाइन भी यापे पूरा-पूरा अकीन रखे है। याके साथ ऊ लाला चोखेराम कू भट्टी में भी भोंक सकत है। उसे अकीन है अफ रामसिंह लाला चोखेराम कू बचाय ही लेगा।”

विद्यासागर ने भम्मन पहलवान की बात में रस लेते हुए रामसिंह से पूछा, “क्यों रामसिंह ! क्या यह सच है कि ललवाइन तुम्हें प्रेम करती हैं ?”

बात बहुत खोलकर विद्यासागर ने कह दी और चारों व्यक्ति चलते-चलते रास्ते में रुक गये। सब मौन थे। विद्यासागर रामसिंह के चेहरे पर देख रहा था।

विद्यासागर बोला, “प्रेम पाप नहीं है रामसिंह !”

“जामे का सक है रामसिंह !” कनकू बोला। “तेरे इसानन में दबे पड़े हैं लाला और ललवायन दोनों। हमसे पूछो तो भैया सागर ऊ ललवायन परेम-वरेम कछू नाय करत है। उल्लू बनावत है रामसिंह और हम जैसे मजदूरन कू।”

भम्मन हंसता हुआ बोला, “सागर भय्या ! वाके परेम में रामसिंह सुख-सुख के मजनु है गया और ललवायन वाके परेम में भुटिया है गई।”

भम्मन की बात सुनकर सबको हंसी आ गई।

: ६४ :

विद्यासागर थाने में पहुंचा तो देखा कि थानेदार धीरसिंह का सामान ट्रक पर लावा जा रहा था। वह थाने में घर के सामने वाले नीम



के पेड़ के नीचे मूढ़े पर बैठे थे। थाने के कुछ सिपाही पास खड़े थे।

विद्यासागर, कनकू, भम्मन और रामसिंह को आते देखकर थानेदार धीरसिंह मूढ़े से उठ खड़े हुए और आगे बढ़कर उन्होंने विद्यासागर से हाथ मिलाया।

हाथ मिलाकर बोले, “बहुत अच्छे समय पर आये विद्यासागर जी। आधा घंटा भी न आते तो मैं चला जाता।”

“परन्तु यह सब हुआ कैसे? आखिर किसने शिकायत की आपकी? यह कितनी गलत बात है कि एक ईमानदार आदमी को बेकार परेशान किया गया।” विद्यासागर ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

“परेशानी की कोई बात नहीं है विद्यासागर जी! परेशानी इस बात की है कि मेरा तबादला गलत हुआ है। ऊपर से आदेश आया है कि रिश्वत लेने वाले और निकम्मे थानेदारों के तबादले किये जायें और तबादले किये गये हैं मेरे जैसे तीन थानेदारों के, जिनके विषय में मैं सही तरीके पर जानता हूँ कि उन्होंने रिश्वत के नाम की कभी एक कौड़ी भी अपने हाथ नहीं छुई।” धीरसिंह ने कहा।

इस तबादले का थानेदार धीरसिंह के दिल में काफी दर्द था। और इसे सुनकर विद्यासागर को भी कम दुःख नहीं हुआ परन्तु इसे रोकने में दोनों ही असमर्थ थे।

दोनों ने एक-दूसरे की आँखों में झाँक कर ध्यानपूर्वक देखा और आँखों-ही-आँखों में अपने-अपने दिल की बात कह दी।

“कोई चिंता की बात नहीं है विद्यासागर जी! भलाई के रास्ते होते ही हैं पथरीले। ऊबड़-खाबड़ होते हैं वे। बड़े कंटीले होते हैं वे। उनमें अपना रास्ता अपने आप बनाना होता है। और बड़ी के रास्ते साफ़ होते हैं, ठंडी सड़कों की तरह, मोटर दौड़ाते जाइये और बढ़ते जाइये।” गहरी साँस लेकर थानेदार धीरसिंह बोले।

विद्यासागर का मन भारी हो रहा था थानेदार धीरसिंह की विबाई में। वह गम्भीरतापूर्वक बोला, “धीरसिंह जी, आपको खोकर

मैं आज अपने को थोड़ा कमजोर पा रहा हूँ। आपके भरोसे पर मैं इलाके के बदमाशों की चिंता नहीं करता था। अब करनी पड़ेगी और मेरा वह बहुत सा समय जो मैं रचनात्मक काम में लगाता और जिससे बहुत से बेरोजगारों को रोजगार मिलता, देहात में सहयोग बढ़ता और लोग अपने पैरों पर खड़े होना सीखते, व्यर्थ बदमाशों से टकराने में नष्ट होगा।”

थानेदार धीरसिंह बोले, “वह सब कुछ नहीं होगा विद्यासागर जी ! आप इस मामले में भाग्यवान रहे। मेरे मित्र और सहपाठी कुँवर वीरेन्द्रसिंह जी आपके थाने में आ रहे हैं। आपको उनसे वही सहयोग मिलेगा जो मुझसे मिला है। उनका भी मेरी तरह दोषी बनाकर ट्रांसफर किया गया है। बड़ा दिलेर आदमी है वह और ईमानदार एक नम्बर। एक नम्बर का सख्त और एक नम्बर का नर्म अर्थात् हमदर्द भी अक्वल दर्जे का और बंदों के लिए जालिम भी पूरा-पूरा।”

थानेदार धीरसिंह विद्यासागर के साथ और आगे बढ़कर कनकू, भूमन और रामसिंह के पास तक पहुँच गये। तीनों ने राम-राम की।

धीरसिंह ने पूछा, “कैसे हाल-चाल हैं दारोजा जी के ? और सुना है कि लाला चोखेराम भी इधर दो दिन से उनसे मिल गये हैं।”

धीरसिंह के मुँह से यह बात सुनकर विद्यासागर, रामसिंह, कनकू, और भूमन आश्चर्य-चकित रह गये।

धीरसिंह हंसकर बोले, “हमें हवा खबरें देती हैं रामसिंह ! मकानों की दीवारें हमसे बातें करती हैं। गाँव के वृक्ष हमें अपने आसपास की कहानी सुनाते हैं।”

“लग तो ऐसा ही रहा है।” विद्यासागर ने मुस्कराकर कहा।

“भूमन पहलवान !, तुम जाकर दरोगाजी से कह देना कि उनकी इच्छा पूरी नहीं होगी। ऐसा मैंने कहा है, यह कहना तुम।” धीरसिंह सीना उभारकर बोले।

धीरसिंह की बात सुनकर रामसिंह, कनकू और भूमन की नसों

का जमा हुआ रक्त पूरी चाल के साथ दौड़ने लगा । भ्रमन जोश में आकर बोला, “जरूर-जरूर लो थानेदार सब ! थारा संवेसा ऐसा मुनाऊं दरोगा जी कू अक दांत खट्टे हो जायें उनन के ।”

“जामें का सक है ।” छाती फुलाकर कनकू बोला ।

: ६५ :

रामभगत खड़ी पर गाढ़ा बुन रहा था । और बुनता-बुनता कबीर का पद गा रहा था :

भीनी-भीनी बीनी चदरिया,

काहे का ताना काहे की बरनी ।

चमेली सूत की पिदियों को सुलभा रही थी और उसकी मां आटी बना रही थी । तभी उनके द्वार के सामने से चौधरी धीरसिंह का तांगा आया ।

चमेली ने तांगे की आवाज सुनी और वह लपककर घर की दुबारी पार करके दगड़े में आ गई ।

तांगा आगे निकल गया था और उसमें लता बंठी जा रही थी ।

चमेली पर रुका न गया । वह दौड़ पड़ी तांगे के पीछे और पुकारा, “कुमारी जी !”

लता ने चमेली की आवाज सुनकर तांगा रुकवा दिया । चमेली भी उसके निकट पहुँच गई परन्तु पूछ न सकी कुछ । वैसे उसकी सूरत पर प्रश्न बिछा था ।

लता मुस्कराकर बोली, “तुम्हारे भय्या आ रहे हैं पीछे-पीछे भ्रमन, कनकू और रामसिंह के साथ ।” और फिर एक झोला तांगे में से उठा कर कहा, “ले यह तू लेजा अपने भय्या का झोला । इसमें तेरे लिए केला और कई बहुत बढ़िया-बढ़िया चीजें हैं ।”

चमेली ने थैला ले लिया और लता ने अपना तांगा आगे बढ़ाया ।

चमेली थैले को लिए कूदती हुई घर में घुसी और बोली, “भय्या आ-गये मां और उनका थैला उनसे भी पहले आ गया।” कहकर चमेली ने थैला मां की गोद में रख दिया और फिर चुपके से उसके हाथ से अटेरन खिसकाकर बोली, “पहले मुझे दिखावे रो मां ! थैला मैं भय्या कहा, ल्याया है मेरे लयों।”

चमेली की मां बोली, “अभी रुक जा चमेली। सागर आवंगा तो आप ही खोलेंगा या थैला कू। वाके काम-काज का कोई कागद-पत्तर जामेंसे गुम है गया तो नुकसान है जायगा।”

विनम्र चमेली ने माता की बात मान ली और विद्यासागर की प्रतीक्षा में बैठकर अपना वही पुराना पिदियें सुलभाने का कार्य करने लगी।

: ६६ :

लता और चमेली दोनों ही विद्यासागर के आने की प्रतीक्षा में थीं। लता विद्यासागर को साथ लेकर अपनी हवेली के अहाते में जाने का प्रोग्राम बनाये बंठी थी और चमेली हरी छाल का चित्तीदार केला खाने का। रामभगत और चमेली की मां की चार आंखें भी अपने लाल को देखने के लिए व्याकुल थीं।

समय निकलता जा रहा था। बेर होती जा रही थी। अब तक तो चाहे जितने भी मन्वे चलते, गांव तक आ जाते।

इसी दौरान में दो बार लता का आदमी रामसिंह के घर आकर विद्यासागर के आने के विषय में पूछ गया और दो बार चमेली दौड़कर हवेली में भांक आई।

थोड़ी बेर और प्रतीक्षा करके चिंता बढ़ने लगी। लता की समझ में बेर का कारण नहीं आया। रामभगत बेचारे को कुछ पता ही नहीं था किसी भी बात का। चमेली की मां बेचैन हो रही थी।

उसने आज गांव में अफ़वाह सुनी थी कि दरोगा जी ने कहीं कहा

है कि उन्होंने सागर के हमदर्द थानेदार धीरसिंह का तबादला करा दिया। और अब उसकी जगह उनका कोई ज़िगरी दोस्त इस थाने में आ रहा है। उसके आते ही दरोगा जी सागर को गिरफ्तार करा देंगे।

यह बात चमेली की माँ ने अभी तक रामभगत से नहीं कही थी, परन्तु सागर को आने में काफी देर हो गई तो वह इसे अपने ही दिल में समेटकर न रख सकी। रामभगत को उसने वे शब्द सुना दिये जो दरोगा जी ने कहे थे।

रामभगत सहमा-सा रह गया चमेली की माँ की बात सुन कर। परन्तु आदमी वह निर्भीक था। तुरन्त ही चिंता के पानी से ऊपर उभर कर बोला, “मेरा सागर हलवे का हप्पा नहीं हैं जो दारोगा जी गाल में रख लेंगे। वाकी भी बड़ी-बड़ी पहुँच है। कलटूर साब से भी मिलता है मेरा बेटा चमेली की माँ। तू कहा जानें।”

ये बातें चल ही रही थीं कि विद्यासागर कनकू, भूमन और राम-सिंह के साथ द्वार पर आता दिखाई दे गया।

: ६७ :

जमालपुर गाँव में दरोगा जी ने भाँति-भाँति की अफ़वाहें फैलाई हुई थीं। लाला चोखेराम को किसी प्रकार अपने भाँसे में लेकर उन्होंने अपनी तरफ़ कर लिया था। उन्हें समझा दिया था कि यह उनका ही दम था जो उन्होंने थानेदार धीरसिंह को अपने थाने से तबदील करा दिया।

“लाला चोखेराम !” मूँछों पर ताव देकर दारोगा जी ने कहा।

“मैंने बाल सफेद धूप में नहीं किये हैं। धीरसिंह जैसे कल के थानेदार जाने कितने अपने हाथ के नीचे से निकाल कर फेंक चुका हूँ। जब मैं दीवान था तो ऐसे छोक़ों को थानेदारी करनी सिखाता था।

“और जब आप दरोगा हो गये तब ?” लाला चोखेराम ने पूछा।  
तब अच्छे-अच्छे अफ़सरों को चराया और चुगाया है हमने। जैसी

जिसकी कीमत आँकी वंसा उसका मूल्य चुकाया। खाने-खिलाने और पीने-पिलाने का असर तो होता ही है 'सेठ' ! 'मुँह खाये और आँख लजाये' यह कहावत तुमने नहीं सुनी क्या ? दरोगा जी बोले ।

दरोगा जी के मुँह से अपने लिए 'सेठ' शब्द सुनकर लाला चोखेराम की दशा गैस के गुब्बारे के समान हो गई ।

लाला चोखेराम बहुत सोच-समझकर बोले, "बात आपकी ठीक है दरोगा जी, पर यह सागर का बच्चा भी बड़ा जहरी है। बिच्छू का बच्चा समझना इसे ।"

दरोगा जी सीने में उभार लाकर गर्व के साथ बोले, "ऐसे-ऐसे जाने कितने बिच्छुओं को अपने जूते के तले से कुचल चुका हूँ। सुना है तुमसे किसी कागज पर दस्तखत करा लिए हैं इस पाजी ने ।"

"करा तो लिये हैं दरोगा जी !" गिड़गिड़ाकर लाला चोखेराम बोले ।

चोखेराम की बात सुनकर दरोगा जी मन-ही-मन मुस्कराये, पर ऊपर से गंभीर बनकर कहा, "बाकई बड़ा चालाक और बदमाश है यह सागर का बच्चा। पूरा जाल पूर दिया है इसने गाँव भर पर। पहले तुम्हें उल्लू बनाया और अब चौधरी रूपसिंह को फँसा लिया है। एक-न-एक काठ का उल्लू मिल ही जाता है इसे ।

लेकिन तुम फ़िक्र मत करो कुछ। मैंने भी वह तुम्हारा कागज इसके कब्जे से न निकाल लिया तो मेरा नाम भी दरोगा नहीं ।"

यह बात दरोगा जी ने इस अन्दाज और नाटकीयता के साथ कही कि एक क्षण को लाला चोखेराम को विश्वास हो गया कि दरोगा जी सचमुच ही उनका अपने मजदूरों से किया गया एप्रीमेंट वापस ला देंगे ।

उस एप्रीमेंट के हो जाने के पश्चात् लाला चोखेराम यह अनुभव करने लगे थे कि अब उनका फार्म उनका नहीं रहा। उस पर काम करने वाले सभी मजदूर उसमें साझीदार बन गये हैं। उन्हें ऐसा लगने

लगा था कि विद्यासागर ने उन्हें चारों ओर से जंजीरों में जकड़कर रामसिंह, भूमन और कनकू के हवाले कर दिया है।

उनकी आत्मा उस बन्धन में छटपटा रही थी और वह घड़ी की चौथाई में उससे मुक्त हो जाना चाहते थे।

दरोगा जी ने उन्हें मुक्ति दिलाने का पूर्ण आश्वासन दे दिया और स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वह क्रान्तन भी उस एप्रीमेंट को रद्द करा सकते हैं।

लाला चोखेराम दरोगाजी के पास ले चलकर सीधा देवी के मन्दिर में पहुँचा। एक हाथ में फूलों का दोना था और दूसरे में दो आने की बरफी।

पंडित संकटमोचन देवी के पास आलथी-पालथी लगाये बैठे थे। विशाल मस्तक पर लाल मोटा बिन्दा लगा था और नंगे शरीर पर यज्ञोपवीत विराजमान था।

लाला चोखेराम को आते देखकर उन्होंने प्राणायाम सा खींचकर नेत्र बन्द कर लिए और घनघोर नाद से मंदिर को गुंजाते हुए बोले, “देवी चण्डिके, देवी चंडिके तेरे भक्तों की कुशल हो। उस सेठ की कुशल हो जिसने तेरा यह विशाल भवन बनवाया।”

पंडित संकट मोचन के शब्द लाला चोखेराम के कानों में पड़े तो उनका मन मुग्ध हो गया। देवी उनकी इच्छापूर्ति अवश्य करेगी, उन्हें यह पूरा-पूरा विश्वास था, क्योंकि देवी का यह भवन उन्हीं के पैसे से बना था। टूटे-फूटे खंडहर से जिस देवी को उन्होंने इतने सुन्दर भवन में स्थापित करा दिया, क्या वह देवी उनका इतना भी ध्यान नहीं रखेगी ?

“पंडित जी पाँवलागन।” लाला चोखेराम ने कहा।

“पाँवलागन, पाँवलागन, लाला चोखेराम ! अब तो आपने देवी के मन्दिर में आना ही बन्द कर दिया। कल रात देवी ने दर्शन दिये थे। पूछ रही थी कि लाला चोखेराम क्यों हमसे नाराज हो गये ?”

बात पंडित संकटमोचन ने इतनी गम्भीरता के साथ कही कि लाला चोखेराम हाथ जोड़कर देवी के सामने मस्तक झुकाते हुए बोले, “न आने के लिए क्षमा करना माता ! गृहस्थ के बंधन इतने घने हैं कि इष्टदेवों के दर्शनों में भी बाधा डाल देते हैं।”

“देवी ने पूछा कि पूछकर रखना लाला चोखेराम पर क्या संकट है। संकट न होता तो वह कदापि मेरे द्वार पर आना न छोड़ता।” उसी गम्भीरता के साथ पंडित संकटमोचन ने कहा, “आज रात्रि में देवी फिर आने का वचन दे गई हैं।”

लाला चोखेराम भावुकता में भर गये। उन्होंने अपने मन की बात पूरी-पूरी पंडित संकटमोचन पर उगल दी। और पंडित संकटमोचन ने उन्हें विश्वास दिलाया कि देवी उन पर बहुत प्रसन्न है। वह उनका कार्य अवश्य पूरा करेंगी। सागर जैसे छोकरे को कुचल कर रख देगी।

: ६८ :

लाला चोखेराम प्रसन्नतापूर्वक मन्दिर से लौट रहे थे कि मार्ग में उन्हें सागर की माँ मन्दिर की ओर आती हुई मिली। सागर की माँ को देखकर लाला चोखेराम तनिक ठहर गये और ठहरकर पूछा, “सागर शहर से नहीं आया, सागर की माँ।”

“अभी तो नाँय आया लाला जी।” सादगी से सागर की माँ बोली।”

“सुना है दरोगा जी ने बड़ा उलट-फेर कर दिया है। थानेदार धीरसिंह कू तबदील करा दिया है और अब उसकी जगह उनका कोई पुराना यार आ रहा है। कहते हैं कि आते ही सागर को हवालात बन्द करा देंगे। जरा ध्यान रखना तू। अपने आवामी हो, इसलिए पहले से सुभाये देता हूँ।”

सागर की माँ बिना पढ़ी गाँव की स्त्री थी, परन्तु समझ और धैर्य की उसमें कमी नहीं थी। सन् तीस में नमक बनाने पर जब रामभगत



जेल चला गया था तो उसने बड़ी निर्भीकता से अपना जीवन बिताया था। इन्हीं लाला चोखेराम ने उन दिनों उस पर प्यार और पैसे के डोरे डालने का खूब प्रयत्न किया था, परन्तु इन्हें मुँह की खानी पड़ी थी।

उन्हीं लाला चोखेराम को सामने खड़े देखकर सागर की माँ मुस्कराकर बोली, “लाला हौनी कू मेटन की ताकत राम मैं है। तू और दरोगा जी कहा कर सकत हैं?”

सागर की माँ का जवाब सुनकर लाला चोखेराम अन्दर-ही-अन्दर तिलमिलाकर बोले, “सागर की माँ ! तूने सदा मुझे गलत ही समझा है। मैं इतना बुरा आदमी नहीं हूँ जितना तू समझती है।”

सागर की माँ को हँसी आ गई लाला चोखेराम की बात पर। वह बोली, “लाला, मैं तुझे गलत काहे कू समझूँगी। मैं तो तुझ सेठ समझूँ हूँ। मैंने तेरा ऊ दिन भी देखा है जब तुझ पं एक लंगोटी की चाल भी नां थी, और आज तू गाँम भर की दौलत का मालक है। तू भला आदमी ना होता तौ दौलत तुझ पं काहे कू रीझती?”

लाला चोखेराम ने सागर की माँ के चेहरे पर गम्भीरतापूर्वक देखा और एक क्षण में उसके सामने उसका पूरा जीवन आ गया। जिस दिन रामभगत की बहू गाँव में आई थी तो उसके चेहरे की झलक लाला चोखेराम ने पा ली थी और उसी दिन से उनका मन उस पर लट्टू हो गया था।

उस दिन से आज तक उन्होंने सागर की माँ की कृपा-दृष्टि पाने के अपने प्रयत्न में कभी कोई कमी नहीं की परन्तु मीठी मुस्कराहट के अतिरिक्त कभी उनके हाथ पल्ले-कुछ भी न पड़ सका। केवल उपहास के पात्र-भर बने रहे वह जीवन-भर।

“मन्दिर में जा रही हो।” लाला ने पूछा।

“हाँ।” सागर की माँ बोली, “बेटे की रच्छा के लयों देबी कू परसाव चढ़ावन आई हूँ।”

कहकर सागर की माँ आगे बढ़ गई और लाला चोखेराम वहीं खड़े रह गये। उन्होंने मन-ही-मन कहा, “डायन की तरह आ गई मेरे पीछे-पीछे। कहीं देवी को बहका-फुसलाकर यह देवी का ध्यान मेरी ओर न हटा दे।”

इसी आशंका को मन में लिए वह धीरे-धीरे गाँव की चल ओर दिये।”

सागर की माँ मन्दिर में पहुँची तो पंडितसंकट मोचन उसी मुद्रा में बैठे थे। सागर की माँ ने कहा, “पंडित जी पाँव लागूँ।”

“पाँवलागन, पाँवलागन, सागर की माँ ! आओ, आओ ! कल रात देवी ने दर्शन दिये थे। तुम्हें याद करती थीं देवी।”

“मुझे !” भावुकता में भरकर सागर की माँ ने पूछा।

“हाँ, हाँ तुझे। कह रही थीं कि तुझे उसने सागर-जैसा सपूत दिया है और तू नित्य उस पर फूल और प्रसाद चढ़ाने भी नहीं आती। माता ने कहा है कि सागर पर उनका रक्षा-कर हर समय रहेगा। कोई चिंता की बात नहीं है।”

“सच, पंडित संकट मोचन !” नेत्र बन्द करके पूजा का सामान मूर्ति के चरणों में रखकर मस्तक टेकते हुए सागर की माँ ने कहा।

“और नहीं तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ। माता चंडिके की ही तो कृपा है कि तेरा बेटा सारे गाँव को नाच नचा रहा है। वरोगा जैसे जालिम और चोखेराम जैसे मक्कार आदमियों की नाक में नकेल डाल दी है उसने। भूमन, कनकू और रामसिंह जैसे चोर, उचक्कों और बदमाशों को सीधे रास्ते पर लगा दिया है। यह सब देवी का ही तो प्रताप है। मैं तो तेरे बेटे की रक्षा के लिए नित्य-नियम से पूजा करता हूँ। तू मुझे चाहे कुछ समझ या न समझ।” पंडित संकटमोचन ने गंभीरता पूर्वक कहा।

सागर की माँ के कानों में पंडित संकट मोचन का एक-एक शब्द अमृत की बूँद के समान गिरा। वह भावुकता में भरकर पंडित संकट-

मोचन की हृदय से कृतज्ञ हो गई। उसके दामन के नाड़े में एक रुपया बँधा था। उसे खोलकर पंडित संकटमोचन को देते हुए बोली, “पंडित जी, सागर थारा ही बेटा सं। तमी वऱके मां-बाप हो। बेबी सौ कहियो मेरे लाल की देखभाल में कमी ना आवै।”

रुपया लेकर अण्ठी में लगते हुए पंडित संकटमोचन बोले, “तू चिंता न कर सागर की माँ। सागर का मुझे तुम से अधिक ध्यान रहता है। और माता चंडिके भी सागर को बहुत चाहती हैं।”

सागर की माँ को मन्दिर में आकर बहुत शांति मिली। उसे लगा कि उसकी मनोकामना पूर्ण हो गई।

अब जब वह गाँव की तरफ़ चल रही थी तो उसके पैर आप-से-आप उठ रहे थे। फूल-जैसे हल्के हो रहे थे।

: ६६ :

दरोगा जी के खेत देवी के मन्दिर के आस-पास में ही थे। वह अपने खेतों पर घूमते-घूमते मंदिर की तरफ़ जा निकले।

देवी के पुजारी दरोगा जी भी कम नहीं थे। उन्हें भी अपनी देवि की पूजा पर पूरा-पूरा विश्वास था। देवी ने उनकी हर इच्छा पूर्ण की थी और अब थानेदार धीरसिंह का तबादला कराके देवी मय्या ने उनकी इज्जत ही रख दी।

मन्दिर के रास्ते में दरोगा जी को विद्यासागर की माँ लौटती हुई मिली। मसखरी आवाज में दरोगा जी बोले, “अरी रामभगत की जोरू, क्या देवी के मन्दिर से आ रही है?”

“आय तो रह्यी हूँ दरोगा जी।” विद्यासागर की माँ ने कहा।

दरोगा जी उससे बातें करना चाहते थे, पर वह रुकी नहीं। केवल इतना उत्तर-भर देकर अपने रास्ते पर आगे बढ़ गई।

दरोगा जी भी ज़रा ठिठक कर मन्दिर की ओर चल पड़े। मन्दिर

में पंडित संकटमोचन अपने उसी आसन में देवी के पास विराजमान थे ।

दरोगा जी को देखकर पंडित संकटमोचन खड़े हो गये और मुस्कराकर बोले, “पाँवलागन दरोगा जी ।”

“पाँवलागन अरे पंडितसंकट मोचन !” और फिर छूटते ही बोले “पंडित ! मान गये तुम्हें भी ! आखिर तूने ही हमारा साथ दिया । थानेदार धीरसिंह का पत्ता साफ़ करके ही दम लिया ।”

दरोगा जी की बात सुनकर संकटमोचन की बाँछें खिल गईं और वह गर्व के साथ बोला, “चाहे कंसा भी कलजुग क्यों न आ गया हो दरोगा जी, पर मन्त्रों में जो ताकत है वह कहीं चली थोड़े ही गई है ।” और फिर सीना उभारकर कहा, “लेकिन मन्त्रों का साधक भी तो पंडित संकटमोचन सा होना चाहिए ।”

“इसमें क्या शक है पंडित ! तेरी तपस्या का आदमी मेरी नज़र से दूसरा नहीं गुज़रा । दरोगाई के जमाने में मैंने भी एक-से-एक ऊँचे दर्जे का तपस्वी, सूफी और संन्यासी देखा है । सभी की संगत की है लेकिन तेरा सानी नहीं मिला ।” दरोगा जी ने गम्भीरतापूर्वक कहा ।

“सब देवी चंडिके की कृपा है दरोगा जी वरना मैं किस लायक हूँ सब उसी का वरदान है । लेकिन बड़े-बड़े कष्ट उठाये हैं मैंने भी इन मन्त्रों की साधना करने में ।” पंडित संकटमोचन नेत्र बन्द करके गर्व के साथ बोले ।

“इसमें क्या शक है ।” दरोगा जी ने कहा और फिर बोले, “वहीं बैठे रहोगे क्या ? चिलम गरम करो ज़रा । रात से नशा नहीं किया कोई । बदन दूट रहा है । सिर फटा जा रहा है ।”

“अभी लो दरोगा जी ! कल ही संध्या को शहर से वह लाजवाब सुलफ़ा मंगाया है कि एक कश में ही खोपड़ी टनाटन बोलने लगेगी । सब दर्द-दर्द काफ़ूर हो जायेगा ।” कहकर पंडित संकटमोचन वहाँ से

उठे और बराबर की कोठरी से अपनी सुलफे की छोटी-सी चिलम लाकर गरम की ।

दोनों ने दो-दो घूंट प्रेम से भरे और फिर एक-दूसरे की ओर दो साथियों के रूप में देखा ।

पंडित संकटमोचन बोले, “दरोगा जी, पासा सीधा पड़ा तो देख लेना भ्रमन तुम्हारे तलवे चाटता हुआ तुम्हारी शरण में न आ जाय तो मेरा नाम भी पंडित संकटमोचन नहीं । और अबकी बार एक ऐसी हांडी लहू की भर कर इस सागर के बच्चे पर छोड़नी है कि इसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ें ।”

दरोगा जी ने पंडित संकटमोचन की बात आश्चर्य-चकित होकर सुनी और कुछ अधिक विश्वास न रहने पर भी अविश्वास न कर सके । थोड़ी-सी भावुकता में भर कर बोले, “पंडित अगर तू ऐसा कर सका तो तू जो मांगेगा तुझे सो ही दूँगा । भ्रमन एक बार फिर से मेरे हाथ के आ नीचे जाय तो रूपसिंह की हवेली से एक-एक करके जेवर न चुगवा लूँ तो मेरा नाम भी दरोगा नहीं ।”

“यह सब होगा दरोगा जी, होकर रहेगा । आप विश्वास रखें । देवी चंडिके के प्रताप से सब कुछ होगा । गांव-भर पर आपका वही रौब-दौब कायम हो जायगा जो पहले कभी था, पर उस वस्तु इस गरीब पंडित को न भूल जाना ।” पंडित संकटमोचन मुस्कराकर सुलफे का दम खींचते हुए बोले ।

“अरे क्या कहता है पंडित ! तुझे मैं जब अपना साथी कह चुका तो और तू क्या चाहता है ? साथी को दशा देना दरोगा ने नहीं सीखा रास्ता चाहे मेरा जो कुछ रहा हो, लेकिन साथी के साथ सदा वफ़ा ही की है । अपने को मिटाकर उसे बनाया है । ऐसी दस ज़िन्वा मिसालें पेश कर सकता हूँ ।” दरोगी जी विशुद्ध मन से बोले और इस समय वास्तव में वह पंडित संकटमोचन के बहुत कृतज्ञ थे । उनका यह विश्वास था कि चाहे सोलह आने थानेदार धीरसिंह का तबादला पंडित

संकटमोचन के मंत्र से न हुआ हो परन्तु प्रभाव कुछ-न-कुछ उसका भी उस पर अवश्य है ।

सुलफे से दोनों के बदन में ताजगी आ गई । दोनों वहाँ से उठकर मंदिर से बाहर निकल आये ।

मन्दिर के दाईं ओर लाला चोखेराम का फ़ारम था । मन्दिर से निकलने पर दरोगा जी की दृष्टि उसी पर गई और उसकी लहलहाती हुई खेती ने उनके कलेजे में दर्द-सा पैदा कर दिया ।

पंडित संकटमोचन को ताड़ने में देर नहीं लगी और यह तुरन्त बोले, “इस लहलहाती खेती पर भी मेरा मन्त्र काम कर रहा है दरोगा जी । फूँककर इसे राख न करदूँ तो मेरा नाम संकटमोचन नहीं । इस लाला के बच्चे ने भी आपके साथ बदमाशी खेली है । सीधा शहर जाकर सागर से बातचीत करली और आपको चकमा दे गया ।”

संकटमोचन की बातें सुनकर दरोगा जी क्रोध से दाँत रगड़ते हुए बोले, “हरामजादा कहीं का ! इतना लुच्चा, इतना बदमाश आदमी दूसरा नहीं है जमालपुर में जितना यह चोखेराम का बच्चा है । इसकी हरदम नजर पैसे के लाभ पर रहती है । लाभ के लिये यह गधे को बाप बना सकता है, चमार को पंडित कह सकता है और पंडित को चमार बना सकता है ।”

“इसमें क्या शक है ।” पंडित संकटमोचन बोले । “इसी मन्दिर से मुझे निकाल-फेंकने के लाला ने क्या-क्या जाल नहीं रचे ? लेकिन देवी की कृपा से इसे हर बार मुँह की ही खानी पड़ी ।”

“इसमें क्या शक है पंडित !” दरोगा जी बोले और उन्हें जाने क्या बात याद आ गई कि वह तुरंत खड़े होकर गाँव की ओर चल पड़े । पंडित संकटमोचन से कह गये, “अच्छा अब मैं चला पंडित । कल इसी समय मिलूँगा ।”

पंडित संकटमोचन मुस्कराकर बोले, “जाओ, जाओ ! हम क्या नहीं जानते ? सुलफई यार किसके,

दम लगाया खिसके ।”

चलते समय दोनों एक दूसरे की ओर देख कर मुस्करा रहे थे ।

: ७० :

विद्यासागर की माँ घर पहुँची तो सागर शहर से आया हुआ मिला उसे । अपने लाल की हज़ार बलायें लीं और देवी के प्रसाद की बरफ़ी का एक छोटा-सा टुकड़ा उसके हाथ में देती हुई बोली, “बेटा देवी का प्रसाद लो, देवी तुझ पे भौत खुस हैं । पंडित संकटमोचन कू दरसन देकें कह गई है अक वाका रच्छा का हाथ सदा तेरे सिर पे रहेगा । ”

विद्यासागर ने बरफ़ी का टुकड़ा अपने मुँह में रखकर अपनी सीधी-सादी माँ की कौली भरकर कहा, “माँ, तू देवी की पूजा अपने घर में ही कर लिया कर । मैं इन पंडे-पुजारियों में विश्वास नहीं रखता । इन लोगों का काम सीधे-सादे आदमियों को ठगना है । जो इनके पास जाता है उससे उसी के जैसी बातें बना कर ये उसे विमोहित कर लेते हैं ।”

विद्यासागर अपनी बात कह गया । उसकी माँ अपना काम कर आई । दोनों पर एक-दूसरे के काम और बातों का कोई प्रभाव नहीं हुआ । दोनों अपने-अपने काम पर लग गये ।

विद्यासागर को गाँव में आने में देर हो गई थी क्योंकि वह रेलवे स्टेशन से कनकू, भूमन और रामोतह के साथ सीधा थाने चला गया था ।

लता का आदमी आया और उसने कहा, “कुमारी जी ने आपको याद किया ।”

“अभी आया ।” विद्यासागर ने कहा ।

“रोटी खाय कं जँयो बेटा ! गाम में हुसियारी सँ जँयो । बरोगा तेरे फिराक में चक्कर लगाय रह्या है । मैं जानूँ कुछ देवी-देवतान की पूजा भी जरूर करी है वाने तेरे खिलाफ ।” माँ ने कहा !

“हाँ, हाँ खाना खाकर ही जाऊँगा। चमेली रोटी ले आ मेरे लिये।” और फिर माँ की और देख कर बोला, “माँ तू मेरी फिकर न किया कर। बरोगा जी जो कहते या करते हैं उन्हें कहने और करने दे। वह मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मैंने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा, फिर मेरा कोई क्यों कुछ बिगाड़ेगा?”

चमेली खाना ले आई। मकी की रोटी और मेथी का साग। यहीं था भोजन उसका। विद्यासागर को यह भोजन बहुत पसंद था। बड़ी ही रुचि के साथ उसने खाया और कभी-कभी बीच में हरी मिर्च भी कुतर ली।

खाना खाकर विद्यासागर सीधा चौधरी रूपसिंह की हवेली पर पहुँचा। चौधरी रूपसिंह दीवानखाने में तख्त पर गाऊ तकिये से कमर लगाये बैठे थे। उनके पास ही उनकी पत्नी सरूपरानी बैठी थीं। लता आरामकुर्सी पर थी।

विद्यासागर ने दीवानखाने में प्रवेश किया तो लता ने खड़ी होकर उसे नमस्कार किया और विद्यासागर ने चौधरी रूपसिंह और सरूपरानी को।

“नमस्कार बेटा!” चौधरी रूपसिंह बोले। “बड़ी देर हो गई तुम्हें रेलवे स्टेशन से गांव तक आने में! क्या कारण हुआ देर का सागर?”

सागर ने पूरा किस्सा बयान करके कहा, आपको खुश-खबरी देता हूँ कि जो नये थानेदार आ रहे हैं अपने इलाके में वह भी धीरसिंह जी की ही भाँति ईमानदार, तरक्की-पसंद और घूसखोरी के शत्रु हैं। हमारे इलाके में जो सुरक्षा का वातावरण थानेदार धीरसिंह ने पैदा किया है वह उनका संरक्षण पाकर और भी स्थायी और व्यापक बनेगा।”

लता बोली, “दो दिन में इतना उलट-फेर हो जायगा विद्यासागर जी, यह शहर जाते समय बिबित नहीं था। ताऊ बारोगा जी ने इधर ग्रामीण वातावरण में काफी बे सिर-पंर की अफ़वाहें उड़ाई हुई हैं।



पिता जी के पास आकर कहा—“नये थानेदार के आते ही सागर को हवालात में बन्दान कराया तो मेरा नाम भी दरोगा नहीं। हमारे मुनीम जी भी उसके चक्कर में फँस ही गये हैं।”

विद्यासागर मुस्करा कर बोला, “मुझे मालूम है यह सब आपके पंडित संकटमोचन की कारस्तानी हैं। वह देवी के मन्दिर में बैठे-बैठे ही पूरे गांव को मंत्र देते रहते हैं और ग्रंथविश्वासी लोग उनके चक्कर में फँस जाते हैं।”

स्वरूपरानी ने पूछा, “तो तुम्हें विश्वास है सागर कि नये थानेदार दरोगा जी के पुराने यार नहीं हैं?”

यह सुनकर विद्यासागर को हँसी आ गई। वह बोला, “तो दरोगा जी ने लोगों को यह भांसा भी दे रखा है कि आने वाले थानेदार उनके पुराने मित्र हैं?”

“यही तो सबसे बड़ा भांसा है देहात में। गरीब लोग हानि से भयभीत हो उठते हैं। पुलिस का तहत आज भी ज्यों-का-त्यों बना हुआ है सागर। अंग्रेजी राज से आज तक कोई विशेष तबदीली नहीं हुई है। रिश्वतें ज्यों-का-त्यों चलती हैं। चोरों और जुग्रा खेलने वालों के अड्डे ज्यों-के-त्यों पुलिस के संरक्षण में चल रहे हैं। थानेदार धीरे-धीरे ने बेशक कुछ उनकी सफाई की लेकिन अगर फिर कोई रिश्वती थानेदार आ गया तो वे बीमारियाँ फिर जाग उठेंगी।” लता बोली।

विद्यासागर ने मुस्कराकर कहा, “सब ठीक है लता, जो कुछ तुमने कहा। अविद्या-ग्रस्त लोकतंत्रीय शासन में जो कुछ हो रहा है इससे अधिक आशा नहीं की जा सकती और फिर हर चीज के लिए सरकार का मुँह ताकना भी गलती की बात है। हमें अपनी सुरक्षा स्वयं करनी है और अपने अन्दर फँसी हुई फूट को सहयोग और सद्भावना में बदलना है। पारस्परिक सहयोग और सद्भावना आने पर ये बीमारियाँ स्वयं जाती रहेंगी। ये सब रण समाज की बीमारियाँ

हैं, स्वस्थ समाज की नहीं; अचेतन समाज की हैं चेतन समाज की नहीं।”

विद्यासागर की बात का चौधरी रूपसिंह पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। सरूपरानी भी यह बात सुनकर मुग्ध हो गई।

लता सोचती ही रही बहुत देर तक कि जमालपुर गांव में राम-भगत के घर इस महान् आत्मा ने कैसे जन्म लिया? उसका विचार धीरे-धीरे अपने साहित्य के ज्ञान में प्रविष्ट हो गया और उसके सामने संत-कवि कबीर की सौम्य-मूर्ति आकर खड़ी हो गई। वह कबीर जिसने जात-पात के बंधनों से मानव को मुक्ति का संदेश दिया।

: ७१ :

गांव का वातावरण झूठी अफ़वाहें फैलाकर दरोगाजी ने विचित्र सा बना दिया था। जिस किसी की भी दृष्टि विद्यासागर पर पड़ती थी उसे ही उस पर दया आती थी; क्योंकि गांव का कोई भी आदमी चाहे उसका मित्र न हो, परन्तु शत्रु भी नहीं था। सब भयभीत थे कि नये थानेदार के आने पर दरोगा जी जाने विद्यासागर की हवालात में बंद कराके क्या-क्या दुर्बंशा करायेंगे।

लता और विद्यासागर दीवानखाने से निकलकर दूधशाला की ओर चले तो हर गांव वाले की करुण-दृष्टि उसके चेहरे पर पड़ती थी परन्तु दरोगा जी के भय से कोई कुछ कह नहीं पाता था, कोई कुछ पूछ नहीं सकता था।

उनके चेहरों की उदासी को पढ़ लेने में विद्यासागर को देर नहीं लगी, परन्तु बोला वह एक शब्द भी नहीं। सीधा लता के साथ दूधशाला की ओर बढ़ता गया।

चौधरी रूपसिंह की नई और पुरानी हवेली के बीच में गांव की चौपाल पड़ती थी। विद्यासागर ने दूर से ही देखा कि आज उस पर आठ-दस बड़ी-बड़ी खाटें पड़ी हुई थीं और उन पर गांव के चौधरी

लोग बैठे थे। दरोगा जी सबके बीच में विराजमान थे और ठाठ के साथ हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे।

विद्यासागर लता से बोला, “तुम्हारे ताऊ दरोगा जी ने गाँव की पंचायत जुटाई हुई है और लाला चोखेराम भी बैठे हैं उनकी बगल में।”

“बैठे तो हैं।” मुस्कराकर लता ने कहा ! “कोई नया गुल खिलाने की बात सोच रहे होंगे।”

लता और विद्यासागर ज्यों ही चौपाल के पास पहुँचे तो दरोगाजी ने कड़ाकेदार आवाज से पुकारा, “सागर ?”

विद्यासागर ठहर गया। लता भी खड़ी हो गई।

दरोगा जी लाला चोखेराम को गर्दन से पकड़कर चबूतरे की मुँडेरों के पास लाकर बोले, “तुमने इनसे कोई कागज लिखाया है ?”

विद्यासागर ने निर्भीकता पूर्वक कहा, “लिखाया है।”

दरोगा जी ने पूछा, “क्यों ?”

“आपका मतलब ? होते कौन हैं आप यह पूछने वाले ?” त्योरी चढ़ाकर विद्यासागर ने कहा।

जिस समय विद्यासागर ने यह कहा तो उसके रूप में निखार आ गया। उसका सीना उभार खा गया और उसके भुजबंद फड़कने लगे। उसकी त्योरी में बल था। उसकी कमर-सतर थी और वह पूरी मुस्तैदी के साथ डटकर खड़ा था। मानो चौधरी लोगों की पूरी पंचायत को चुनौती दे रहा था कि—‘मैंने जो कुछ किया है ठीक किया है, और तुम लोगों को उसमें हस्ताक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं। अपने मार्ग पर चलो तुम और मुझे अपने मार्ग पर चलने दो। मेरा मार्ग रोकने का प्रयत्न न करो।’

विद्यासागर का यह उत्तर पाकर दरोगा जी की खोपड़ी भन्ना उठी। उनके क्रोध का पारावार न रहा। गाँव के एक कमीन जुलाहे का बेटा उनके सामने सीना तानकर इस तरह जबाँदराजी करे और वह

देखते भर रहें। खून का घूँट पीकर वह बोले, “एक भोले-भाले आदमी को मूर्ख बनाकर तुमने जो कुछ लिखा लिया है वह उस पर कोई पाबंदी नहीं है।”

दरोगा जी के मुँह से लाला चोखेराम को भोला-भाला आदमी सुनकर लता मुस्कराती हुई बोली, “ताऊजी, ताऊ मुनीमजी भोले-भाले कब से हो गये ? आप तो पिता जी और बाबा जी से सर्वदा यही कहते रहे हैं कि लाला चोखे राम बड़ा चालबाज, धोखेबाज और मक्कार आदमी है। इसे मुनीमगीरी से एक दम अलग कर देना चाहिए।”

लता की बात सुनकर चौपाल पर बैठे और लोगों को भी हँसी आ गई।

लता ने आगे बढ़कर लाला चोखेराम से पूछा, “क्यों ताऊजी ! क्या आप वास्तव में ऐसे ही भोले-भाले मूर्ख हो जैसा आपको ताऊ दरोगा जी बतला रहे हैं ?”

इसी दौरान में किसी ने इस चौपाल पर चलने वाली बात की सूचना जाकर रामसिंह को दे दी और उसने यहाँ तक कह दिया कि चौपाल पर चौधरी लोगों ने विद्यासागर को घेर लिया है।

फिर क्या था। बात-की-बात में भ्रमन पहलवान की लाठी उठ गई और कनकू भी उससे पीछे रहने वाला नहीं था। आठ-दस जवानों के साथ रामसिंह, भ्रमन और कनकू चौपाल के नीचे, जहाँ विद्यासागर और लता खड़े थे, पहुँच गये।

इनकी शकलें देखकर दरोगा जी का उबाल खाता हुआ मस्तिष्क ठंडा पड़ने लगा और उनकी ज़बान की तेजी में भी कुछ नमी आई।

विद्यासागर बोला, “क्यों लाला चोखेराम जी ! क्या आपसे वह कागज़ खबरबस्ती लिखाया गया था ? क्या आपने स्वयं शहर में जाकर उस पर हस्ताक्षर नहीं किये थे ?”

रामसिंह, भ्रमन और कनकू को सामने खड़े देखकर लाला चोखे-

राम का बदन पसीना-पसीना हो गया। उनकी बन्द जबान से केवल इतना निकला, “किये थे।”

“जबरदस्ती तो नहीं की किसी ने ?” लता ने पूछा।

“नहीं।” लाला चोखेराम ने कहा।

विद्यासागर जोर से खिल-खिलाकर हँस पड़ा और दारोगा जी की ओर तिरछी दृष्टि से देखकर बोला, “आपका तो मोहरा ही निकल गया आपके हाथ से, अब क्या शतरंज खेलेंगे आप ? जिधर भी चाल चलोगे, मात खानी होगी।”

दारोगा जो ने अपनी भैंस उतारने को लाला चोखेराम को ठीक चौपाल पर खड़ा करके सबके सामने हजार गालियाँ सुनाईं। अपनी पूरी पुलिस की नौकरो के अरसे में जितना भी बड़ा गालियों का शब्द-कोष उन्होंने कंठस्थ किया था वह पूरा-का-पूरा पूरे-के-पूरे जोश और रौब दाब के साथ खाली कर दिया।

लाला चोखेराम ने भी उन्हें ऐसे सहन किया, मानो किसी नेता या देवता पर फूलों की वर्षा हो रही हो।

सबके देखते-ही-देखते चौपाल पर केवल दारोगाजी और लाला चोखेराम खड़े रह गये और चौपाल के सामने रास्ते में लता और विद्यासागर के पीछे चुपचाप रामसिंह, भूमन, कनकू और उनके अन्य पाँच-चार साथी रह गये। चौपाल पर बैठे चौधरी लोग एक-एक करके नौ-बो-ग्यारह हो गये।

विद्यासागर मुस्कराकर दारोगाजी से बोला, “पंचायत तो उठ गई आपकी दारोगाजी ! अब फंसले की कोई दूसरी तारीख लगाइये।” और फिर लाला चोखेराम की ओर मुँह करके कहा, “लाला चोखेराम जी दूसरों की अबल पर चलकर कितने दिन जिन्दा रहेंगे आप ? जिस अक्ल का इस्तेमाल आपने चौधरी रूपसिंह की जायदाद में से नौच-नौचक अपनी जायदाद खड़ी करने में किया है उससे एकदम कैसे सम्बन्ध-विच्छेद

कर लिया। मैं तो भूल से आपको एक अक्लमन्द आदमी समझ बैठा था।”

विद्यासागर की बात सुनकर लता को हँसी आ गई और दरोगाजी कुढ़ते हुए एक ओर को चल दिये; परन्तु लाला चोखेराम तब भी नीची गर्दन किये चबूतरे पर सामने खड़े रहे।

विद्यासागर फिर बोला, “आपके साथ कोई धोखा नहीं किया गया सेठ जी ! उस कागज के टुकड़े को लेने के लिए आप दरोगाजी के षड-यंत्र में शामिल हुए, सोच कर देखिये, आपने कितना गिरा हुआ कार्य किया। ये ज़मीनें जिनके चारों ओर आप लोग साँपों की तरह कुँडल मारे बैठे हैं, आपकी नहीं हैं। ये राष्ट्र की सम्पत्ति हैं और इन पर केवल उन्हीं का अधिकार होगा जो इन पर काम करेगा। तुम्हारा कागज मैं अभी मंगाकर तुम्हारे सामने फाड़ देता हूँ।”

लाला चोखेराम शर्म से गड़े जा रहे थे। अपनी भूल पर उन्हें रह-रह कर पछतावा हो रहा था कि क्यों वह फिर से दरोगाजी के चक्कर में आ गये।

लता उनकी दशा देखकर हँसती हुई बोली, “ताऊजी, आप जितने चालाक हैं उतने ही सीधे भी हैं। दरोगाजी को आपकी लहलहाती हुई खेती को देखकर हसद होती है, ज़रा उनके और अपने खेतों पर दृष्टि फेंकाकर देखिये। आपके खेतों की फ़सलें रामसिंह, भूमन और कनकू ताऊ की मेहनत का फल हैं। फिर उन्हें इनका हिस्सा देने में आपका जी क्यों दूटता है ? अब जब फ़सल कटने का समय आया है तो आपके मन में बेईमानी सवार होने लगी है। परन्तु यह समझ लो कि अब बेईमानी तुमसे करते न बन सकेगी। अपने हिस्से से अधिक एक दाना भी नहीं पाओगे तुम।”

कहकर लता बूधशाला की ओर चल दी। साथ में विद्यासागर और पीछे-पीछे रामसिंह, भूमन और कनकू तथा उनके अन्य सब साथी थे।

: ७२ :

दूधशाला को विद्यासागर और लता ने जाकर देखा तो दोनों की आत्मा प्रसन्न हो गई। संध्या को चौधरी रूपसिंह और सरूपरानी ने भी आकर दूधशाला को देखा।

चौधरी रूपसिंह बोले, “इस ग्रहाते का तुमने बहुत अच्छा उपयोग किया लता !” और फिर भस्मन की ओर मुँह करके पूछा, “कुल कितने जानवर हैं तुम्हारी दूधशाला में भस्मन !”

भस्मन ने नीची हो गर्दन किये उत्तर दिया, “पचास भैंसें और सौ गायें ।”

भस्मन की बात सुनकर चौधरी रूपसिंह मुस्कराकर बोले, “पिता जी कहा करते थे कि किसी जमाने में हमारे यहाँ दो-सौ गाय और सौ भैंसें रहती थीं। सो कम-से-कम उतनी तो हो ही जानी चाहिए तुम्हारी दूधशाला में ।”

विद्यासागर बोला, “आपका आशीर्वाद सिर पर रहा तो बहुत जल्द यह दूधशाला उन्नति करेगी और इसमें सौ भैंसें और दो सौ गायें हो जायेंगी ।”

चौधरी रूपसिंह ने अपने पुराने बाग के जंगल में इस दूधशाला को जानवरों को चराने की आज्ञा दे दी। विद्यासागर ने इसके लिए उन्हें सबकी ओर से हार्दिक धन्यवाद दिया।

: ७३ :

आज से ठीक दस दिन पश्चात् जमालपुर की दूधशाला का उद्घाटन समारोह हुआ। उद्घाटन मनोरमा देवी के द्वारा हुआ।

समारोह के अवसर पर धाने के नये थानेदार वीरेन्द्रकुमार भी आये।

जमालपुर में यह समारोह अपने ढंग का निराला ही समारोह था।

उसमें सम्मिलित होने के लिए आस-पास के गांवों के बहुत से लोग आये और सभी ने इस कार्य की सराहना की।

उद्घाटन के समय विद्यासागर बोला, “आज के समारोह में जिन-जिन महानुभावों ने आकर सहयोग प्रदान किया है, हम सब उनके हृदय से आभारी हैं। परन्तु इससे भी बड़ा आभार आप सब महानुभावों का हमारे ऊपर तब होगा जब आप लोग अपने-अपने गांवों में भी इसी प्रकार की सम्मिलित दूधशालायें स्थापित करेंगे।”

विद्यासागर के पश्चात् शीला ने मंच पर खड़ी होकर कहा, “जमालपुर की दूधशाला ने देश के सम्मुख जो आदर्श उपस्थित किया है उससे एक नये प्रकार से सहयोगी उद्योग को आगे बढ़ाने का उदाहरण सामने आया है।

यह दूधशाला आपके गांव को दूध और घी के साथ-साथ धन भी देगी और आपके बहुत से साथियों को काम पर लगायेगी। बहुत सी स्त्रियों को काम मिलेगा और पूरे गांव भर को मुक्त मट्ठा मिल सकेगी।

इसके सहयोग से हम अपने नगरों के दूध-तेन्दों को चलायेंगे और उनके द्वारा नगर-निवासियों को भी शुद्ध घी-दूध देने की व्यवस्था होगी।”

अन्त में मनोरमा देवी ने कहा, “जमालपुर-वासियों के लिए यह सौभाग्य की बात है कि उनके बीच ‘भारतीय सहयोग समिति’ के प्रधान मंत्री श्री विद्यासागरजी कार्य कर रहे हैं। आपके अनयक परिश्रम के फलस्वरूप जमालपुर जैसी बारह दूधशालायें आपके जिले के बारह गांवों में स्थापित हो चुकी हैं।

मुझे पूर्ण आशा है कि आप सब इस महान् कार्य को अपना पूरा-पूरा सहयोग प्रदान करेंगे और अपने गांव की आर्थिक दशा को सुधारने की दिशा में किये गये इस प्रयत्न में पूरी कर्मठता से भाग लेंगे।”

आज का समारोह बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया गया। सभी लोग



सम्मिलित हुए परन्तु दरोगाजी नहीं आये। लाला चोखेराम, पंडित संकटमोचन, चौधरी रूपसिंह और उनकी धर्मपत्नी सरूपरानी मंच पर विराजमान थे। थानेदार वीरेन्द्रकुमार भी उन्हीं के पास बैठे थे।

समारोह के पश्चात् मनोरमा और शीला ने वापस लौटने का आग्रह किया परन्तु लता ने उसकी एक बात भी न मानी और बोली, “शहर वालों को गाँव में रहकर देखना चाहिए कि यहाँ लोग-बाग कैसे जीवन बसर करते हैं ? केवल दूधशाला के समारोह का उद्घाटन भर कर देने से मैं आपको छुट्टी नहीं दे सकती।”

बात लता ने इतनी अधिकारपूर्ण कहीं कि शीला और मनोरमा नगर लौटने का अधिक आग्रह न कर सकीं।

सरूपरानी आगे बढ़कर बोली, “आज ठहर जाओ बेटा ! कल चली जाना। लता का मन भी रह जायगा।”

“लता कुमारी का मन भी रह जायगा और इससे भी बड़ा काम जो यहाँ की दशा का परीक्षण करने का है, वह भी पूरा हो जायगा।” विद्यासागर ने कहा, “अभी आप लौट ही कैसे सकती हैं ? यहाँ आपको बहुत सी दावतें मिलेंगी। एक दावत कुमारी जी की है, एक लाला चोखेराम की होगी, एक रामसिंह, कनकू और भूमन पहलवान की और एक मुझे विश्वास है कि हमारे थाने के नये थानेदार कुंवर वीरेन्द्रकुमार जी आपको देंगे।” कहकर विद्यासागर ने सब की ओर देखा तो सब के चेहरे खिल उठे। सभी ने विद्यासागर के प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

थानेदार वीरेन्द्रकुमार बोले, “यहाँ से शहर जाते समय आपकी कार ठीक हमारे थाने के सामने से निकलेगी। मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी यदि कल प्रातःकाल आप जलपान मेरे यहाँ करें।”

मनोरमा ने मुस्कराते हुए स्वीकृति दे दी।

संध्या की दावत उन्होंने रामसिंह, भूमन और कनकू की स्वीकार की।

लाला चोखेराम अब किस समय दावत दें। वह दीन-भाव से बोले, “अतिथियों को दावत देने के सब समय तो आप लोगों ने घेर लिये। अब मैं भला किस समय के लिए आमंत्रित करूँ ?”

लाला चोखेराम की बात सुनकर शीला मुस्कराकर बोली, “आप दावत का कष्ट न करें केवल एक पान खिला दीजियेगा मुझे सेठानी जी के हाथ का लगा हुआ। आपने तारीफ़ की थी न उस दिन उनके हाथ के लगे पान की सो उसी दिन मैंने डायरी में नोट कर लिया था कि जमालपुर यदि जाना मिला तो सेठानी जी का पान मैं छोड़ने वाली नहीं।”

शीला की बात सुनकर सब लोग हँस पड़े। चौधरी रूपसिंह किसी प्रकार हँसी को रोककर बोले, “क्यों मुनीम जी, हमने क्या कसूर किया था जो आपने इस लाजवाब पान का हमसे कभी जिक्र भी नहीं किया।” और फिर रामसिंह की ओर मुँह करके मुस्कराते हुए पूछा, “क्यों भाई रामसिंह, तू ही बता क्या वाकई मुनीम जी की घरवाली का पान इतना बढ़िया होता है कि जिसने बेटा शीला को ललचा दिया ?”

रामसिंह चौधरी रूपसिंह की बात सुनकर कुछ लज्जा सा गया। उनकी बात में यह स्पष्ट ध्वनि थी कि रामसिंह ही उस पान के विषय में सही राय रख सकता है क्योंकि उसके ललवाइन से अच्छे सम्बन्ध हैं। वह चाहता नहीं था कोई भी उत्तर देना और मुस्कराकर चुप रह जाना ही चाहता था परन्तु ललवाइन के पान की सराहना हो और वह उसे न करे, यह बात भी उसके लिए कठिन थी। कितना आनन्द आता है उसे ललवाइन के हाथ का पान खाने में, यह वह बयान नहीं कर सकता।

उसने धीरे से गर्दन हिलाकर कहा, “यू सच है चौधरी साब अब पान जैसा सिठानी लगात हैं वैसा हमने अपनी जिन्दगी में और नाय ख़ाया।”

: ७४ :

मनोरमा और शीला को आज जमालपुर में ही ठहरना पड़ा। अधिक आग्रह वे नहीं कर सकती थीं जाने का।

ठहरने का प्रबन्ध चौधरी रूपसिंह के यहाँ ही रहा। संध्या की दावत में थानेदार वीरेन्द्रकुमार भी पधारे।

दावत पूर्ण-रूपेण भारतीय थी। मेज-कुर्सियों का जनाव नहीं था। आसन बिछे थे जूट के और फूल की थालियों में भोजन लगाया गया था।

थानेदार वीरेन्द्रकुमार और विद्यासागर बराबर-बराबर आसनों पर बैठे थे। विद्यासागर ने खाने का निवाला सटक कर पानी के गिलास से दो घूंट पानी पीकर थानेदार साहब की ओर देखकर कहा, “धीरसिंह जी आपकी बहुत प्रशंसा करते थे। वह कह गये हैं कि उनके अधूरे कामों को पूरा करने में आपका पूरा-पूरा सहयोग रहेगा।”

वीरेन्द्रकुमार बोले, “अवश्य रहेगा विद्यासागर जी ! आप निश्चित रहें। धीरसिंहजी मुझसे मिलकर गये हैं और यहाँ के पूरे इलाके के हालात मुझे समझाकर गये हैं। मैं सब पर निगाह रखूँगा।”

विद्यासागर के दिल में जो गाँव की ओर से एक बेचैनी सी पैदा हो गई थी वह आज वीरेन्द्रकुमार से बातें करके जाती रही। यों धीरसिंह जी ने उन्हें पूरा आश्वासन दे दिया था परन्तु अपनी स्थिति को पूर्णरूपेण दृढ़ उन्होंने आज ही समझा।

लता भोजन परस रही थी और चौधरी रूपसिंह सामने तो मूढ़े पर बैठे सबको भोजन करते देखकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे। लता की योग्यता पर इस समय उनका मन न्योछावर था। उनका मन गुलाब की तरह खिल रहा था।

परन्तु जब लता उनके मन को गुलाब की तरह खिलाती थी तो तभी उन्हें अपने बेटे निहालसिंह की स्मृति आकर बेचैन बना देती थी। उनके

चेहरे की मुस्कराहट पर उदासी छा जाती थी और मस्तिष्क में बेचनी की रेखाएँ खिच जाती थीं ।

सरूपरानी आज बहुत प्रसन्न थीं । अपने परिवार के सदस्यों को प्रसन्न देखकर उनका हृदय खिल रहा था और किसका नहीं खिल जाता ? वह भूम-भूम कर रसोई में इधर-उधर प्रबन्ध कराती फिर रही थीं । उम्र अधेड़ थी उनकी परन्तु—

खंडहर बता रहे थे,

इमारत बलन्द थी ।

लता साक्षात् अपनी माता का संक्षिप्त संस्करण थी, जिसमें सुन्दर तो सब कुछ था ही उनका ।

चौधरी रूपसिंह मूढ़े से खड़े होकर थानेदार बीरेन्द्रकुमार के सामने जाकर बोले, “आज यह चौक आप सबके आ जाने से जिन्दा-सा मालूम देने लगा है थानेदार साहब ! वरना तीन प्राणियों को तो यह खाने को दौड़ता है ।”

“इसमें कोई संदेह नहीं ।” बीरेन्द्रकुमार बोले ।

“परन्तु यह ऐसा ही उजाड़ नहीं था सर्वदा से थानेदार साहब ! एक दिन इसी चौक में पचास पलंग बिछते थे और उसी तरह साठ-सत्तर बाहर के चबूतरे पर……” कहते-कहते चौधरी रूपसिंह का गला रुँध गया । उनके नेत्र डबडबा आये ।

थानेदार बीरेन्द्रकुमार ने उनके चेहरे पर देखा और देखा कि बिछा-सागर, शीला और मनोरमा के नेत्र भी वहीं पर टिके थे ।

चौधरी रूपसिंह बोले, “बड़ी दर्दनाक कहानी है थानेदार साहब ! सत्तर-अस्सी लाख इसी हवेली से निकलती इन आँखों ने देखी हैं, इन कंधों ने उनका वजन संभाला है और जो बाकी बचे उन सब ने अपने अपने तवे-परात अलग-अलग कर लिये ।”

तभी लता गर्म-गर्म पूरियाँ डलिया में लिए तीव्र गति के साथ चली

आई और बिला पूछे एक-एक सबको परसती हुई कहती जा रही थी, “गर्मगर्म हैं। मना नहीं मुन्गी किसी की।”

सबने मुस्कराकर अपनी-अपनी फूली पूरी का पापड़ तोड़कर उसके अन्दर से गर्म भाप निकाली।

भोजन करके सब लोग दीवानखाने में आ गये।

तभी सबने देखा कि लाला चोखेराम एक थाल में पान लिए दीवान-खाने के बाहर खड़े थे।

शीला बोली, “पहला पान मैं खाऊँगी लाला चोखेराम जी, क्योंकि इन सब महोदयों को भी यह लाजवाब पान मेरी ही बंदीलत मिल रहा है। वरना आप तो इस रहस्य को किसी पर खोलने वाले नहीं थे।”

विद्यासागर हँसकर बोला, “मेरी राय में शीलादेवी को पान सबसे बाद में मिलना चाहिए, क्योंकि इन्होंने यह रहस्य हम सब लोगों पर खोलकर लाला जी का अपकार ही किया है। व्यर्थ हम लोगों का पान खाने का भार सेठ जी के सिर पर आ गया।”

“बात तो ठीक है विद्यासागर जी की।” थानेदार वीरेन्द्रकुमार जी बोले।

“जी हाँ।” मुँह बनाकर मुस्कराते हुए शीला बोली, “यह भी भला कोई बात हुई कि आपने केवल पुरुष होने के नाते विद्यासागर जी का पक्ष ले लिया।” और फिर लता और मनोरमा की ओर देखकर बोली, “जीजी मनोरमा, बहन लता आप लोग मेरे पक्ष को दृढ़ कीजिये। कहीं ऐसा न हो कि लाला भी अपनी जाति में मिलकर पहले पान उन्हें ही दे डालें।”

परन्तु लाला चोखेराम दीवानखाने के अन्दर प्रवेश न कर सके। बड़े ही साहस के साथ वह पानों का थाल लेकर चबूतरे पर चढ़े थे।

यह वही चबूतरा था जिस पर एक दिन वह मालिक की हैसियत से घूमा करते थे और वही दीवानखाता था जिसमें मसनद पर बैठकर वह लखनऊ-किस्म की कली पिया करते थे।

उन्हें वह दिन भी नहीं भूला था जब उन्होंने एक दिन चार-सौ बीस करके दो हजार रुपये का गोल-माल किया था और भस्मन पहलवान ने उन्हें धक्के देकर दीवानखाने से बाहर निकाल दिया, चबूतरे से नीचे उतार दिया था ।

लता दीवानखाने के बाहर लाला चोखेराम को पानों का थाल लिए संकोचवश अन्दर न आते देखकर पिछली सब घटना को समझकर बोली, “आइये ताऊजी ! ठहर क्यों गये आप ? आज आप पिताजी के मुनीमजी नहीं हैं । आज तो आप जमालपुर के सेठ हैं और मेरे पुराने ताऊजी, जिन्होंने मुझे गोद में खिलाया है । अब आपके इस दीवानखाने में प्रवेश करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है ।”

चौधरी रूपसिंह मुस्कराकर बोले, “आइये मुनीमजी, आइये । बाहर क्यों खड़े रह गये ?”

विद्यासागर ने लाला चोखेराम को झिझककर दीवानखाने में प्रवेश करते देख कर ला, चौधरी रूपसिंह और सरूपरानी के चेहरों पर देखा ।

भोजन के पश्चात् मनोरमा, शीला, लता और विद्यासागर चमारों की मंडैया की ओर गये । वहाँ भी इनके स्वागत के लिए आज पूरे ठाठ बाट के साथ तय्यारी की गई थी ।

मंडैया का एक-एक मकान और उसके बाहर का आंगन गुबरंटी से लिपा-पुता था । जिन स्थानों पर ये लोग अपने जानवरों को बांधते थे वह भी लीप-पोतकर साफ़ कर दिया था । दो दिन से पूरी मंडैया के मंद, औरत और बच्चे उसकी सफाई पर लगे थे ।

सब लोग जब गाँव के बीच से निकलकर जा रहे थे तो मार्ग में विद्यासागर का घर आया । विद्यासागर वहाँ ठहरकर बोला, “अपना पूरा गाँव आप सबको दिखाने से पूर्व आइये इस गरीब की झोंपड़ी में भी जरा देर के लिए ठहरिये ।”

शीला दककर बोली, “यह है आपका मकान ?”

तब तक चमेला भी दौड़कर घर पर आ गई थी। विद्यासागर बोला, “हां, यही है मेरा घर और यह है मेरी छोटी बहन चमेली जो हर बार तुम्हें बिना देखे भी नभस्कार कहकर भेजती है।” चमेली की ओर देखकर कहा, “और चमेली यह है शीला, जिनके मकान पर मैं शहर में ठहरता हूँ।”

चारों ने दुबारी में प्रवेश किया। दुबारी घूप की सुगन्धि से महक रही थी और उसके एक किनारे पर चार मिट्टी के गमले रखे थे, जिनमें गेंदे के फूल खिले हुए थे।

दुबारी की एक दीवार पर सरस्वती का चित्र टंगा था और ठीक उसके सामने एक मजदूर का चित्र; दोनों ही बहुत सुन्दर थे।

उन्हें देखकर मनोरमा बोली, “अपने पूरे कार्य की रूप-रेखा केवल दो चित्रों में समोदी तुमने विद्यासागर !”

“मेरे कार्य के प्रतीक तो हैं ही दोनों। मेरी प्रेरणा के स्रोत भी ये ही हैं मनोरमा जीजी !” विद्यासागर ने कहा।

दुबारी के अन्दर एक बड़ा चौक था जिसमें खड़ी का ताना पुरा हुआ था और रामभगत अपनी वही प्रिय पंक्ति—

भीरी भीनी बीनी चवरिया

काहे का ताना, काहे की बरनी.....

गुनगुनाता हुआ खड़ी ठोक रहा था। अपने काम-से-काम रखता था वह। भगवान् का भक्त था परन्तु मंदिर में कभी नहीं जाता था। अपनी खड़ी पर कपड़ा बुनता हुआ ही राम का नाम ले लेता था।

गांव में भी वह कभी किसी के पास नहीं जाता था। बहुत छोटा था वह तभी उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था और इसीलिए बचपन से ही घर चजाने की पूरी जिम्मेदारी उस पर आपड़ी थी। उसी दिन से उसने खड़ी का काम संभाल लिया था।

बाहर-भीतर के और सब काम रामभगत की स्त्री करती थी।

रामभगत तो केवल अपने राम और खड्डी के अतिरिक्त अन्य किसी को जानता ही नहीं था ।

अन्दर पहुँचकर विद्यासागर ने मनोरमा और शीला का अपने पिताजी और माताजी से परिचय कराते हुए कहा, “आप मेरे पिता हैं । पूरे कर्मयोगी । जिस खड्डी पर खड़े हैं इसके अतिरिक्त आपका अन्य संसार की किसी भी वस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं । इसी पर काम करते-करते अपने राम की भी रट लगाये रहते हैं । यानी दोनों काम साथ-साथ चलते जाते हैं ।

और यह हैं हमारी माताजी जिनकी बबूलत यह गृहस्थी चल रही है । पूरा भार इन्हीं के कंधों पर है और यही अन्दर-बाहर का सब काम चलाती हैं ।”

मनोरमा देवी ने रामभगत और उसकी स्त्री को सादर प्रणाम किया और बड़ी श्रद्धा के साथ बोलीं, “पिताजी, आपको भगवान् ने आपके परिश्रम और भक्ति का जितना मूल्यवान फल दिया है वंसा देवताओं को भी दुर्लभ है । विद्यासागर जैसा पुत्र देकर उसने आपको ही नहीं आपके गाँव, बेहात और हमारे पूरे देश को एक अमूल्य व्यक्तित्व प्रदान किया है ।”

रामभगत बोला, “बेटी, बैठ जाओ खटिया पर ।”

सब लोग खटिया पर बैठ गये ।

रामभगत भी उकड़ू जमीन पर बैठ गया उनके सामने । और फिर पूछा, “बेटी सच-सच बताना मैं हमारा गाँव अच्छा लगा या अपना सहर । सागर की माँ और चमेली का मन सहर में रहता है और मेरा मन गाँव में । जमालपुर से बाहर जावन कू मन ही नहीं होता ।”

रामभगत की बात सुनकर शीला बोली, “आपका गाँव मुझे बहुत पसंद आया पिताजी ! परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि शहर बुरा और गाँव अच्छा है । दोनों अच्छे और दोनों बुरे हो सकते हैं । गाँव या शहर का अच्छा या बुरा होना उनके रहने वालों पर निर्भर करता



है। और फिर यदि उन्नति करनी है तो एक ही जगह पड़े रहकर ऊपर नहीं उठा जा सकता। उसके लिए दौड़-घूँप करनी ही होगी।”

शीला की बात सुनकर रामभगत मुस्कराया और बड़े स्नेह से बोला, “भोली बिटिया, जिसे तुम उन्नति कहत हो वह तो सब सुपन है। उन्नति महल, मकान, जायदाद, सोना, चांदी और कपड़ों की नहीं होती। उन्नति तौ अपने मन की होती है बेटो ! और उसके लिए दौड़-भाग दरकार नहीं।”

रामभगत ने अपने घर-आये अतिथियों से एक ज्ञान की बात कही और उन सबने भी उसे सुनकर उत्तर देना ग़लत समझा। ऐसी ज्ञान की बात कहकर रामभगत की आत्मा खिल उठती थी।

सागर की मां भी अपने घर इन अतिथियों को देखकर फूली नहीं समा रही थी। अपने सागर की बदौलत ही तो उसने यह दिन देखा था कि इतने बड़े-बड़े आदमी उसके घर पर आये थे।

सागर की मां ने मकी की रोटी का चूरमा दूध में भिगोकर रखा हुआ था अतिथियों के लिए। वह उसने चार कटोरियों में कर दिया और चमेली उन कटोरियों को थाल में रखकर लाई।

मनोरमा ने एक चम्मच भरकर खाई तो बहुत स्वादिष्ट लगा। प्रसन्न होकर उसने सागर की मां से पूछा, “यह क्या चीज़ है माता जी ? मैं अपने जीवन में इसे प्रथम बार खा रही हूँ।”

“हम तो याय चूरमा कहत हैं बिटिया ! मकई की रोटी कू दूध में मींड़ के बनावत हैं याय और फिर वामें सक्कर, गुड़ या चीनी गेर देत हैं।” विद्यासागर की मां ने कहा।

चमेली बोली, “आपको पसंद आया मकई का चूरमा ? कहे तो एक-एक कटोरी और ले आऊँ।”

“ज़रूर लाओ चमेली !” शीला बोली, “बहुत ही बढ़िया बना है, सच ! बड़ा मजा आया।” और फिर विद्यासागर की मां की ओर देखकर बोली, “मेरे लिए आप कल सुबह भी यही बनाना माताजी !

मैं यहीं पर नाशता करके जाऊँगी। और ज़रा अधिक बनाना जिससे मैं थोड़ी सी शहर भी लेती जाऊँ। वहाँ माता जी पूछेंगी कि मैं गाँव से क्या लाई उनके लिए ? मैं कहूँगी कि जो चीज़ मुझे सबसे अधिक स्वादिष्ट लगी, वही लाई हूँ।”

शीला की बात सुनकर सबको बहुत आनंद आया। चमेली ने एक कटोरी दूध में भीगा चूरमा लाकर दिया और शीला ने उसे खूब आँखें मटका-मटका कर खाया।

मनोरमा ने खड़ी होकर रामभगत की कपड़ा बुनने की खड़ी देखी। पूरा घर भर देखा। चमेली को प्यार से दुलारती हुई बोली, “तेरा शहर में रहने को मन करता है चमेली।”

“करता तो है।” चमेली ने धीमे स्वर में कहा।

“तो कल चल तू मेरे साथ।” मनोरमा बोली।

“बापू और मां कह दें तभी तो।” चमेली बोली।

“कह देंगे वे तो, मैं कहूँ और वे मना कर दें यह कभी सम्भव नहीं है।” मनोरमा बोली और उसने तुरन्त रामभगत के सामने आकर कहा, “पिताजी, मैं चमेली को अपने साथ शहर ले जाऊँगी। मुझे यह देख कर अच्छा नहीं लगा कि विद्यासागर जैसे विद्वान् की बहन चमेली बिना पढ़ी-लिखी रहे। आपकी और माता जी की पीढ़ी तो अविद्या में समाप्त हो चुकी, परन्तु भविष्य में आज के अपढ़ लोगों की क्या गति होगी, इसे भगवान् ही जाने।”

मनोरमा ने यह बात इतनी गम्भीरतापूर्वक कही कि रामभगत नां नहीं कर सका।

बोला, “अच्छा बेटा, तुम जैसा ठीक समझो। हम दोनों का यूही सहारा ही गाँव में। हमारे इस सहारे कू भी अगर तम ले जाना चाहती हो और इसी में याकी भलाई समझती हो तो हमें इंकार नहीं।”

चमेली की मां और विद्यासागर के तो मानो होठ ही सिल गये थे इस समय।

: ७६ :

विद्यासागर के मकान से चलकर चारों-के-चारों चमारों की मंडैया में पहुँचे । रामसिंह, कनकू और भूमन मंडैया के बाहर ही खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे । रनकू, भूनकू और उनके अन्य सब साथी भी आजर विवार की छुट्टी में गाँव आये हुए थे ।

ज्योंही ये लोग वहाँ पहुँचे तो उन बच्चों ने “माता जी नमस्ते, बहन जी नमस्ते, जीजी नमस्ते” की झड़ी लगा दी ।

शीला प्रसन्न होकर बोली, “अरे ! रनकू, भुनकू तुम लोग भी आज यहीं पर हो । रविवार की छुट्टी में आये हो, क्यों ?”

“जी, जीजी जी !” रनकू बोला ।

और तभी भुनकू ने आगे बढ़कर शीला और मनोरमा के गले में पुष्प-मालायें डालीं । मंडैया के रहने वालों ने मनोरमा और शीला का स्वागत किया । फूलों की वर्षा की उन पर और अपना हार्दिक स्नेह उडेल दिया । मंडैया का जनबच्चा सागर की लहरों के समान अपने अतिथियों के दर्शनार्थ वहाँ आया ।

पूरी मंडैया को देखकर लता ने विद्यासागर से कहा, “सफाई में तो कमाल कर दिया इन लोगों ने । ज़रा इनके मकानों को देखिये और फिन अपने को बड़ी जात कहने वालों के मकानों पर दृष्टि डालिये । दोनों को देखने से नीच और ऊँच का पता चल जायगा ।”

“जानवरों के वहाँ से हट जाने से सफ़ाई बहुत अच्छी हो गई कुमारी जी !” विद्यासागर बोला ।

“यह ठीक है आपका कहना, परन्तु मेहनत भी कम नहीं की है इन लोगों ने ।” लता बोली ।

मंडैया की सफ़ाई को देखकर मनोरमा मुग्ध हो गई । और वह झलती-चलती एक भोंपड़ी के सामने बने चबूतरे पर खड़ी होकर बोली, “विद्यासागर जी, यदि आपके बारह के बारह साथियों ने अपने-अपने

गांवों में यही कुछ परिवर्तन किया होगा, जो आपने किया है तो मुझे किंचित मात्र भी संदेह नहीं कि आपका चौथा रास्ता देश को एक नई दिशा देगा, एक नया मार्ग सुझायेगा।”

शीला मुस्कराकर बोली, “सुझायेगा क्या जीजी ! सुझा रहा है कहो। इतना लम्बा रास्ता तै करके आ चुकी हैं आप, फिर भी “यदि” के प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ी आपको। उजागरसिंह जैसे हमारे साथी हैं। क्रांति के परवाने समझिये उन्हें। एक-से-एक लगन का साथी है हमारा। आप जहाँ भी पहुँचेंगी, कार्य आपको आशा से अधिक ही मिलेगा।

शीला और मनोरमा मंडैया के बच्चों में खेलीं, औरतों में हिल-मिल कर बैठीं, बातें कीं उनके जीवन को समझा और फिर पुरुषों की आर्थिक व्यवस्था का अनुमान लगाया।

पूरे गाँव की व्यवस्था को देखकर मनोरमा ने कहा, “बिद्यासागर जी, गाँव का उद्धार बिला कुटीर-उद्योगों के होना सम्भव नहीं।”

“मैं सहमत हूँ इससे परन्तु अभी दशा कुटीर उद्योगों से भी नीचे स्तर की है हमारे ग्रामवासियों की। इसलिए जो कुछ उनके पास है पहले उसी के सहारे इनके पैरों को मजबूत बनाना होगा और फिर धीरे-धीरे अपनी और सरकारी सहयोग की पूंजी से कुटीर-उद्योगों का विकास करना होगा।” बिद्यासागर ने कहा।

“इसमें कोई संदेह नहीं कि कुटीर उद्योगों का विकास ही हमारे ग्राम और देश में स्वर्ण-युग की स्थापना करेगा।” लता ने कहा।

अतिथियों के सम्मान में मंडैया के लोगों ने आज गाने-बजाने का भी प्रबन्ध किया था। चारों ओर घूमने के पश्चात् सब लोग उस्ताद भूमन के घर पर पहुँचे। वहाँ एक लम्बा-चौड़ा पल्लू बिछा हुआ था और एक तरफ चार कुर्सियाँ भी पड़ी थीं।

रामसिंह कुर्सियों की ओर संकेत करके बोला, “यहाँ बैठिये आप।” मनोरमा हँसकर जमीन के बिछावन पर बैठती हुई बोली, “ये

कुर्सियाँ यहाँ से हटा दो रामसिंह और अपना गाने-बजाने का प्रोग्राम आरम्भ करो। आज सबेरे से थक गई हूँ मैं गम्भीर बातें करता करता। अब ज़रा आप लोगों के बीच बैठकर गा-बजा लें तो दिन भर की थकान दूर हो जाय।”

भांऊ, मंजीरा, ढोल और हारमोनियम के बाजे थे। सबसे पहले होली का राग अलापा गया। कनकू ने वह रसीली होली सुनाई कि आनंद आ गया। वह मस्ती में झूम कर गा उठा—

होली आई रे कान्हा ब्रज के बसिया।

होली के पश्चात् आल्हा का रूप बना। बेला और मछला के डोलों का श्रृंगारपूर्ण राग और फिर आल्हा-ऊदल की वीरता का वर्णन रंगीले स्वर के साथ आल्हा गाने वालों ने गाया।

गायन के पश्चात् नृत्य भी हुआ। यह आमोद-प्रमोद का प्रोग्राम बिल्कुल ग्रामीण था परन्तु था बहुत ही स्वस्थ। रात के बारह बजे तक यह सब चलता रहा और जब आरम्भ हो गया तो गाँव का जन-बच्चा इधर सिकर आया।

लाला चोखेराम भी अपने को न रोक सके। लाख लालवाइन ने मना किया पर मौका लगा कर चोरी-छुपके खिसक ही आये। स्वांग तमाशों का लाला को बचपन से ही बड़ा शौक था। गाँव तक क्या, जवानी के पहरों में दस-दस कोस तक होने वाले सांग को कभी उन्होंने नहीं छोड़ा।

: ७७ :

दूसरे दिन प्रातःकाल मनोरमा जीजी और शीला ने जमालपुर से प्रस्थान किया। चलते समय पूरा गाँव-का-गाँव उन्हें बिदा करने को एकत्रित हुआ। चलते समय मनोरमा बोली, “आप सब भाई बहनों के बीच से जाने को मेरा दिल नहीं करता। आपका जो प्रेम मुझे मिला है उसे मैं जीवन भर नहीं भूल सकती। परन्तु मेरा वास्तविक प्रेम वही

होगा जो आप विद्यासागर जी और बहन लता को इनके कार्य में सह-योग देंगे।”

कहकर मनोरमा जीप गाड़ी पर सवार हो गई और पास में शीला भी। परन्तु बैठ जाने पर भी उन्होंने गाड़ी स्टार्ट करने को नहीं कहा। उनकी आँखें भीड़ में कुछ खोज रही थीं।

तभी तनिक दूर पर मनोरमा ने देखा कि चमेली एक छोटी सी अपने कपड़ों की पुटलिया बगल में दबाये इधर को लपकी चली आ रही थी।

पास आने पर मनोरमा बोली, “पगली देर कर दी बड़ी। मैं तेरी ही राह देख रही थी।”

विद्यासागर यह देखकर बोला, “तो क्या सचमुच ही चमेली को लिये जा रही हो मनोरमा जी-जी ?”

चमेली को अपने पास बिठलाकर मनोरमा ने कहा, “अब भी तुम्हें इसमें कोई संदेह प्रतीत होता है क्या ? आखिर जमालपुर से मुझे कुछ तो मिलना ही चाहिए था। जब इतना स्नेह आप लोगों ने दिया तो क्या उस स्नेह का फल न मिलता। चमेली फल ही तो है उस स्नेह का।”

“जा रही हो चमेली ?” विद्यासागर ने पूछा। “तुम्हारे पश्चात मेरी दुबारी कौन बुहारेगा ? कौन लीप-पोतकर उसे साफ़ रखेगा ? परन्तु ..... नहीं ..... तुम जाओ। आनंदपूर्वक जाओ। यहाँ सब होता रहेगा। खूब पढ़-लिखकर विद्वान बनना।” विद्यासागर ने अपनी छोटी बहन को आशीर्वाद दिया।

कल के जमघट में शीला विद्यासागर से कोई विशेष बात नहीं कर पाई थी। उसका मन कुछ अपनी बातें कहने और विद्यासागर की बातें सुनने को छूटपटा रहा था।

गाड़ी के स्टार्टर पर ड्राइवर ने पैर रखा तो शीला ने पूछा, “शहर कब तक आना होगा आपका ?”

“बहुत शीघ्र शीला ! दूधशाला के दूध की बिक्री-व्यवस्था.....”

शीला बीच में ही विद्यासागर को रोककर बोली, “इसमें आपको क्या करना होगा ? वह तो की जा चुकी है । केवल समय पर वहाँ दूध पहुँचने की देरी है ।”

विद्यासागर के हर्ष का पारावार नहीं था । उसका मन शीला की कार्य-व्यवस्था पर मुग्ध हो गया और वह भावातिरेक में बिना यह सोचे कि कितने आश्रमियों के बीच वह खड़ा है, बोला, “शीला तुम कितनी अच्छी हो ? तुम्हारे काम कितने सुव्यवस्थित हैं ? तुमने ही वास्तव में इस योजना को साकार रूप दिया है ।”

मनोरमा जीजी विद्यासागर की भावुकता को पहचानकर मुस्कराती हुई बोली, “विद्यासागर जी, केवल शीला ने ही नहीं मैंने भी इसमें कुछ-न-कुछ किया ही है । मेरे कार्य को ऐसे नहीं भुला सकते तुम ?”

शीला और विद्यासागर मनोरमा जीजी की बात सुनकर प्रसन्न हो गये । शीला के मुँह पर लज्जा की हलकी सी रेखा भी खिंची, परन्तु उसने स्थिति को देखते हुए मुस्कराते रहना ही उचित समझा ।

ये बातें सुनकर लता बोली, “मनोरमा जीजी, कह नहीं सकती क्यों, मीठी बातें शीला और विद्यासागर जी की हो रही हैं और मुँह में मिसरी मेरे घुलती जा रही है ।”

तभी चौधरी रूपसिंह और सरूपरानी हवेली से निकले और उन्होंने मनोरमा जीजी और शीला को विदा किया ।

गाड़ी चलकर जरा दूर पर फिर रुक गई । मनोरमा पीछे झाँक कर देख रही थीं । विद्यासागर दौड़कर पास पहुँचा तो मनोरमा बोली, “मैं तो भूल ही गई थी, थाने तक तुम्हें और लता को भी चलना है । वीरेन्द्रकुमार जी कल दावत दे गये थे थाने में आने की । वह राह देख रहे होंगे बेचारे । काफी समय हो गया हम लोगों को यहाँ से चलने में ।”

इस समय तक लता भी आगे बढ़कर पास आ चुकी थी । वे दोनों भी जीप पर सवार हो गये ।

: ७८ :

वीरेन्द्रतिह को थाने में आये अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ था । घर की व्यवस्था भी ठीक नहीं थी । उन्होंने अतिथियों की चाय का प्रबन्ध अपने बरांडे के सामने वाले नीम के वृक्ष के नीचे ही किया था । वहीं पर आठ-दस कुर्सियाँ पड़ी थीं और दो-तीन मेजें थीं ।

थानेदार वीरेन्द्रकुमार ने आगे बढ़कर आगंतुकों का स्वागत किया और उन्हें तपाक के साथ कुर्सियों पर लाकर बिठाया ।

जल-पान के पश्चात् विदा होते समय शीला बोली, “कभी शहर आये तो दर्शन देना न भूलें । आपकी सहायता के लिए हम लोग आभारी हैं । साथ ही हमारे कल के फंक्शन में भाग लेकर जो आपने हमारे कार्य में रुचि दिखाई इससे हम लोग एक-दूसरे के और भी निकट आ गये ।”

वीरेन्द्रकुमार बोले, “उल्टी गंगा बहाने की कृपा न करें शीला देवी ! आभारी मैं हूँ आपका कि आपने मेरे इलाके में आकर एक ऐसी संस्था की नींव डाली जिसका लाभ मेरे इलाके के रहने वालों को होगा ।”

“इसमें कोई संदेह नहीं ।” लता बोली, “आपने आकर ग्राम के वातावरण में सहयोगी कार्य करने के उत्साह को बढ़ावा दिया है । थानेदार साहब और हम सभी आपके आभारी हैं ।”

पारस्परिक बातें भी चल रही थीं और वीरेन्द्रकुमार तथा मनोरमा देवी एक दूसरे को गहरी दृष्टि से भी देख रहे थे । कुछ याद कर रहे थे मानो बीती किसी बात को ।

अचानक वीरेन्द्रकुमार बोले, “एक बात पूछूँ मनोरमा देवी ।”

“एक नहीं, दो पूछिये ।” मनोरमा मुस्कराकर बोली ।

“क्या आप कभी डी. ए. वी कालेज की छात्रा रही हैं ? मेरी आँखें यदि धोखा नहीं दे रही हैं तो मैंने आपको कहीं देखा अवश्य है ।”



“और आप डी. ए. वी कालेज की फुटबाल टीम के कप्तान रहे हैं। क्या यह बात भी सच है?” मनोरमा ने पूछा।

“तब तो निश्चित रूप से उस वर्ष डॉसिंग का प्रथम पुरस्कार आपको ही मिला था।” प्रसन्नतापूर्वक वीरेन्द्रकुमार ने कहा।

विद्यासागर हर्षित होकर बोला, “लीजिये कितनी पुरानी मुलाकात करा दी मैंने। आप दोनों को अब, एक-दूसरे का आभारी न होकर, मेरा आभारी होना चाहिए।”

“इसमें कोई संदेह नहीं।” शीला मुस्कराकर बोली, “क्या पता था जीजी को कि वह अपने फुटबाल कैप्टेन से जमालपुर में भेंट करने जा रही हैं।”

“और क्या पता था हमारे थानेदार साहब को कि उनकी हमारी दूधशाला के उद्घाटन समारोह में अपने कालेज की प्रथम पुरस्कार-विजेता नर्तकी मनोरमादेवी से भेंट होगी। परन्तु यदि यह रहस्य थानेदार साहब ने कल खोल दिया होता तो जीजी की कला का रूप हमारे गाँव के उन लोगों को भी देखने को मिल जाता जिन्होंने अपनी टूटी-फूटी कला का सागर कल रात आपके सामने लहरा दिया।” लता बोली।

लता की बात सुनकर मनोरमा हल्की मुस्कान के साथ हँसी और बोली, “वह सब लुप्त हो गया लता! कला सो गई विवाह के बन्धन में जकड़कर। न अब वह नर्तकी मनोरमा है……”

“और न अब वह फुटबाल कैप्टेन वीरेन्द्रकुमार।” मनोरमा की बात बीच में ही काट कर थानेदार साहब बोले। “यह सब समय-समय की हवा है कुमारी लता! समय बदलता है और उसके साथ-साथ जीवन भी बड़ल जाता है। जो आज है वह कल नहीं रहेगा।”

“रहेगा क्यों नहीं थानेदार साहब! यों कहिये कि वह तो रहेगा ही बल्कि उससे और भी अधिक होगा। कला मरती नहीं है कभी और स्वप्न टूटता रहता है। मनोरमादेवी की कला का रूप बदलेगा और

मानव-कल्याण की दिशा में उसका प्रसार होगा, विकास होगा ।” विद्यासागर ने कहा ।

इतनी गम्भीरता के साथ, इतने विश्वास के साथ और इतनी दृढ़ता के साथ विद्यासागर ने यह बात कही कि मनोरमादेवी ‘नाँ’ नहीं कर सकीं । बोलों नहीं एक भी शब्द विद्यासागर के पक्ष या विपक्ष में ।

लता मनोरमादेवी और विद्यासागर के मुख पर एकटक देखती रही और शीला पैर के नाखून से जमीन कुरेदने लगी ।

: ७६ :

प्रतिथियों के चले जाने पर वीरेन्द्रकुमार विद्यासागर और लता से काफी देर तक बातें करते रहे । जमालपुर गाँव की पूरी स्थिति विद्यासागर ने उन्हें समझाई और अन्त में कहा, “हमारा किसी से बैर-भाव नहीं है, किसी से विरोध नहीं है ।

“यह ठीक है विद्यासागर जी परन्तु बैर-विरोध आपके मात्र न करने और न कहने से ही समाप्त नहीं हो जाता । आपके काम से जिन लोगों के रास्तों में रुकावटें पैदा हुई हैं उनसे आपका बैर-विरोध तो बन ही गया है ।”

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “उसे संभालने के लिए मैं आपसे अच्छा साथी और कहाँ पाऊँगा ?”

वीरेन्द्रकुमार हँसकर बोले, “सो तो ठीक ही है, परन्तु दरोगा जी हैं खतरनाक आदमी । उनसे संभलकर रहना चाहिए आपको । और पंडित संकटमोचन भी आपके गाँव में एक ही विचित्र व्यक्ति हैं । यों कल तो वह महाशय आपके मंच पर भी विराजमान थे परन्तु उससे तीन दिन पूर्व ही वह दरोगा जी के साथ यहाँ भी तशरीफ़ लाये थे ।”

“क्या कहते थे पंडित संकटमोचन ?” लता ने पूछा ।

“कहते थे, सागर ने हमारे गाँव के चौधरी रूपसिंह की बिटिया लता पर डोरे डालकर चौधरी और चौधराइन को काबू में कर लिया है

बड़ा चालबाज़ आदमी है। मेरे विचार से वह अवश्य ही कुछ जादू-टोना भी जानता है। इससे पूर्व भी उसने लाला चोखेराम पर जादू करके जाने उनसे क्या-कुछ गलत-सलत लिखा लिया है। बड़े ही परेशान हैं बेचारे लाला जी।”

लता को हँसी आ गई और वह हँसते-हँसते ही अपने चारों ओर हाथ घुमाकर बोली, “देखूँ तो सही कैसे डोरे डाले हैं विद्यासागरजी ने। मेरे हाथ तो एक भी डोरा नहीं लगता थानेदार साहब ! ज़रा आप ही गौर से देखिये कैसे डोरे डाले हैं इन्होंने। है तो यह वास्तव में बुरी ही बात।” और फिर विद्यासागर की ओर मुँह करके बोली, “कहिये महोदय ! यह कैसी बात की आपने ? आखिर क्या मैं ही मिली थी आपको डोरे डालने के लिए ?”

फिर तीनों खूब जोर-जोर से हँसे।

वीरेन्द्रकुमार ने कहा, ‘पंडित संकटमोचन आपसे हार मानने वाले नहीं हैं। वह कह गये हैं कि उन पर भी देवी की बड़ी भारी कृपा है। उन्होंने न जाने कितने मंत्र सिद्ध किये हुए हैं। वह आपके जाल को जमालपुर में फँलने नहीं देंगे।

देवी के प्रताप से वह अपने दो मरे हुए भाई और एक बेटे को तुम्हारे ऊपर सवार करा देंगे। तब देखना आपकी क्या दशा होती है ? छठी तक का खाया-पिया बाहर न निकलवा लें तो उनका नाम भी संकटमोचन नहीं।”

“और ताऊ दरोगा जी क्या कहते थे ?” लता ने पूछा।

“तो क्या दरोगा जी आपके ताऊ लगते हैं ?” थानेदार साहब ने पूछा।

बिल्कुल ताऊ लगते हैं। तभी तो उनकी ज़बान को वे शब्द अधिक शोभा देते हैं जो आपने अभी-अभी कहे। इन्हीं की मेहरबानी से मेरा सगा भाई आबारा चौकड़ी में बैठकर आज जेल की चक्की पीस रहा है।” लता ने दुःखी मन से कहा।

वीरेन्द्रकुमार बोले, “अपने ताऊ जी के हाल का तो कुछ पूछो ही नहीं बस लता कुमारी जी ! छूटते ही बोले बाबू वीरेन्द्रकुमार जी, मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूँ ? मेरी दिली हमदर्दी आपके साथ रहेगी क्योंकि मैं भी आपका हमपेशा रह चुका हूँ । मेरे लायक जो भी काम आप समझें बीच का पर्दा हटाकर साफ़-साफ़ कहें । मुझसे कभी आपको धोखा नहीं होगा ।—

मैं सुनता गया उनकी बात । वह और आगे बढ़कर बोले थानेदारी आपने और इलाकों में भी की होगी जनाब ! लेकिन यह इलाका जरा दूसरे किस्म का है । यहाँ शरीफ़ और बदमाश में तमीज़ करना मुश्किल है ।

मैं सुनता ही रहा और वह बेधड़क कहते गये मैं आपको अपने बच्चे की तरह समझता हूँ । मेरा बड़ा लड़का होता तो इस समय ठीक आपके ही बराबर होता और जरूर वह भी किसी खाने में थानेदार ही होता—कहते-कहते उनका गला रुँध गया ।

मैं भी कुछ नहीं बोला क्योंकि पहली मुलाकात में मैं कुछ कहने की अपेक्षा सुनना ही अधिक पसंद करता हूँ ।

दरोगा जी को खामोश देखकर पंडित संकटमोचन बोले—सचमुच दरोगा जी का बेटा बड़ा ही होनहार था थानेदार साहब ! क्या तारीफ़ करूँ उसकी । अपने बाप से अधिक वह मेरा सम्मान करता था । देवी उस पर बहुत प्रसन्न रहती थी । इसीलिए उठा लिया उसे देवी ने ।”

विद्यासागर को हँसी आ गई और वह हँसता हुआ बोला, “तब तो देवी का प्यार प्राप्त करना भी खतरे से खाली नहीं है थानेदार साहब ! वह प्रसन्न हुईं और प्राणों पर आ बनी ।”

वीरेन्द्रकुमार को भी हँसी आ गई विद्यासागर की बात सुनकर और वह बोले, “लम्बी-चौड़ी भूमिका के पश्चात् दरोगा जी असली बात पर आये । उन्होंने बतलाया कि गाँव में तीन नम्बरी बदमाश रामसिंह, भम्भन और कनकू हैं । रामभगत जुलाहे का लड़का सागर उन्हें शै देता

हैं। चौधरी रूपसिंह और उनकी लड़की लता भी इसी गिरोह में शामिल हैं। बेचारे लाला चोखेराम को ठगने का प्रपंच रचा हुआ है। बस घेर लिया है उसे पूरी तरह। छटपटा रहा है बेचारा। यदि आप उसकी रक्षा नहीं करेंगे तो वह कहीं का नहीं रहेगा।”

“बान तो सच है।” विद्यासागर ने कहा। “लाला चोखेराम के पास बाप-दादों की दी हुई एक कौड़ी भी नहीं थी। मामूली लंगोटी और कुर्ते से वह चौधरी रूपसिंह के यहाँ आये थे और जब तक गये उनका वेतन चालीस रुपये से अधिक नहीं हुआ। फिर यह इतना बड़ा फार्म उनकी ललवाइन के नाम कहाँ से आया? तराजू का तुला दो धड़ी सोना उनके पास है, और चाँदी को तो कभी उन्होंने तोलकर ही नहीं देखा।

मैं कहता हूँ वह सब या तो चौधरी रूपसिंह को नोच-खसोट कर एकत्रित किया गया है या गाँव के चमारों को दो-दो चार-चार आने रुपये के सूद पर रुपया देकर।”

“मैं सब जानता हूँ विद्यासागर जी! मेरे गाँव में भी एक लाला घीसूमल हैं। उनका बनज गाँव के भंगियों में चलता है। उसी काम में पचासों हजार का आसामी बन गया। पैसे को दाँत से उठा लेता है।” थानेदार बीरेन्द्रकुमार बोले।

लता ने कहा, “ताऊ दरोगा जी को इधर-उधर की बातें भिड़ाने में जाने क्या मजा आता है। लाला चोखेराम की तरफदारी में जो उनका दिल उबाल खा रहा है वह भी मैं जानती हूँ क्या बात है। आजकल जब खाली है बेचारों की और लाला चोखेराम के अतिरिक्त अन्य कोई आसामी नहीं रहा उनके पास।”

“क्या मतलब?” बीरेन्द्रकुमार ने पूछा।

“मतलब यही कि उस्ताद भूमन, रामसिंह और कनकू के रास्ते बदल दिये विद्यासागर जी ने। वे अब न तो स्वयं चोरी करते हैं और न ही अब चोरी का हिस्सा हमारे ताऊ जी को मिल पाता है। गाँव में

आकर उन्होंने जो रोजगार अपनाया था उस पर थानेदार घीरसिंह जी और विद्यासागर जी ने एक साथ मिलकर छापा मारा और चारों तरफ से उनके रास्ते बन्द कर दिये ।

किसी का कारोबार बन्द कर देने को आप क्या कहेंगे भला ?”

कहकर लता ने प्रश्नवाचक दृष्टि से वीरेन्द्रकुमार जी के चेहरे पर देखा ।

“है तो पूरा प्रपंच ही यह ।” वीरेन्द्रकुमार मुस्कराकर बोले, “परंतु प्रपंच की नीयत में खराबी कम मालूम पड़ती है । वैसे जांच करेंगे । हम पुलिस के अफसर ठहरे । एक दिन जमालपुर में इसी बात की तहकीकात के लिए आयेंगे और सबके सामने दरोगाजी, पंडित संकटमोचन और लाला चोखेराम के बयान लेंगे ।

: ८० :

विद्यासागर और लता जमालपुर को लौटे तो देखा कि रामसिंह, भूमन् और कनकू गांव से चार फलांग पहले ही दगड़े में खड़े इनके आने की बाट जोह रहे थे ।

इन्हें देखकर उन तीनों के दम-में-दम आया । तीनों ने एक स्वर में पूछा, “कोई खास बात तो नांय गुजरी सागर तम पे ?”

“कैसी बात ?” विद्यासागर ने पूछा ।

“कछू नांय, कछू नांय ।” दबे स्वर में तीनों बोले ।

विद्यासागर को हँसी आ गई उनकी सूरतें देखकर । वह उसी प्रकार हँसता हुआ लता से बोला, “गांव के आधे लोगों को तो इस देवी महारानी ने उलसू बना दिया है लता ! अंधविश्वास की भी कुछ हद होती है । वह पंडित संकटमोचन महाराज जो कुछ कह देते हैं वह इन भोले-भाले लोगों के लिए ब्रह्म-वाक्य बन जाता है ।”

लता ने कनकू से पूछा, “ताऊ, ठीक-ठीक कहो क्या बात है ? तुम लोग यहाँ क्यों खड़े हो हमारे इन्तजार में ?”

रामसिंह बोला, “हमें पता चला है लता बिटिया, अक पंडित संकट-मोचन और दरोगा जी ने थारी दोनों की थानेदार साब से बड़ी चुगली करी है। थाने का सिपाही कह गया है सब हम से। और गाम भर में अफवाह है अक नया दरोगा अब सागर और लता कू हवालात में दे देगा। पुछै-गछैगा भी नाँय काही से कछु। दरोगा जी सब पक्की पकाय आये हैं थानेदार से। या काम के लेय्यों सुना है लाला चोखेराम ने हजार रुपय्या तक खरच करन का वादा करा है।

पर तम दोनों कू दूर से आवत देख कं म्हारा कलेजा ठण्डा है गया कुमारी जी ! म्हारे माथे की चिंता जाती रही।”

“रामसिंह जी तुम लोग वास्तव में बड़े भोले हो। इस प्रकार व्यर्थ परेशान न हुआ करो कभी। हम लोग जब जेल या हवालात में जायेंगे तो तुम लोगों को बतला कर जायेंगे, खुले खजाने जायेंगे। यों ही हमें जेल या हतालात भेजने का बूता नहीं है किसी का।” हम कोई गैर-कानूनी काम नहीं करते।

और रही पंडित संकटमोचन और उनकी देवी की बात, सो देवी का प्रभाव उन्हीं पर होता है जो उसे मानते हैं। मेरा इन चीजों में कोई विश्वास नहीं है।”

रामसिंह, कनकू और भूमन ने बड़े आश्चर्य के साथ सुना कि सागर का देवी में कोई विश्वास नहीं है। तीनों के दिलों पर जोरदार आघात हुआ। तीनों ने नज़रें उठाकर विद्यासागर के चेहरे पर देखा। वही था वह। कोई अन्तर नहीं आया था उसमें। कोई परिवर्तन नहीं हुआ था।

विद्यासागर बोला, “वही हूँ मैं। बदला नहीं हूँ। देवी की मान्यता का सम्बन्ध अपने मन से है। आपका मन कहता है, वह कोई चीज है। मेरा मन कहता है, वह कुछ नहीं है। पंडित संकटमोचन द्वारा आप लोगों के ठगे जाने का एक साधन मात्र है। मुझे देखना है कि पंडित संकटमोचन और उनकी देवी मेरा क्या अहित कर सकते हैं।

और यदि न कर सके तो आप लोगों को समझ लेना चाहिए कि यह सब कुछ नहीं हैं, केवल ढोंग और मक्कारी है।”

रामसिंह, कनकू और भूमन तीनों चुपचाप विद्यासागर और लता के पीछे-पीछे गांव तक चले आये। बोला कोई एक शब्द भी नहीं।

कनकू लता को हवेली तक छोड़ने गया और विद्यासागर अपने घर चला गया।

घर में प्रवेश करते ही अपनी उस दुबारी में पहुँचा जिसकी सफाई का भार चमेली ने सम्भाला हुआ था। सवेरे-ही-सवेरे साफ करके गई थी वह इस दुबारी को।

दुबारी की सफाई देखकर विद्यासागर को चमेली की याद हो आई। उसे लगा कि वह अभी फुदकती हुई मंता सी आकर उसके गले में लिपट जायगी।

अन्दर बालान में रामभगत कपड़ा बुन रहा था और उसकी माँ चरखा कात रही थी।

विद्यासागर को देखकर माँ ने चरखा रोक दिया और पूछा, “चमेली चली गई सहर ? बड़ा मन था वाका सहर में। जब वाने पहलम-पहल तेरी पास की खबर सुनी ही तो तभी वाका मन गाम से उचाट है गया हा। बड़ी ही चतर है तेरी भेना सागर ! वाकू पढ़न का मौका मिला तो तू बेख लीजो, कंसी लिकलेंगी। तुभ जंसी ही अक्कल है वा में।”

“इसमें कोई संदेह नहीं माँ ! चमेली बड़ी चतुर लड़की है। तभी तो मनोरमा जीजी को पसन्द आ गई। वह उसे अपनी बेटो के समान प्यार से रखेंगी। बड़ी दयालु हैं वह। बड़ा उदार है उनका मन।” विद्यासागर ने कहा।

रामभगत भी खट्टर बुनता-बुनता रुक कर बोला, “घर सूना-सूना है गया चमेली बिना सागर ! कितना काम करे ही ऊ। अब मुझ या तेरी माँ कू ही छोटे-छोटे कामन के लैयों बौड़ना पड़ेगा।”



“यह सच है पिताजी ! परन्तु चमेली का जीवन तो बन जायगा । और माता-पिता के लिए इससे बड़ी प्रसन्नता की और कोई बात नहीं हो सकती कि उनके बच्चे योग्य बन जायें ।”

“यू बात तै तेरी ठीक है लाला ! याही मारै ती मैंने तेरी मा के मना करने पै भी चमेली कू नाँय रोका । मैंने सोचा अक ऐसा मौका भी भगवान् कभी-कभी ही देय है । वाके दिये कू नाँय करना भी मूर-खता की बात है ।” रामभगत ने कहा ।

“इसमें कोई संदेह नहीं । मिले अवसर को हाथ से जाने देना बुद्धिमत्ता की बात नहीं है । और यह तो आपकी बेटी के जीवन में एक क्रांति लाने की बात थी ।

इस बार जब चमेली शहर से आयेगी तो आप देखेंगे कि वह कितना बदली हुई है । एक दिन लता जैसी ही सुशिक्षित होगी वह । शीला और मनोरमा जैसी ही दिखाई देगी वह । तब आपको आज के अपने त्याग का फल दीखेगा । उस समय की प्रसन्नता इस बीच में उसके बिला सही गई आपकी सब परेशानियों को अपने एक भोके में उड़ाकर सात समन्दर पार ले जायेगी ।”

रामभगत के नेत्र मुँद गये और उसके कानों ने विद्यासागर के शब्दों को ऐसे सुना मानो कोई ब्रह्मनाद हो । वह मन्त्र-मुग्ध हो गया । विद्यासागर की माँ भी उसके चेहरे पर बड़ी देर तक एकटक देखती रही, समझती रही और उसके मन में प्रसन्नता की मिसरी सी मीठी डली घुलती रही ।

: ८१ :

जमालपुर की दूधशाला का प्रबन्ध लता ने अपने हाथों में लेकर विद्यासागर को उससे मुक्त कर दिया । रामसिंह की ड्यूटी चारे के प्रबन्ध पर लगाई, भ्रमन पहलवान की ड्यूटी दूधशाला की व्यवस्था पर और

कनकू की ड्यूटी घी निकलवाने और शहर के लिए दूध-घी लदवाने पर लगाई ।

तीनों ने पूरी कर्मठता के साथ कार्य किया । पूरी मंडेया की औरतें और बच्चे इस काम में घिर गये ।

जितना कुल दूध होता था उसका आधा तो दूध के बतौर ही शहर भेज दिया जाता था और शेष का आधा पीने-पिलाने के लिये बाँटा जाता था । और चौथाई को जमाकर उसका घी निकाला जाता था । घी निकालने के पश्चात् जो मठा बचता था वह गाँव का कोई भी आदमी मुफ्त लेजा सकता था ।

इस मठ के वितरण की चर्चा आस-पास के देहातों में भी फैली और काफी भीड़ एकत्रित होने लगी ।

भीड़ को देखकर विद्यासागर बोला, “देखा लता तुमने ! मुफ्त की चीज में ईमान नहीं जाता, धर्म नहीं बिगड़ता । तुम देख लेना कि चंद दिनों में ही दो-चार को छोड़कर सब ऊँची-ऊँची जाति के लोग हमारी दूधशाला पर मठा माँगने के लिये आने लगेंगे । और मैं चाहता हूँ कि जमालपुर के हर रहने वाले को यदि यह दूधशाला मुफ्त दूध न दे सके तो कम-से-कम मठा तो दे ही ।”

“यह भी कोई कम बात नहीं है विद्यासागर जी ! गाँव में कितने ही घर ऐसे हैं जिनके यहाँ कोई सच्ची नहीं बनती । कुछ घरों में एक समय बनती है । कुछ नमक की रोटी-अचार की फाँक से या प्याज की चटनी से ही खा लेते हैं । ऐसे लोगों के लिये हमारी दूधशाला का मठा उनके जीवन में एक ताजगी का संचार करेगा । नवजीवन का प्रवाह होगा उनमें । लता गम्भीरतापूर्वक बोली ।

“इसमें कोई सन्देह नहीं । उनके सूखे जीवन में यह मठा ही रस की धारा प्रवाहित करेगा । उनके जीवन में तबदीली लायेगा । जो रोटियाँ वे खायेंगे उनकी पेट में सूखी चिनाई न होकर गीली चिनाई होगी ।” कहकर विद्यासागर हँस पड़ा और फिर लता का ध्यान लम्बी-लम्बी खोरों

की ओर करके कहा, “कितनी सुन्दर लगती है ये भैंसों और गायों की पंक्तियाँ ? और ये गायों के गलों में जो मोर-पेंचों की पठियाँ बँधवादी हैं इनसे तो गायें और भी सुन्दर लगने लगी हैं।”

कहते-कहते विद्यासागर और लता ने दूधशाला में प्रवेश किया। रामसिंह कुट्टी कटवा रहा था और भूमन जानवरों के नीचे सूखी मिट्टी डलवा रहा था। कनकू दूध के डिब्बे भरवा रहा था। सब कार्य व्यवस्था के साथ चल रहा था।

उसी समय उन्होंने देखा कि चौधरी रूपसिंह और उनकी धर्म-पत्नी भी उधर ही आ गये। दोनों ने आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम किया।

रूपसिंह यह सब देखकर स्तम्भित से रह गये। उन्होंने स्वप्न में भी कभी यह नहीं सोचा था कि उनका यह पुराना अहाता कभी इस प्रकार सजीव हो उठेगा और उसके द्वार पर पूरा जमालपुर-का-जमाल-पुर अपना लोटा, अपना गिलास, अपनी पतीली, अपनी कसैंडी लेकर मठा पाने के लिये एकत्रित होगा।

वह प्रसन्न होकर बोले, “सागर तुमने वास्तव में यह बहुत बड़ा कार्य किया है।”

विद्यासागर बोला, “अभी यह सब बिना पैसे का खेल है चौधरी साहब ! एक फूटी कौड़ी भी तो नहीं थी इस गरीब की जेब में जब मैंने यह कार्य करने की योजना बनाई थी। अब कार्य संचालित हुआ है और मैं आशा करता हूँ कि एक वर्ष के अन्दर-अन्दर यह कार्य पूरे वेग के साथ जिले भर में बारह दूधशालाओं और चार नगर-केन्द्रों को लेकर बहुत अच्छे पैमाने पर चल निकलेगा।”

“चल निकलेगा क्या बेटा ! चल निकला यह तो।” प्रसन्नता पूर्वक सरूपरानी ने कहा। मैं तुम्हें आर्थिक सहयोग भी दूँगी तुम्हारे इस कार्य में।”

विद्यासागर का मन अन्दर से उभार खा गया सरूपरानी की बात

सुनकर उसने अपने मन में कहा, “कितने पगले हैं जमालपुर के लोग जो पत्थर की देवी पर सिर पटकने जाते हैं। जमालपुर की देवी तो सरूपरानी हैं जिनके दिल में जमालपुर की खुशहाली के लिए प्रेरणा उत्पन्न हुई, जिनका हृदय यहाँ की उन्नति को देख कर हर्षित हुआ और जो अपनी सब जमींदारी किसानों में तकसीम करने के पश्चात् भी गरीबों की सहायतार्थ हमें आर्थिक सहायता देने का वचन दे रही हैं।”

विद्यासागर हर्षित होकर बोला, “किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करूँ मैं ? आपके ही तो सहयोग से यह दूधशाला चल रही है। इसको जमीन आपने दी है। इसके जानवर मंडैया में रहने वाले साथियों ने दिये और इस कार्य का भार कुमारी लता, रामसिंह, भूमन और कनकू ने सम्भाला है। आपकी थोड़ी आर्थिक सहायता पाकर यह कार्य इतने बड़े पैमाने पर चल सकेगा कि जमालपुर में हर बच्चे को थोड़ा-बहुत दूध मिल सके और यहाँ के रहने वालों को मठा मिल सके।”

चौधरी रूपसिंह और सरूपरानी को देखकर रामसिंह, कनकू और भूमन भी वहीं आ गये। तीनों ने उनको राम-राम की।

“राम-राम कनकू ! कहो, अच्छे तो हो। तुम्हारी दूधशाला को देखकर मन प्रसन्न हो गया। अब अपनी जमीन की भी तो खैर-खबर ले लो। या उसे बंजड़ करने की ठान ली है ?” चौधरी रूपसिंह मुस्कराकर बोले।

विद्यासागर चौधरी रूपसिंह की बात सुनकर बोला, “कल हल चल जायगा जमीन पर। बंजड़ कैसे होने देंगे जमालपुर की जमीन को। कितनी मुसीबत से हमारे पुख्तों ने इसे हमवार किया होगा, कङ्कड़-पत्थर निकालकर इसकी मिट्टी को साफ़ किया होगा, कूड़ा-कबाड़ काट कर ठीक किया होगा। तो क्या हम इतने मूर्ख हैं कि पूर्वजों की उस सब मेहनत को नाकारा कर दें ?”

चौधरी रूपसिंह विद्यासागर की बात सुनकर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अनुभव किया कि विद्यासागर को हर दम जमालपुर

की खुशहाली का ध्यान रहता है और वह किसी भी ऐसे अवसर को हाथ से नहीं खोता जब जमालपुर की उन्नति की कोई सम्भावना हो। न उसमें व्यर्थ की ज़िद है और न बड़प्पन की ठनक है।

: ८२ :

विद्यासागर आज सुबह उठकर शौच इत्यादि से निवृत्त होने के लिए देवी के मन्दिर की ओर निकल गया। रास्ते में नीम के वृक्ष से एक टहनी तोड़कर दाँतन बनाली और कुल्ला करने के लिए मंदिर के कुए पर पहुँच गया।

पंडित संकटमोचन स्नान कर रहे थे कुए की मन पर बैठे हुए। डोल भर-भर अपनी बाल-उड़ी चाँद पर उड़ेल रहे थे।

दूर से ही उन्होंने विद्यासागर को अपनी ओर आते देखा तो अपना-पन जताते हुए पुकार कर बोले, “अरे सागर ! आज तू मंदिर की ओर कैसे भूल पड़ा ?”

विद्यासागर पंडित संकटमोचन की गोल-मटोल शक्ल देखकर मुस्कराता हुआ बोला, “भूलता तो इधर आता ही कैसे पंडित जी ? भूले हुए तो आप हैं हमें। बड़ों-बड़ों में बैठने से ही अवकाश नहीं मिलता आपको। हम गरीबों के पास आने का समय कहाँ से निकले।”

विद्यासागर की बात सुनकर पंडित संकटमोचन गद्-गद् हो गये। मन में चाहे कुछ भी रहा हो, परन्तु ऊपर से प्रसन्न मुखाकृति करके बोले, “यह कैसी बातें करते हो सागर ! पंडित संकटमोचन छोटे और बड़े सभी के लिए समान है। उसके लिए न कोई बड़ा है और न छोटा। अपनी माँ से पूछ जरा कितना मान करता हूँ मैं उसका।”

“यह तो कहती थीं माता जी ! सुना है आपने मेरी रक्षा के लिए उन्हें वरदान भी दे दिया है।” विद्यासागर सरल स्वभाव से बोला।

“यही बात है सागर ! मैं तो तुम्हें तब से प्यार करता हूँ जब तू

घुटनों के बल चला करता था। अपनी माँ से पूछना कि पंडित संकट-मोचन तेरे लिए देवी का प्रशान्त भोजन करता था या नहीं। वह बतलायेगी कि मैं चाँदी का वर्क चढ़ी बरफी तेरे लिए देकर आया करता था मैं।” पंडित संकटमोचन बोले।

विद्यासागर की माँ जब दुलहिन बनकर जमालपुर में आई थी तो हर शौकीन मिजाज की नजरें उसके गुलाब जैसे चेहरे पर पड़ी थीं और उनमें से हर एक का दिल बारी-बारी से अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार उसके रूप पर मचला था। रूप की देवी पर चढ़ाने के लिए जो-जो भी वस्तु जिसके पास थी वह उसके अर्पण करने का प्रयास किया था।

पंडित संकटमोचन को उस रूप की देवी पर अपनी प्रथम भेंट चढ़ाने का अवसर तब मिला जब विद्यासागर की माँ अपने लाल की मनौती माँगने के लिए उसके मंदिर में गई।

पंडित संकटमोचन उसे देखकर, देखते ही रह गये। उनके नेत्रों की पुतलियाँ स्थिर हो गईं। परन्तु, तुरन्त ही होश में आकर उन्होंने मस्तक पर हाथ फेरा। भाँग के नशे से जमी हुई मस्तक की नसों में रक्त का तीव्र संचार हुआ और वह प्रसन्नता में मुस्कराकर बोले, “देवी माता ने तुझे यह अनमोल लाल दिया है री ! तू किसकी बहुरिया है ? आज से पहले तो तुझे कभी नहीं देखा हमने अपने मंदिर में।”

पंडित संकटमोचन की रंगीली तबियत को गाँव की हर औरत जानती थी। सागर की माँ रामप्यारी की पड़ोसिन, जो गाँव के नाते से उसकी ननद लगती थी, मटक कर आँखें तरेरती हुई बोली, “अरे या बहुरिया कू नाय जानत हो पंडित जी ! रामभगतवा की जोरू है यू। या के रूप नै गजब गुजार राखा है गाम भर में। दरोगा जी याकी एक झलक पाय कै ही या पै लट्टू है गये।”

रामदुलारी लजा गई यह बात सुनकर और अपने ही अन्दर सिमट कर, सिकुड़कर, उसने आधी पलकें भाँप कर नजरें नीची कर लीं। उसके

दिल में ऐसी मीठी-मीठी गुदगुदी हुई कि वह एक शब्द भी मुँह से न बोल सकी। अपने रूप की प्रशंसा का मिठास था उसके दिल में भर गया।

“तू तो सचमुच ही रूप की रानी है रामभगत की बहुड़िया ! देवी तुझे और घना रूप दे। तेरे लाल की रक्षा करे।” इतना कहकर उसने चाँदी का वर्क चढ़ी एक बरफी रामप्यारी के लाल के हाथ में दे दी। और उसके बाद तो पंडित संकटमोचन ने नित्य नियम से देवी का प्रसाद लेकर रामभगत के घर जाना प्रारम्भ कर दिया।

रामभगत सीधा-सादा आदमी न समझा कि पंडित संकटमोचन ने क्यों उस पर इतनी कृपा की। कैसे गाँव की देवी का ठेकेदार उसका गुलाम हो गया। कैसे देवी का प्रसाद नित्य उसकी भोंपड़ी पर आने लगा।

परन्तु रामप्यारी दो-चार दिन में ही पंडित संकटमोचन की नजरों को पहचान गई। पूरी तरह ताड़ गई कि उसके दिल में कौनसा चोर बैठ गया है।

एक दिन पंडित संकटमोचन आये तो रामभगत चौधरी रूपसिंह की हवेली पर उनका गाढ़े का थान देने के लिए गया हुआ था। रामप्यारी अकेली ही थी घर में। सागर पीढ़े पर पड़ा मौज की नौद ले रहा था।

अकेले में पंडित संकटमोचन के दिल का प्यार उमड़ पड़ा और वह प्रसाद का दौना आगे बढ़ाते हुए लम्बा साँस छोड़कर बोले, “रामप्यारी, तेरा रूप क्या इस भोंपड़ी के लायक था ? तुझे तो रानी बनना चाहिए था किसी की।”

रामप्यारी ने देखा कि वह घर में अकेली थी। पंडित संकटमोचन की नजरों में उसे पाप दिखाई दिया। पहले तो वह तनिक घबराई, परन्तु तुरन्त ही उसने अपने स्त्रीत्व से बल का सहारा लिया और सीना तानकर मुस्कराती हुई बोली, “रानी तौ मैं हूँ ही किसी की पंडित जी !”

## चौथा रास्ता

पंडित संकटमोचन ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, “किसकी ?”

“तुम्हारे जुलाहे की।” रामप्यारी ने उत्तर दिया। “मेरे वही राजा हैं और मैं उनकी रानी हूँ।” कहकर रामप्यारी ने पंडित संकटमोचन के गाल पर तमाचा सा लगा दिया।

पंडित जी तिलमिलाकर बोले, “रामभगत तेरे आगे क्या है री रामप्यारी ! कव्वे की चोंच में अंगूर है तू। लंगूर के पहलू में हूर है तू। परी है री, परी है तू तो।”

पंडित संकटमोचन की बात सुनकर रामप्यारी को हँसी आ गई और वह खिलखिलाकर हँसती हुई बोली, “पंडित जी ! तम तौ किताब सी बाँचन लगे।”

रामप्यारी का हँसना देखकर पंडित संकटमोचन ने समझा कि उनका जादू काम कर रहा है। ‘श्रीरत हँसी और फँसी’ का फार्मूला उनके आज तक के प्रयोगों में सर्वदा सफल रहा था। उत्तर शत-प्रति-शत सही आया था।

उनका साहस बढ़ा। वह एक पग और आगे बढ़कर बोले, “रामप्यारी तुझे किताब न सुनाऊंगा तो मैंने इतने वेद-शास्त्र क्या बेकार ही पढ़े हैं ? तुझ जैसी रूप की देवी को देवी-माता अपने मंदिर में देख कर कितनी प्रसन्न होती है, यह तू क्या जाने ?”

रामप्यारी दो पग पीछे हट गई और उसके चेहरे पर मक्कारी देखकर कड़ाकेदार आवाज़ में बोली, “अच्छा, पंडित जी ! खूब सुनी थारी पोथी भी। अब तम जाओ यहाँ से। भौत तारीफ़ कर लई तम ने मेरी खफसूरती की। यूँ खफसूरती तौ जाकी है वाकी ही रहैगी। और एक बात और सुन ल्यों। आज से फिर कधी म्हारे घर यूँ परसाद ले के आये तौ मुझसे बुरी नाय मिलैगी तमे।”

पंडित संकटमोचन का मस्तिष्क रामप्यारी की बात सुनकर झनझना उठा। उनका स्वप्न-सा टूट गया। नशे की खुमारी में एक लहर सी पैदा हुई और उन्होंने रामप्यारी को सामने खड़े देखा।



रामप्यारी ने पंडित संकटमोचन को नज़रें इधर-उधर दौड़ाते देख कर कहा, “पंडत जी, किसी भूल-भुलैया में मत रहियो। आबरू को सही-सलामती चाहौ तौ यूँ कहे द्यूँ हूँ अक चुपचाप चले जाओ ह्याँ सै।”

परन्तु पंडित संकटमोचन की नज़रें रामप्यारी के रूप में गड़ चुकी थीं। वह अपने को न रोक सके। उनका एक पग और आगे बढ़ गया। रामप्यारी की मुडौल गोरी कलाइयों में कितना दम है, इसका अन्दाज नशे से चूर उनकी आँखें और मस्तिष्क न लगा सके।

रामप्यारी की आँखें लाल हो गईं। उसके रक्त में उबाल आने लगा और उसके चेहरे का सरल भाव ऐसे विलुप्त हो गया जैसे शान्त और शीतल काफूर आग की लपट से जलकर भक्क-भक्क जलने लगता है। उसकी आँखों से विद्युत-सी रेखाएं निकलने लगीं।

पंडित संकटमोचन पागल की तरह और आगे बढ़ गये। रामप्यारी ने उन्हें इतने जोर का धक्का दिया कि वह चारों खाने चित्त जमीन पर गिर पड़े। उनके चौक के चार दाँत उसी धक्के की भेंट चढ़ गये।

तभी रामभगत भी लौट आया। उसने पंडित संकटमोचन को जमीन पर पड़े देखा तो घबराकर पूछा, “पंडतजी कू कहा है गया?”

सागर की माँ मुस्कराकर बोली, “कुछ भी तौ नाँय भया। तम नाहक परेसान काहे कू है रहे हो। पंडत जी के सिर देबी आवे है। उई आय रही हैं इनन के सिर?”

और फिर वह बरफी का दौना रामभगत के हाथ में देकर बोली, तनसी बरफी खवाय द्यो इनन कू। तबियत ठीक है जायगी। देबी का मुँह भी मीठा है जायगा।”

पंडित संकटमोचन ने रामप्यारी की बात सुनी तो उनके दिल का दर्द सा मिट गया और वह अपने मन से बोले, “चलो, चाहे जो कुछ

भी हुआ पर भलीमानस ने आबरू तो बचा दी मेरी । है बहुत ही चतुर नारी । फन्दे में आयेगी अवश्य, परन्तु देर से आयेगी ।”

पंडित संकटमोचन ने स्नान करके अपना गमछा बाँधा और फिर मंदिर के अन्दर से चन्दन घिसने का हुर्सा उठा लाये । वह चन्दन घिसने लगे और विद्यासागर कुए के पास बने चबूतरे पर उकड़ूँ बैठ गया ।

विद्यासागर बोला, “पंडित जी, एक बात कहूँ आपसे ?”

पंडित संकट मोचन सिहर उठे विद्यासागर की बात सुनकर; परन्तु अपने धैर्य और बड़प्पन को कायम रखकर उन्होंने कहा, “कहो सागर !”

“आपके इस मंदिर में यदि एक पाठशाला खोल दी जाय तो कैसी रहे ?” विद्यासागर ने कहा ।

पंडित संकटमोचन विद्यासागर की बात सुनकर अवाक् से रह गये और ताड़ गये कि यह धूर्त उनसे मंदिर को भी हथियाना चाहता है । उनके दिल में आग जल उठी, परन्तु ऊपर से मुस्कराते हुए ही मीठे शब्दों में बोले, “मंदिर देवी का है बेटा ! मेरा नहीं है । इसमें पाठशाला खोलने की आज्ञा भी देवी ही दे सकती हैं, मैं नहीं । मुझे क्या अधिकार है उनके भवन को पाठशाला के लिए देने का ?”

पंडित संकटमोचन के उत्तर को सुनकर विद्यासागर अवाक् रह गया । गाँव का मंदिर गाँव के बच्चों की पाठशाला नहीं बनाया जा सकता । मंदिर की देवी जब आज्ञा करें तभी वह सम्भव है और मंदिर की देवी आज्ञा करने क्यों लगी हैं ? वह तो पंडित संकटमोचन के संकेत पर नाचती हैं । मंदिर में पाठशाला खुल गई तो चरस की चिलमें कहाँ पी जायेंगी ? गाँजे के दम कहाँ लगाये जायेंगे ? ठंड्याई कहाँ घुटेगी ?

: ८३ :

विद्यासागर मंदिर से सीधा दूधशाला की ओर गया। दूधशाला में दूध दूहा जा रहा था। लता दूधशाला के द्वार पर बने कार्यालय के सामने घूम रही थी। सम्भवतः प्रतीक्षा में ही थी विद्यासागर की।

विद्यासागर को देखकर बोली, “आज बड़ी देर कर दी आपने आने में।”

“देर तो अवश्य हो गई कुछ कुमारी जी ! आज मैं देवी के मन्दिर की ओर निकल गया था।” विद्यासागर बोला।

“तो क्या कोई वरदान पाना चाहते थे आप भी देवी से ?” लता ने मुस्कराकर पूछा।

विद्यासागर हँसकर बोला, “चाहता तो वरदान ही था; परन्तु मिल नहीं सका। मैंने संकटमोचन से कहा कि यदि वह आज्ञा दे-वें तो मंदिर में बच्चों की पाठशाला खोल दी जाय। परन्तु साफ़ पेंतरा काट गया।”

लता मुस्कराकर बोली, “कहा होगा कि देवी के भवन को मैं कैसे दे सकता हूँ, देवी की आज्ञा के बिला। और देवी की आज्ञा पंडित संकट-मोचन की आज्ञा है।”

“बिलकुल यही हुआ कुमारी जी ! कैसी विचित्र बात है ? गाँव के पैसे से बना हुआ भवन गाँव के बच्चों को पढ़ने के लिए नहीं मिल सकता। संकटमोचन की बदमाशियों का अड्डा बना हुआ है वह।” दर्द के साथ विद्यासागर बोला।

“देवी और धर्म के नाम पर यह पंडित मंदिर का मालिक बन गया है। एक नम्बर का गुण्डा है, इसलिए कोई उलझता नहीं इससे।” लता बोली।

“परन्तु हमें तो उलझना ही होगा कुमारी जी ! संकटमोचन जमालपुर में सबसे बड़ी बीमारी है। वह वह सड़ा हुआ फोड़ा है जो नासूर बन गया है। उससे जो अङ्ग भी छूता है वही सड़ जाता है। इसे काटकर फेंकना होगा।

मैंने मंदिर में पाठशाला खोलने का केवल इसीलिए निश्चय नहीं किया है कि उससे सुन्दर अन्य कोई स्थान जमालपुर में है ही नहीं। यह निश्चय इसलिए किया है कि देवी का मंदिर ही गाँव की सब बुराइयों की जड़ है। जितने भी कु-षड्यंत्र गाँव में होते हैं उन सब की शिक्षा-दीक्षा यहीं से प्रारम्भ होती है।” विद्यासागर ने कहा।

“मैंने पिता जी के मुँह से कई बार सुना है कि जितनी भी चोरियाँ हमारे गाँव और आसपास के देहातों में होती हैं, उनके चोर रात का पहला बसेरा पंडित संकटमोचन के पास ही करते हैं। यह सब दरोगा जी की निगरानी में होता है।” लता बोली।

“यह सब मुझे पता है कुमारी जी ! गाँव में आने पर मैंने प्रथम प्रहार संकटमोचन और दरोगा जी की उसी चौकड़ी पर किया था और उसमें मुझे सोलह आने सफलता मिली। आपको आश्चर्य होगा सुनकर कि उस चौकड़ी के सरदार हमारे रामसिंह, कनकू और भूमन उस्ताद ही थे। इन्हीं के द्वारा गाँव भर में चोरी-चकोरी होती थीं।”

“हमारे रामसिंह, कनकू और भूमन के द्वारा ?” आश्चर्यचकित होकर लता ने पूछा।

“हाँ-हाँ ! आपके रामसिंह, कनकू और भूमन के द्वारा। परन्तु क्या जीवन ने पलटा खाय़ा है इन लोगों के कि आज लाख रुपये का प्रलोभन भी इन्हें चोरी पर उद्यत नहीं कर सकता।

रामसिंह, कनकू और भूमन को इनसे तोड़कर मैंने इनकी कमर तोड़ दी। इनकी आय का प्रधान साधन ही समाप्त कर दिया।”

कुमारी लता विद्यासागर के सरल मुख पर देखकर विश्वास नहीं कर पा रही थी कि इतनी सरलता के आवरण में ऐसी कूटनीति भी छिपी है।

वह सोच रही थी कि तभी दूध लेजाने वाली नगर की मोटर का हार्न सुनाई दिया और मोटर आकर दूधशाला के सामने खड़ी हो गई। उस पर दूध के डिब्बे और घी के बर्तन रखे गये।

मोटर चली गई और फिर दूधशाला में दूध बिलोने की दुहावनियाँ एक कतार में रखी गईं । एक-एक दुहावनी पर एक-एक स्त्री आकर बैठ गई और देखते-देखते कानों में घुमड़-घुमड़ का स्वर गूँजने लगा ।

एक साथ दूध बिलोती हुई औरतों ने गीत गाया—

आजा मेरे कान्हा,  
मैं दूध बिलोय रही ।  
तोकू द्यूंगी माखन मिसरी,  
तोकू द्यूंगी दूध मलैया ।  
आजा मेरे कान्हा,  
मैं दूध बिलोय रही ।  
तू राधा के संग आ जा,  
तू ग्वालों के संग आ जा,  
तू माखन मिसरी खा जा,  
तू दूध-मलैया खा जा,  
आजा मेरे कान्हा,  
मैं दूध बिलोय रही ।

लता और विद्यासागर संगीत की लहरों में बह गये । संगीत के मिठास से उनके होंठ चिपक गये । केवल देखते भर रहे वे थोड़ी देर एक दूसरे की ओर ।

तभी उन्होंने रुनकू, भुनकू और उनकी टोली को दूधशाला की ओर आते देखा । खाकी कमीज, खाकी नीकर पहने सब-के-सब गाते हुए इधर आ रहे थे—

हम वीर सिपाही ।  
आगे बढ़ते ही जायेंगे हम वीर सिपाही ।  
हम वीर सिपाही ।  
सबके सुख में सुखी रहेंगे,  
सबके दुख में दुखी रहेंगे,

हम बीर सिपाही,

आगे बढ़ते ही जायेंगे हम बीर सिपाही ।

आज रविवार का दिन था । शनिवार की संध्या को ये सब बच्चे अपने गाँव आ गये थे । सबने विद्यासागर और लता को प्रणाम किया ।

विद्यासागर बोला, “जाओ रुनकू, भुनकू अपने सब साथियों को आज मक्खन-मिसरी खिलाओ । शीला ने नगर से ढेर-की-ढेर मिसरी तुम्हारे लिए भेजी है और यहाँ कुमारी लता ने तुम्हारे लिए ढेर-का-ढेर मक्खन निकलवा कर रख दिया है ।”

बच्चे कूदते हुए दूधशाला में चले गये । उनके पीछे-पीछे विद्यासागर और लता भी अन्दर गये । घूमकर दूधशाला का कोना-कोना देखा । कमाल की सफाई थी । क्या मजाल जो किसी भी जानवर के नीचे गीला हो या उसकी खोर फूटी हुई हो ।

भूमन, कनकू और रामसिंह के कार्य की विद्यासागर ने प्रशंसा की, जिसे सुनकर तीनों फूलकर कुप्पा हो गये ।

ठीक दस बजे दूधशाला का कार्य समाप्त हुआ । अंत में लता ने सब को खुशखबरी दी कि उनकी माता जी ने अपना बीस हजार रुपये का हार दूधशाला के लिए दिया है । इतना कहकर उसने वह चमचमाता हुआ हार जो सरूपरानी के गले में दमदमाया करता था, विद्यासागर के हाथ में दे-दिया ।

विद्यासागर और सब खड़े-के-खड़े रह गये ।

लता मुस्कराकर बोली, “यह हार माता जी ने बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक दिया है । पिताजी की अनुमति से दिया है । आप में से किसी को भी संकोच नहीं होना चाहिए । यह हार और यह दूधशाला दोनों ही जमालपुर की सम्पत्ति हैं ।”

दूधशाला के सब सदस्यों ने सरूपरानी को उनके इस त्याग के लिए धन्यवाद दिया और विश्वास दिलाया कि उनका यह त्याग उनके ग्राम की उन्नति में बहुत बड़ा सहयोग देगा ।

: ८४ :

दूसरे दिन प्रातःकाल की गाड़ी से विद्यासागर और लता शहर गये । गाड़ी दस बजे पहुँची ।

शीला चारों नगर-केन्द्रों का निरीक्षण करके 'भारतीय सहयोग समिति' के कार्यालय में आ चुकी थी ।

अचानक विद्यासागर और लता को आते देखकर उनके स्वागत के लिए कार्यालय से बाहर निकल आई । उसका मन खिल उठा । एक माह का दौरा और नगर-केन्द्रों की व्यवस्था में पीछे शीला इतनी व्यस्त रही थी कि विद्यासागर को एक भी व्यक्तिगत पत्र न लिख सकी ।

तीनों कार्यालय में बिछी चाँदनी पर बैठ गये ।

शीला बोली, "आज अचानक ही कैसे आना हुआ ? सूचना भी नहीं दी पहले । सूचना देते तो क्या मैं स्टेशन से नहीं ला सकती थी आपको ?"

"ला क्यों नहीं सकती थीं शीला ! परन्तु यह तो आने का निश्चय ही कल हुआ और कल रविवार होने से पत्र नहीं लिखा जा सकता था ।"

लता मुस्कराकर बोली, "हम लोग गाँव के रहने वाले हैं शीला बहन ! स्टेशन से यहाँ तक पैदल आने में हमें दिक्कत नहीं हुई ।"

"आप लोगों की संगति में रहकर मैं भी सीखती जा रही हूँ दिक्कतों से भगड़ना लता बहन !" हँसकर शीला बोली, "और मुझे विश्वास है कि आपकी यह कला मुझे अवश्य आ जायगी ।"

शीला की बात सुनकर विद्यासागर और लता प्रसन्नता से खिल उठे । लता ने शीला को उसकी कार्य-व्यवस्था के लिए बधाई दी और फिर अपने शहर आने का आशय समझाया ।

तीनों व्यक्ति सलाह करके मनोरमा की कोठी पर पहुँचे और जब उनके सामने यह बात रखी गई तो वह मुस्कराकर बोली, "सरूपरानी

भाग्यवान हैं विद्यासागर जो तुमने उनका हार अपनी इस योजना के लिए स्वीकार कर लिया ।”

मनोरमा के इन शब्दों का अर्थ लता और शीला न समझ सकीं, परन्तु विद्यासागर को समझने में देर न लगी ।

वह मुस्कराकर बोला, “माता सरूपरानी के इस त्याग को मैं वास्तव में अपने ऊपर किया गया एक भारी उपकार समझता हूँ । आदमी न रहे, उसका काम रहे, इससे बड़ी प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है ?”

मनोरमा मुग्ध हो गई विद्यासागर का उत्तर सुनकर । वह कुछ और भी सुनना चाहती थी, परन्तु विद्यासागर के चुप हो जाने से मानो उसका स्वप्न ही टूट गया । और वह हार को हाथ में लेकर बोली, “किसी ने बड़े शौक से बनवाया होगा यह हार ।”

मनोरमा की बात सुनकर लता मुस्कराकर बोली, “जिसने शौक से बनवाया था उसी ने प्रसन्नतापूर्वक यह मेरे हाथों में दिया है ।”

मनोरमा ने लता के सरल चेहरे पर देखा और फिर कुछ ठहरकर बोली, “हार को बेचने की तबियत नहीं होती लता ! रानी जी का हार मेरे हाथों से बिके, यह मेरे लिए बहुत ही कष्टप्रद होगा ।”

मनोरमा की बात सुनकर लता मुस्करा दी । वह सतर्क होकर बोली, ‘भावुकता में न आओ जीजी ! माता जी ने यह हार प्रसन्नतापूर्वक दिया है । उनकी हार्दिक इच्छा है कि उनके हार का उपयोग गाँव की दूधशाला की समृद्धि के लिए हो ।’

मनोरमा श्रद्धापूर्वक बोली, “रानी जी के त्याग और सहयोग के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ ।” और इतना कहकर मनोरमा ने हार अपने हाथ में ले-लिया ।

हार को हाथ में लेकर तनिक देर पश्चात् मनोरमा बोली, “विद्यासागर जी यह हार यदि किसी रूपवती के गले में रहता है तो केवल



उसकी शोभा को बढ़ाता है, उसके रूप-रंग पर निखार लाता है, उसके सौंदर्य में आकर्षण पैदा करता है, जिससे वह अपने और अपने प्रेमी की दृष्टि में एक अनुपम सौंदर्य-छटा छिटका सके ।

परन्तु इससे कहीं बड़ा उपयोग इसका रानीजी ने प्रस्तुत किया है । सौंदर्य को आभूषण की दरकार नहीं । बनावटी सौंदर्य, सौंदर्य नहीं होता और सबसे अधिक सुन्दर वह तब होगा जब हार को बेचकर प्राप्त किये रुपये से सौ-दो-सौ गायें भेंसे खरीदकर जमालपुर की दूधशाला में लाई जायेंगी और उनके दूध को पीकर उनके मक्खन को खाकर जमालपुर का हर बच्चा हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर बनेगा । इस छोटे से हार का सौंदर्य पूरे जमालपुर पर छा जायगा । जमालपुर के रहने वाले हर व्यक्ति की नसों में रक्त के साथ उस सौंदर्य का संचार होगा और वह जमालपुर के रहने वालों के चेहरों की दीप्ति बनकर दमकेगा ।”

विद्यासागर, शीला और लता ने मनोरमा जीजी की बात बड़े ध्यानपूर्वक सुनी । विद्यासागर एकटक मनोरमा के चेहरे पर देख रहा था । उसे हार्दिक प्रसन्नता थी कि मनोरमा उसकी आत्मा को पहचानती जा रही है ।

विद्यासागर बोला, ‘आभूषण फूलों के होने चाहिएँ मनोरमा जीजी ! इन धातु के आभूषणों ने सुन्दर और कोमल हृदयों को भी अपने सम्पर्क में रखकर अपने जैसा ही बना लिया है । अपना आवरण ऐसा बिछा दिया है कि बेचारा हृदय उसमें लिपट कर रह गया ।”

विद्यासागर की बात मिसरी की डली की तरह तीनों देवियों के मन में घुल गई । तीनों एक ही वर्ग की थीं और तीनों का ही कीमती हारों से सम्बन्ध था । ‘हार’ और ‘कार्य’ की उपयोगिता भी थी तीनों के सामने थी ।

तीनों ने विद्यासागर के चेहरे पर गम्भीरतापूर्वक देखा । वह सरल था वैसा ही जैसा सर्वदा रहता था । परन्तु इन तीनों को लगा कि वह कार्य के लिए तीनों के ‘हार’ मांग रहा है । केवल सरूपरानी के हार को ही पाकर उसकी अधा शांत नहीं हई ।

विद्यासागर हँसकर बोला, “बहुत दूर नहीं है वह दिन मनोरमा देवी जब आपके पति नरेश मेहता आपको जनरल बुक्स का प्रकाशन करने से रोकेंगे और आपको अपना निश्चय कार्यान्वित करने के लिए अपना हार भी बेचना होगा। क्योंकि केश रुपया मेहता साहब की आज्ञा के बिना आप इस्तेमाल नहीं कर सकतीं।”

मनोरमा मुस्कराकर बोली, “विद्यासागर तुम सचमुच ही बहुत बुरे हो। दूसरों के घर की बातें ताड़ लेते हो। यह अच्छी बात नहीं है।”

मनोरमा की बात सुनकर शीला और लता मुस्करा दीं।

विद्यासागर बोला, “दूसरों के घर को दूसरों का घर समझ लूँ तो शायद कुछ भी समझ में न आये। परन्तु गलती तो यह हो रही है कि उस दूसरों के घर को मैं दूसरों का नहीं समझता।”

“तब क्या समझते हो तुम?” मनोरमा ने पूछा।

“मैं उन्हें अपना घर समझता हूँ। उनकी प्रत्येक वस्तु की सुरक्षा अपना कर्तव्य समझता हूँ। उनके हर व्यक्ति की संतुष्टि करना अपना धर्म समझता हूँ।”

: ८५ :

हार पंद्रह हजार का बिका। नरेश मेहता ने एक घंटे में ही उसके रुपये खरे करा दिये और इतने बड़े सौदे में दो हजार का लाभ उन्होंने व्यक्तिगत भी कर लिया।

मेहता साहब का उसूल था जीवन का कि आदमी को कोई भी ट्रांजेक्शन (आदान-प्रदान) बिना लाभ के नहीं करने चाहिए।

काम हो जाने पर विद्यासागर और लता खड़े होते हुए बोले, “अच्छा जीजी अब आज्ञा दो। हमें आज ही गाँव में पहुँच जाना है। गाँव की स्थिति बड़ी खराब है। दो आदमी तमाम गाँव की जिंदगी में विष घोल रहे हैं। उनके प्रभाव को हर समय रोकने की आवश्यकता रहती है।”

मनोरमा बोली, “कौन हैं वे लोग जो जीने नहीं देते गाँव के लोगों को ? यदि आवश्यकता समझो तो कलक्टर साहब से मिलूँ इसके विषय में । बेचारे बड़े ही नेक हैं । अभी कल ही एक पार्टी में उनसे भेंट हुई थी । कह रहे थे कि किसी भी जन-हित के कार्य में यदि उनके किसी सहयोग की दरकार हो तो निस्संकोच भाव से मैं उनके पास जा सकती हूँ ।”

विद्यासागर बोला “अभी ऐसी बात नहीं है कुछ जीजी ! चिउंटी को मारने के लिए मकड़ी काफ़ी है, शेर को लाना व्यर्थ है । हाँ दूतना आप कर सकती हैं कि जब नई भैंसे हमारी दूधशाला में आ जायेंगी तो दूधशाला का नये रूप से उद्घाटन किया जायगा । मैं चाहूँगा कि उसका उद्घाटन कलक्टर साहब स्वयं अपने हाथ से करें ।”

“उन्हें बहुत प्रसन्नता होगी इस कार्य से, मैं कल ही उनसे बातें करके पत्र लिख दूँगी तुम्हें । तुम निश्चित रहो इस ओर से ।” मनोरमा बोली ।

समय होता जा रहा था ट्रेन का । लता ने घड़ी देखी । शीला समझ कर बोली, “चिंता न करो, मैं जो खड़ी हूँ यहाँ । ट्रेन पर समय से पहुँचाने का दायित्व मेरा है ।”

मनोरमा देवी खड़ी होती हुई विद्यासार को एक ओर ले जाकर बोली, “उपन्यास कहाँ तक पहुँचा तुम्हारा ? मैं प्रतीक्षा में हूँ कि ज्यों ही वह समाप्त हो त्योंही उसे प्रेस में भेजूँ । मैं निश्चय कर चुकी हूँ प्रकाशन प्रारम्भ करने का । मेहता साहब कहते हैं कि मैं जनरल बुक्स के प्रकाशन में भूलकर भी न पड़ूँ । मुझे लेखकों के स्वतंत्र निर्वाह का रास्ता नहीं खोलना चाहिए । इनके पेट भरने लगेंगे तो इनके मुँह जानती हो कितने लम्बे-चौड़े फँल जायेंगे ?

परन्तु मुझे इन सब बातों से जाने क्यों घृणा-सी उत्पन्न होती जा रही है । मैं दृढ़ निश्चय कर चुकी हूँ कि मैं यह कार्य करूँगी । इसे न करना मेहता साहब से हार मानना होगा । विवाह के पश्चात् से आज तक

वह मेरी कला को व्यवहार के हथौड़े से कूट-पीटकर दबाते रहे हैं, परन्तु अब मन विद्रोह करने लगा है ।

मेरा सामाजिक कार्यों में भाग लेना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता ।”

विद्यासागर ने गम्भीरतापूर्वक मनोरमा की बात सुनी और कहा, “मैं अब उपन्यास को शीघ्र ही समाप्त करने वाला हूँ । आपको साहित्य-प्रकाशन की पूरी योजना बनाकर दूंगा । उसकी सफलता का पूरा उत्तर-दायित्व अपने अपर लूंगा और देखूंगा कि भारत में जनरल बुक्स का प्रकाशन क्यों सफल नहीं होता ?

दुनियाँ में अधिकांश व्यक्ति ऐसे होते हैं जो दूसरों की पकी-पकाई को ही खाना पसंद करते हैं । ऐसे कम लोग हैं जो अपना रास्ता स्वयं बनाते हैं । हम अपना रास्ता स्वयं बनायेंगे । ठेकेदारी नहीं करेंगे । किसी उद्योग को उद्योग की तरह अपनायेंगे और मेहनत करके ईमानदारी से उसे कामयाब बनायेंगे ।”

मनोरमा को विद्यासागर के आश्वासन से बड़ा भारी बल मिला ।

तभी शीला पास आकर बोली, “समय हो गया ट्रेन का ।”

“चलो शीला ! लता को गाड़ी में बिठाओ, मैं आया ।”

शीला चली गई ।

विद्यासागर बोला, “चिंता न करना जीजी किसी बात की । मैं अकेला हजार के बराबर हूँ ।”

मनोरमा ने विद्यासागर के चेहरे पर देखा । वंसा ही सरल, परन्तु उसके होठों ने आज यह क्या कह दिया ? ‘मैं अकेला हजार के बराबर हूँ ।’ ये शब्द मनोरमा के कानों में गूँजते ही रहे और विद्यासागर बिदाई का नमस्कार करके लता के पास कार में भी जा बैठा ।

कार चली गई और मनोरमा उसी तरह खड़ी रही । सोचती रही, विचारती रही । चलते समय तक विद्यासागर के नेत्र चमेली को खोजते रहे, परन्तु वह स्कूल से आई ही नहीं आई ।

: ६६ :

विद्यासागर और लता संध्या को गाँव में पहुँचे तो वहाँ और ही गुल खिला हुआ था। थानेदार वीरेन्द्रकुमार तहकीकात को गाँव में आये हुए थे। चौधरी रूपसिंह की चौपाल पर मूढ़ा डाले बैठे थे।

लता और विद्यासागर को आते देखकर बोले, “मेहमान घर पर आये हुए हैं और आप लोग सैर-सपाटे में हैं।”

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “सैर-सपाटे में तो नहीं गये थानेदार साहब ! गये तो काम से ही थे।”

थानेदार वीरेन्द्रकुमार हँसकर बोले, “तुम लोग काम से बाहर चले गये और यहाँ के बदमाशों को अवसर मिल गया। कल गऊशाला के सात जानवरों को किसी ने जहर दे दिया।”

“जहर दे दिया !” चकित होकर विद्यासागर ने कहा। “किस हत्यारे ने यह कुकर्म किया ?”

“अभी कुछ पता नहीं चल सका।” थानेदार बोले।

तभी सामने से कनकू, भूमन और रामसिंह आते दिखाई दिये। विद्यासागर और लता को देखकर उनकी जान-में-जान आ गई। वे घबरा रहे थे, कि थानेदार से कैसे बातें करेंगे।

रामसिंह, कनकू और भूमन के चेहरे उदास थे। चेहरों पर ऐसा मातम छाया हुआ था मानो उनके किसी निजी आदमी की मृत्यु हो गई हो।

विद्यासागर ने पूछा, “क्या बात हुई भूमन पहलवान ? यह सब कैसे हुआ ?”

भूमन रुंधे गले से बोला, “कैसे भया सागर भय्या कहा कहूँ। दिनन का फेर हैं। रामजी भी गरीबन का सुख नाँय देख सकत।”

थानेदार वीरेन्द्रकुमार बोले, “लेकिन तुम्हारा शक किस पर है ? आखिर किसी ने तो यह काम किया ही है।”

“करा तौ जरूर है थानेदार साब । नाँय तौ अच्छी-खासी मोटी-ताजी भैंसन कू कहा सामत आय रही ही । हम तौ यू ही कहैं हैं थानेदार साब अक जानै इन बेजबान जानवरन कू जहर दया है बाके बाल-बच्चा याही तरयाँ तड़प-तड़प कै मरें।” माथा पकड़ कर चौपाल की मुंडेर पर उकड़ू बैठते हुए भूमन पहलवान ने कहा ।

तभी सामने से माथे पर लम्बा-चौड़ा देवी का सिंदूरी तिलक दिये पंडित संकटमोचन आते दिखाई दिये । थानेदार ने उन्हें बुलवाया था । उनके पीछे-पीछे पुलिस का सिपाही था ।

उन्हें आते देखकर थानेदार वीरेन्द्रकुमार कड़क कर बोले, “ऐ पंडित ! इधर आओ ।”

“आया थानेदार साहब !” सटपटाकर जरा अपने गमछे को संभालते हुए पंडित संकटमोचन बोले और बड़ी कठिनाई के साथ चौपाल की सीढ़ी पर चढ़े ।

सामने आने पर थानेदार साहब ने लाल-पीली आँखें निकाल कर पूछा, “क्यों पंडित ! तुम्हें पता है कि कल तुम्हारे मंदिर के सामने सात भैंसें कैसे मर गईं ?”

“देवी की सौगंध खाकर कहता हूँ थानेदार साहब ! मैं तो कल गाँव में था ही नहीं । पड़ौस के एक गाँव में देवी की कथा थी, उसमें गया हुआ था ।” पंडित संकट मोचन गिड़गिड़ाकर कर बोले । उनका तमाम शरीर काँप रहा था और मस्तक पर पसीना आ गया था ।

“काँप रहे हो पंडित ! पसीना क्यों आ रहा है तुम्हें ?” थानेदार साहब ने पूछा ।

पंडित संकटमोचन की गलत बयानी सुनकर रामसिंह पर न रहा गया । वह आँखें लाल करके पंडित संकटमोचन की ओर देखता हुआ बोला, “पंडत जी ! झूठ काहे कू बोलत हो । तम तौ कल-ही-कल मैं मैने चार बिरियां देखे हो । हम जब मरी भैंसन कू ढोय कै ल्याय रहे हे तौ तम मंदिर में ही सुलफा उड़ावत हे ।”

रामसिंह की बात सुनकर पंडित संकटमोचन के होश फ़ाख़्ता हो गये। वह घबरा उठे और उसी घबराहट में बोले, “मेरा कोई दोष नहीं है थानेदार साहब !”

“तो फिर किसका दोष है पंडित जी !” ज़रा थपथपाते हुए थानेदार साहब बोले। “आप तो धार्मिक आदमी ठहरे। ऐसा पाप आप भला कैसे कर सकते थे ? परन्तु आपको मालूम पूरा-पूरा है कि यह कार्य किया किसने ? ठीक-ठीक बतला दोगे तो हम तुम्हें क्षमा कर देंगे।”

पंडित संकटमोचन थर-थर काँप रहे थे। उनकी तौंद हिल रही थी और उस पर पड़ा मोटा जनेऊ जो मैल से काला-किष्ट हो गया था काले नाग के सपोलिये की तरह लहरा रहा था।

पंडित जी गिड़गिड़ाकर बोले, “आपने मुझे क्षमा करने का आश्वासन दे दिया है तो देवी की शपथ लेकर सच-सच कहता हूँ कि यह कार्य मेरे ही हाथों से हुआ है। परन्तु किया मैंने यह सब बंदूक की नाल के सामने खड़े होकर है।”

“वह कैसे ?” थानेदार वीरेन्द्रकुमार ने पूछा।

“वह ऐसे सरकार कि दरोगा जी ने कह दिया था कि पंडित संकटमोचन अगर तूने यह काम नहीं किया तो देख लेना एक दिन इस मंदिर में तेरी लाश ही पड़ी पायेगी। और फिर पीछे से अपनी दुनाली बंदूक दिखाकर कहा था,—आज दरोगा न रहा सही, पर दरोगा की बंदूक तो है मेरे पास।” पंडित संकटमोचन ने कहा।

थानेदार वीरेन्द्रकुमार चौधरी रूपसिंह की ओर देखकर बोले, “सुना कुछ आपने चौधरी साहब ! यह खड़े हैं आपके सामने मंदिर के पुजारी जिन्होंने अपने हाथ से गांव की सात दूध देने वाली भैंसों को विष देकर मार दिया और वह हैं आपके भाई साहब दरोगा जी जिन्होंने बंदूक की धमकी देकर इनसे यह कुकर्म कराया।”

पंडित संकटमोचन का बयान नोट करके उस पर उनके हस्ताक्षर

ले लिये । गवाही में रामसिंह, भूमन और कनकू के अंगूठे लगवा लिये । विद्यासागर और लता ने भी हस्ताक्षर कर दिये ।

चौधरी रूपसिंह की हस्ताक्षर करने की बारी आई तो वह तनिक ठिठके और उनके ठिठकने को ताड़कर थानेदार साहब मुस्कराकर बोले, “आपके हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं है चौधरी साहब ! आप दरोगा जी के भाई हैं । यह भी सम्भव है कि आपको उनकी जमानत करनी पड़े ।”

अपनी कार्यवाही पूरी करके थानेदार साहब ने विदा ली और विद्यासागर उन्हें छोड़ने के लिए गांव से बाहर तक गया ।

रास्ते में थानेदार साहब बोले, “बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है विद्यासागर जी ! दरोगा का सिर फिर गया है । शराब पीने का बेहद धत्ती था वह, अब एक बूंद भी नहीं मिलती । देसी शराब जो कनकू खींचता था, उसका भी रास्ता आपने बन्द कर दिया । पिछली फसल में जमीन भी परती पड़ी रही । एक खूट नहीं जुता, एक खेत नहीं बीजा गया और एक छटाँक अन्न पैदा नहीं हुआ । पुलिस की दलाली का काम भी ठप्प हो गया । अब क्या करें दरोगा जी ? परेशान हैं बेचारे । और परेशानी में ही आदमी व्यर्थ के भगड़े मोल लेता है ।

इसलिए बचकर रहिए आप । और मेरी तो सलाह यह है कि आप कुछ दिन के लिए शहर चले जायें । इसी बीच में मैं इनकी बन्दूक का लाइसेंस जन्त करा दूंगा । आज ही इन पर मुकदमा कायम करके चालान भेजता हूँ ।”

विद्यासागर ने कृतज्ञतापूर्वक थानेदार वीरेन्द्रकुमार की ओर देखा और वीरेन्द्रकुमार ने उनकी ओर । वीरेन्द्रकुमार विद्यासागर की नज़रों को पढ़ते हुए बोले, “कोई कायरता की बात नहीं है यह । बुद्धिमत्ता की बात है । मकान गिरने की सूचना पाकर गिरने से पूर्व उससे बाहर निकल जाना कायरता नहीं है ।”



कहकर थानेदार बीरेन्द्रकुमार घोड़ी पर चढ़ गये और मुस्कराकर बोले, “अच्छा विद्यासागर जी ! परन्तु मेरी बात यों ही कान पर से न उतार देना ।”

इतना कहकर उन्होंने घोड़ी को एड़ लगा दी ।

: ६७ :

थानेदार बीरेन्द्रकुमार चले गये और विद्यासागर वहीं खड़ा रह गया । वह सोचता ही रहा कि यदि दरोगा जी इतने खूँखार हो गये हैं तो उसे क्या करना चाहिए ? क्या वाकई थानेदार साहब की नसीहत मानकर शहर के लिए भाग खड़े होना चाहिए ?

यही सोचता-सोचता विद्यासागर लता की ओर चल पड़ा । रास्ते में लाला चोखेराम की हबेली पड़ती थी । लाला चोखेराम अपनी दुकान की गद्दी पर आलथी-पालथी मारे बैठे थे । गोल पकौड़े-जैसे उनके नथने बार-बार फूलते और पिचकते थे । गोल-गोल आंखें मोटे चश्मे के नीचे छिपी हुई बिल्ली-जैसी मालूम होती थीं ।

लाला दूर से ही विद्यासागर को देखकर खड़े हो गये और बोले, “आओ सागर ! आज इधर कैसे भूल पड़े ?”

विद्यासागर एक क्षण ठहरा और बोला, “घर जा रहा हूँ इस समय ! समय ठहरने का नहीं है । कुछ आवश्यक काम करने हैं ।”

“बड़े व्यस्त रहते हो सागर ! सुना भी कुछ तुमने ?

“क्या ?” जानकर भी विद्यासागर ने पूछा ।

“जमालपुर में ऐसा अधरम पहलै कभी नहीं हुआ । बिचारे बेजुबान जानवरों से क्या दुश्मनी ? दुश्मनी ही निकालनी हो तो अपने बराबर के से निकाले ।” लाला चोखेराम बोले ।

“मैं मतलब नहीं समझा आपका । अभी-अभी शहर से आ रहा हूँ । कहिये तो सही, क्या बात हुई ? आप तो कुछ राज की सी बातें खोल रहे हैं ।” विद्यासागर ने ऊपर से सरल मुखाकृति करके पूछा ।

“तो क्या सचमुच तुमको कुछ पता नहीं। कल तुम्हारी दूधशाला की सात भैंसों को किसी ने चून में मिला के जहर खिला दिया।

मैं तो कहूँगा बड़ा पाप करा है खवाने वाले नैं।” गम्भीर मुँह बनाकर लाला चोखेराम बोले।

विद्यासागर ने घबराहट की मुखाकृति बनाकर कहा, “यह तो बहुत बुरा हुआ लाला जी ! जिन गरीबों की वे भैंसें होंगी उनका तो चौपट ही कर दिया करने वाले ने।

पर मिला क्या उसे यह समझ में नहीं आया।”

विद्यासागर के सरल मुख को देखकर आंखें मटकाते हुए लाला गाल में गिलौरी दबाकर सरोते से छालियाँ काटते हुए बोले, “मिला क्या, यह तू क्या जाने सागर ? जिनकी आमदनी के जरिये तैनें मलियामेट कर दिये, वे क्या बाज आने वाले हैं अपनी करतूतों से। आखिर वे भी तो कुछ कम नहीं हैं किसी से ?”

“किसकी बातें कर रहे हैं आप ! मैं तो समझा ही नहीं कुछ। मेरा तो सिर चकरा है।” विद्यासागर बोला।

“सिर चकराने की तो बात ही है सागर।” हलकी बेमालूम सी मुस्कराहट होठों पर लाते हुए लाला चोखेराम बोले। “मेंढकी को तौ तकवे का दाग ही काफी है।” कहकर गम्भीर दृष्टि से सागर के चेहरे पर देखा।

“परन्तु यह सब किया किसने ? आप गाँव के पुराने तज्जुरबेकार हैं। हर आदमी की नस-नस को पहचानते हैं। क्या-कुछ छिपा है आप से ?” विद्यासागर बोला।

अपनी योग्यता की प्रशंसा सुनकर लाला चोखेराम ज़रा सुधर कर बैठ गये और बोले, “बैठ जा सागर ! थक गया होगा स्टेशन से आता हुआ रास्ते में।”

विद्यासागर दुकान की चौखट पर बैठ गया।

लाला चोखेराम आँखें मटककर बोले. “ठीक-ठीक किसने जहर दिया यू तो भगवान् ही जाने, पर मेरा शुभा यू है अक इसमें चौधरी रूपसिंह का हाथ जरूर है। देख नहीं रहे हो, इस फसल में एक दाना भी नहीं हुआ। यह सब तेरी ही तो कारस्तानी है।

अपने नुकसान कू देखकें किसका जी नहीं दुखता।”

विद्यासागर ने लाला चोखेराम की बात को शर्वत के घूँट की तरह पी लिया। चेहरे से किसी प्रकार का भी भाव प्रकट नहीं होने दिया। और फिर गम्भीरतापूर्वक पूछा, “तो आपका शुभा चौधरी रूपसिंह पर है?”

“सोलह आने।” मटककर सीधे हाथ की मुट्ठी बाँधते हुए लाला चोखेराम ने कहा।

विद्यासागर बोला, “और दरोगाजी के विषय में आपका क्या विचार है? दाना तो उनके खेतों में एक नहीं हुआ?”

दरोगाजी का नाम विद्यासागर के मुँह से सुनकर लाला चोखेराम दाँत निकालकर सरलता प्रदर्शित करते हुए बोले, “राम-राम कहो, सीताराम-सीताराम कहो। दरोगा की चाहे तुम से कितनी ही रंजिस क्यूँ ना हो ऊ ऐसा काम कभी नहीं कर सकता। दोनों टैम पूजा करता है देवी की। पंडित संकटमोचन के खास भक्तों में से है।”

“और आप कितने टैम पूजा करते हैं?” विषय बदल कर विद्यासागर ने प्रश्न किया तो लाला चोखेराम तिलमिला उठे।

अन्दर-ही-अन्दर घबराहट सी लेकर बोले, “मैं तो सागर एक ही बेर करूँ हूँ और ऊ भा कभी-कभी भूल जाऊँ हूँ। दरसल बात यू है अक जो कुछ भी मैं करूँ हूँ ललवाइन के डर से करूँ हूँ।”

दुकान के पीछे पड़ी चिक के अन्दर से ललवाइन ये सब बातें सुन रही थी। वह चिक उठाकर बाहर आती हुई हँसकर बोली, “तू तो रीटी भी मेरे ही डर से खावेँ शै और पाणी भी मेरे डर से पीवेँ शै।”

ललवाइन की बात सुनकर विद्यासागर को हँसी आ गई और वह

उठकर बोला, “अच्छा अब मैं जा रहा हूँ । फिर भेंट होगी । लेकिन इस बार जब मिलो तो पूरी जानकारी के साथ मिलना ।” कहकर विद्यासागर चल पड़ा ।

: ६८ :

विद्यासागर लता को साथ लेकर दूधशाला में गया । वहाँ सब लोग उसके चारों ओर एकत्रित हो गये ।

विद्यासागर बोला, “हमारी सात भैंसें न रहें, इसकी आप लोग चिंता न करें । कल ही रामसिंह और भूमन पहलवान नई सौ भैंसें खरीदने जा रहे हैं । उनमें से सात भैंसें उन सात लोगों को मिल जायेंगी जिनकी भैंसें मानवता के इस संघर्ष में काम आ गई ।”

विद्यासागर की बात सुनकर सबके चेहरे खिल उठे । उन पर जो शोक के बादल छाये गये थे वे फट गये । उनके सामने सूर्य था और वे सब उसके प्रकाश में खड़े थे ।

लता को सबने माता के रूप में देखा और विशेष-रूप से उन सात व्यक्तियों ने जिनकी भैंसें जहर खाकर मर गई थीं ।

इसके पश्चात् विद्यासागर और लता विद्यासागर के मकान पर पहुँचे । रामभगत अपने वही पुराने कपड़ा बुनने के कार्य में संलग्न था । रामदुलारी घर में नहीं थी, कहीं गई हुई थी अपने आसामियों में ।

विद्यासागर ने थानेदार वीरेन्द्रकुमार की बातें एकांत में जाकर लता से कहीं और बोला, “क्या यह कायरता नहीं है इस तरह खतरे को देखकर भाग खड़ा होना ?”

“परन्तु जलती भट्टी में व्यर्थ पैर डालना भी तो बुद्धिमत्ता नहीं है । आग बुझती जा रही है । लकड़ियाँ उसमें शेष नहीं रहें; परन्तु भूभल भी इतनी गर्म है कि पैर भुलसा सकती है । तो फिर क्यों उस भूभल से खिलवाड़ की जाय ? उसे शीतल हो लेने दीजिये । फिर मजे मजे में उस पर पैर रखकर चलना ।”

“तो आपकी अनुमति है कि मैं शहर चला जाऊं ?” विद्यासागर ने पूछा ।

“पूरी-पूरी ! आपकी अनुपस्थिति में मैं भी देखूँ कि अकेली सब कार्य चला सकती हूँ अथवा नहीं ।” लता ने कहा ।

“चला क्यों नहीं सकतीं तुम ?” विद्यासागर बोला, तुम्हारी सहायता के लिए रामसिंह, कनकू और भूमन हैं । फिर मैं भी कुछ दूर नहीं हूँ । जब चाहो, मेरे पास आकर विचार-विनिमय कर सकती हो ।”

विद्यासागर दूसरे दिन सुबह शहर जाने के लिए तैयार हो गया । उसने अपना भोले में दो कमीज एक धोती और एक तौलिया रख लिया ।

ठीक उसी समय सामने से संकटमोचन गिड़गिड़ाते हुए आते दिखाई दिये । पंडित संकटमोचन की दशा देखकर लता को हँसी आ गई ।

पास आने पर विद्यासागर बोला, “कहो पंडित, कैसे हाल-चाल हैं ? अब क्या कोई नया षड्यंत्र रचकर आये हो ?”

संकटमोचन गिड़गिड़ाकर बोला, “सागर क्षमा कर दो मुझे । मैंने बड़ा पाप किया है ।”

“तुमने मेरी कोई हानि नहीं की पंडित ! भगवान् के सात जीवों की हत्या की है सो अपने भगवान् या देवी माता से क्षमा मांगो । हानि तो तुमने उनकी की है ।” मुस्कराते हुए विद्यासागर ने कहा ।

लता बोली, “लेकिन पंडित जी, मैं आपको इतना नीच कभी नहीं समझती थी कि आप अपने तुच्छ स्वार्थों के लिए इस प्रकार जीव-हत्या भी कर सकते हैं ।”

लता की बात सुनकर विद्यासागर बोला, “जीव-हत्या ? और सात भँसों की, यह तो मामूली बात है पंडित संकटमोचन के लिए । ऐसे समझिये जैसे सात चिऊँटियों को पैर के नीचे कुचल दिया । इनके असल

कारनामे तो आपको पता ही नहीं हैं कुमारी जी !” और फिर जरा पंडित संकटमोचन के दिल को दहलाने के लिए जोरदार शब्दों में बोला, “परन्तु पुलिस के रजिस्टर में वे सब दर्ज हो चुके हैं। उन रजिस्ट्रों के जो स्थान कनकू, भूमन और रामसिंह के नाम कटने से खाली हुए थे आखिर उनकी तो पूर्ति होनी ही चाहिए थी वरना बड़े-बड़े अफसर बेचारे थानेदारों के कान में ठकराते—क्या काम हुआ तुम्हारे इलाके में ? कोई नया नाम दस नम्बरियों में दर्ज नहीं हुआ। कोई नया हादसा रोज़नामचे में दर्ज नहीं किया गया। चोरी-चकोरी, डकैती के मुकदमे नहीं भेजे अदालत को। ऐसा ठंडा काम करोगे तो रिवर्ट करके लाइन-सुपुर्द कर दिए जाओगे। अपने काम में सर गमीं लाने के लिए बेचारे थानेदारों को भी कुछ-न-कुछ करना ही होता है।”

विद्यासागर ने यह बात इतनी गम्भीरतापूर्वक कही कि पंडित संकटमोचन का दिल बैठने लगा। उन्हें सर से पैर तक पसीना आ गया। उनका तमाम बदन काँप रहा था।

किसी ने देखा भी नहीं कि ये सब बातें विद्यासागर के पीछे खड़ा रामभगत भी सुन रहा था और रामप्यारी अभी-अभी बाहर से आकर दुबारी में खड़ी हो गई थी, उसने भी सब कुछ सुना।

रामभगत बोला, “सागर तू या बिरियाँ संकटमोचन कू कैसे ही बचाय लें। अब यूँ ऐसा नीच काम कधी नांय करे।”

विद्यासागर ने सरलतापूर्वक रामभगत की ओर देखा और बोला, “पिताजी, आपको क्या पता कि दुनियाँ किधर को बह रही है। सुबह पूर्व में सूरज निकलता है और आप अपनी खड़ी पर आ खड़े होते हैं। संध्या को सूरज डूबता है तो खटिया पर कमर लगा लेते हैं। इसके अलावा आप कुछ नहीं जानते। परन्तु हमारे पंडित संकटमोचन हरफनमौला हैं। इन्हें मैं क्या बचा सकता हूँ ? मैं तो स्वयं ही इनसे बचना चाहता हूँ। पता नहीं कितनी रक्त की भरी हाँडियाँ यह मेरे ऊपर छोड़ चुके हैं और इनके जितने भी पूर्वज आज तक मरे हैं उन सबको इन्होंने मेरे

ऊपर छोड़ा हुआ है। परन्तु मैंने भी सभी को पछाड़ने की कसम खा ली है।”

रामप्यारी विद्यासागर की बात सुनकर दहल उठी और पंडित संकटमोचन से सिंहनी की तरह गरज कर बोली, “क्यूँ रे पंडित के बच्चा ! तू तौ कहत हा अक तू सागर की रच्छा करत है और तू बाकी रच्छा के लैयों पूजा करत है। अब यू कहा सुन रही हूँ मैं ?”

लता को हँसी आ गई यह सुनकर। वह बोली, “पंडित जी, आप भी खूब आदमी निकले। ताऊ दरोगा जी के कहने पर आपने हमारी सात भैंसें मार दीं। इस प्रकार आप दूसरों के कहने से कुछ भी कर सकते हैं।”

“इसमें कोई संदेह नहीं लता ! पंडित संकटमोचन को देवी का वरदान प्राप्त है। यह सब कुछ कर सकते हैं। औरतों के हमल गिरवा सकते हैं, गाँव की बहू-बेटियों को भगवा सकते हैं, मरवा सकते हैं, उन्हें जहर दे सकते हैं अपने हाथ से।” गम्भीरतापूर्वक विद्यासागर ने कहा।

विद्यासागर की बात सुनकर पंडित संकटमोचन अपना सिर पकड़ कर जमीन पर बैठ गये। एक शब्द भी उनकी ज़बान पर न आया।

लता विद्यासागर के चेहरे को देखती ही रह गई। रामप्यारी और रामभगत की समझ में भी कुछ न आया।

विद्यासागर बोला, “देर हो रही है कुमारी जी !”

लता और विद्यासागर बिना किसी से कुछ कहे चल दिये। रामभगत और रामप्यारी ने यह भी न पूछा कि, “कहाँ और कब तक के लिए जा रहे हैं ?”

पंडित संकटमोचन आँखें फाड़कर विद्यासागर को ताकता रहा और अन्त में पछाड़ खाकर गिर पड़ा। बकता रहा न जाने क्या-क्या।

रामभगत घबराकर उन्हें संभालने के लिए आगे कौ बढ़ने लगा तो रामप्यारी ने उसकी कलाई पकड़कर कहा, “कहा करत हो तम। देवी माता आय गयी हैं पंडित जी के सिर पे। तम नाहक परेसान मत हो।”

: ६६ :

विद्यासागर प्रातःकाल लता से बोला, “मुझसे पीछे तनिक भी घबराने की आवश्यकता नहीं है। मैं आज ही संध्या को मनोरमा जीजी के साथ जाकर कलक्टर साहब से मिलूंगा। उन्हें पूरी स्थिति का ज्ञान करा दूंगा। लाला चोखेराम की इस काम में पूरी-पूरी साजिश है। वह, दरोगा जी और संकटमोचन—एक हैं तीनों। अब ये किसी तरह भूमन पहलवान को फोड़ने का प्रयत्न करेंगे। लाला चोखेराम अपनी ललवाइन से रामसिंह पर प्रभाव डालेंगे; परन्तु रामसिंह पर मेरा पूरा विश्वास है कि वह टस-से-मस होने वाला नहीं है। कनकू भी नहीं हिलेगा। भूमन पहलवान सीधा आदमी है और शराब का रंग उस पर चढ़ सकता है।”

“तब क्या भूमन पहलवान पर आपका विश्वास नहीं है?” लता ने पूछा और वह तनिक घबराकर बोली, “मामला बड़ा तिरछा होता जा रहा है विद्यासागरजी!”

विद्यासागर हँसकर बोला, “रास्ता है यह तो कुमारी जी! इस पर चलकर घबराने से काम नहीं चलता। कहीं सीधा, कहीं तिरछा, कहीं साफ़, कहीं पथरीला और भाड़-भंकाड़ वाला होगा। परन्तु साफ़ करते चलेंगे, हम सब मिलकर। चिंता की कोई बात नहीं है। भूमन पहलवान को मैं अपने साथ शहर ले जा रहा हूँ। वह मेरे पास ही रहेगा तब तक। उसका काम तुम रामसिंह के सुपुर्ब कर देना।”

चलते-चलते दोनों दूधशाला के द्वार पर पहुँच गये।

वहाँ जाकर क्या देखा कि दरोगा जी खड़े थे। वह लता और विद्यासागर को देखकर सहम से गये।

विद्यासागर दरोगाजी की ओर देखकर मुस्कराता हुआ बोला, “कंसा सौभाग्य है हम सब लोगों का कि दरोगा जी भी हमारी दूधशाला को देखने के लिए पधारे हैं! इससे प्रसन्नता का अवसर और क्या हो सकता है?”



दरोगा जी अपने को सँभाल कर बोले, “सागर वाकई तुमने जमालपुर में यह बहुत अच्छा काम किया है। मैं तो सचमुच ही बहुत खुश हूँ तुम्हारे इस काम से।”

“होना ही चाहिए। आप जैसे बजुर्ग भी यदि प्रसन्न न होंगे तो और कौन होगा ?” दिल से दरोगा जी की मक्कारी को पहचान कर भी ऊपर से मीठे ही शब्दों में विद्यासागर बोला। “आप लोगों के आशीर्वाद की आवश्यकता है हमें। वह यदि हमें मिलता रहा तो यह काम और भी बड़े पैमाने पर चल निकलेगा और एक दिन वह आयेगा जब जमालपुर की काया ही पलट जायेगी।”

“इसमें क्या शक है।” अपनी मूर्खें उमेठते हुए दिल में भारी जलन लेकर दरोगा जी बोले। और फिर लता की ओर देखकर कहा, “लता बिटिया ! तुमने भी इस काम में जो परिश्रम किया है, वह मैं देख रहा हूँ, बहुत बड़ा है। मैं तो कभी स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं लगा सका था कि मेरी बिटिया इतनी मेहनती और योग्य होगी !”

विद्यासागर लता और दरोगा जी को द्वार पर ही बातें करते छोड़ कर दूधशाला में चला गया और अन्दर जाकर भ्रमन पहलवान से बोला, ‘तुम मंडैया में जाकर अपना एक कुर्ता और एक धोती लेकर सीधे स्टेशन पहुँच जाओ। वहीं मिलना मुझे। मैं अभी आधे घंटे में वहीं पहुँचता हूँ। हमें आज ही कुछ आवश्यक कार्य से शहर चलना है। इस बात का संकेत भी किसी को न देना और मार्ग में किसी से बातें न करना।”

भ्रमन को दूधशाला के पिछले द्वार से भेजकर विद्यासागर बाहर आया। दरोगा जी और लता आपस में बातें कर रहे थे।

विद्यासागर को देखकर दरोगाजी बात बदलकर बोले, “तो अब तो तू कुछ दिन गाँव में ही रहेगा सागर ! मेरे पास आना, मैं तुझे कुछ

बहुत आवश्यक बातें बतलाऊंगा। इस गांव में कुछ लोग बड़ी ही नीच प्रकृति के हैं। वे तुम्हारे काम को देखकर जलते हैं। पंडित संकटमोचन उन सबका सरदार है। लाला चोखेराम उसे शं देता है। मैं यही बात तुम्हें बतलाने के लिए इधर आया था। देखा नहीं उस दिन लाला चोखेराम ने मुझे कैसा धोखा दिया। हस्ताक्षर तो कागज पर स्वयं शहर जाकर कर आया और मुझसे कह दिया कि सागर ने जबरदस्ती मुझसे हस्ताक्षर करा लिये। नाहक मेरा और तेरा मन खराब कर दिया।”

विद्यासागर बोला, “बड़ी कृपा की आपने। आपकी सूचना के लिए मैं आभारी हूँ। मेरा आपकी ओर से मन बिलकुल खराब नहीं है। मैं आपको अपना बुजुर्ग समझता हूँ। किसी दिन अवश्य दर्शन करूँगा आपके।”

दरोगा जी धीरे-धीरे अपने मकान की ओर चल दिये और विद्यासागर तथा लता उन्हें दूर तक जाते हुए देखते रहे।

दरोगा जी के दूर चले जाने पर विद्यासागर बोला, “अपने ताऊ जी की किसी बात पर विश्वास न करना, यह पहली बात है जो आपको बतला कर जा रहा हूँ। पंडित संकटमोचन से किसी प्रकार की भी बातें न करना। यह दूसरी बात है और लाला चोखेराम को दूधशाला में प्रवेश न करने देना। दूधशाला के अन्दर इन तीनों में से एक भी व्यक्ति न आये। जो भी आपसे मिले, आपकी हवेली पर मिले और आप भी किसी के पास न जाना। अपने काम-से-काम रखना।”

लता और विद्यासागर गांव के बाहर तक साथ-साथ गये। किसी को आभास भी न मिला कि कौन कहाँ जा रहा है। गांव से एक फर्लांग की दूरी पर जाकर लता ने विद्यासागर को विदा किया।

लता का मन भारी था और विद्यासागर के पैर भी आगे को बड़ी ही कठिनाई के साथ उठ रहे थे। उसने कई बार धूमकर देखा तो लता जहाँ खड़ी थी वहीं खड़ी दिखाई दी। दूर के धुंधलके में लता एक

प्रतिमा-सी देखी विद्यासागर ने । वह तनिक ठिठका और फिर तीव्र गति के साथ आगे बढ़ गया अपने रास्ते पर ।

गाँव के ढोर आ रहे थे गाँव की ओर । उनमें दूधशाला की गाय और भैंसों भी थीं । सभी ने विद्यासागर की ओर निहारा और विद्यासागर ने सबकी ओर ।

विद्यासागर ने मन में कहा, “तुम हो जमालपुर की असली माता । माता जो जन्म देती है वह तो नौ महीने पेट में रखकर वर्ष भर दूध पिलाती है और तुम जीवन भर दूध पिलाती रहती हो । अपने छौनों से दूध बचाकर आदमी के बच्चों को देती हो । फिर भी आदमी के बच्चे तुम्हें जहर खिलाने पर उद्यत हो जाते हैं ।

कितने नीच हैं ये आदमी के बच्चे !”

: १०० :

विद्यासागर स्टेशन जाने से पूर्व थाने में बीरेन्द्रकुमार से मिले और कुछ आवश्यक बातें कहीं । और फिर कहा, “मैं शहर जा रहा हूँ आपका आदेश मानकर । भ्रमन पहलवान को साथ लिये जा रहा हूँ ।

“यह आपने ठीक किया विद्यासागर जी !” बीरेन्द्रकुमार बोले ।

विद्यासागर ने पंडित संकटमोचन, लाला चोखेराम और दरोगा जी से जो-जो बातें हुई थीं, सब अक्षर-अक्षर सुना दीं ।

उन्हें सुनकर थानेदार बीरेन्द्रकुमार हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये । वह बोले, “कितने मक्कार हैं ये लोग । दुनियाँ को मूर्ख समझते हैं । समझते हैं कि परमात्मा की दी हुई तीन-चौथाई अक्ल इनके पास है और शेष एकबटा चार में सारी दुनियाँ है ।”

विद्यासागर की ट्रेन का समय हो गया था । वह खड़ा होता हुआ बोला, “अच्छा थानेदार साहब ! अब आज्ञा चाहूँगा । कुमारी लता विलेर हैं परन्तु अभी कम उम्र हैं और दुनियाँ का तजुर्खा नाँ के बराबर

ही है उन्हें । मैं उन्हें आपके संरक्षण में छोड़ रहा हूँ । चौधरी रूपसिंह सीधे-सादे आदमी हैं ।”

“चिंता न करो विद्यासागर जी ! इन पुराने बदमाशों की एक भी चाल सीधी नहीं पड़ने दूँगा । इसी सप्ताह में दरोगा जी की बन्दूक माल-खाने में जमा न कराली तो मेरा नाम भी वीरेन्द्रकुमार नहीं ।” विद्यासागर से आँखें मिलाकर वीरेन्द्रकुमार बोले । “फिर आप निर्विघ्न घूमना जमालपुर में । दरोगा बन्दूक का कभी भी गलत प्रयोग कर सकता है ।”

विद्यासागर तीव्र गति से स्टेशन की ओर चल दिया और जब वह स्टेशन पहुँचा तो गाड़ी का सिगनल गिर चुका था । भूमन पहलवान स्टेशन पर उनके इंतजार में खड़ा मिला ।

गाड़ी स्टेशन पर आई और दोनों टिकट लेकर उसमें सवार हो गये ।

: १०१ :

विद्यासागर भूमन पहलवान के साथ शहर के स्टेशन पर उतरे और वहाँ से धीरे-धीरे घूमते हुए ‘भारतीय सहयोग समिति’ के कार्यालय की ओर चल दिये ।

मार्ग में भूमन पहलवान ने कहा, “सागर भय्या ! एक बात कहूँ तमसे । कल रात मुझसे एक भारी झूक है गई ।”

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “क्या झूक हुई भला तुमसे पहलवान ? यही ना, कि कल रात को अंधेरा पड़े दरोगाजी तुम्हारी मंडैया में आये और तुम उनके साथ चले गये और शराब भी पीली तुमने ।”

भूमन पहलवान विद्यासागर के मुँह से अपनी रात की सारी बात सुनकर हक्का-बक्का सा रह गया । उसे स्वप्न में भी गुमान नहीं था कि विद्यासागर को उसकी रात की कारस्तानी का ज्ञान होगा । वह तो अपनी भूल का प्रायश्चित्त करने के लिए यह बात विद्यासागर पर स्वयं स्पष्ट करना चाहता था ।

भम्मन की गर्दन नीची हो गई। वह दबे स्वर में बोला, “माफ कर दे भय्या सागर ! अब कान पकड़ूँ हूँ अब फिर जिन्दगी में ऐसा गलती नांय करूँ। दरोगा फूट-फूट के रोने लगा हा तौ रहम आय गया और मैं वाके साथ है लिया। वाने मेरा नाम दस नम्बरीन में सँ कटवाय के घना ही अपकार करा हा। वा बखत वाने मेरी जान बचाय दी ही सागर ! पुलस वालन की धौल-धप्पल सँ मैं तंग आय गया हा।”

“और क्या कहते थे दरोगा जी ?” विद्यासागर ने मुस्कराकर पूछा।

“कहै कहा हे भैया ! तंग आय रहे हैं बिचारे। रस्ती तँ जल गई है पर बल नांय जले अभी। कल तँ कछ्छ नांवे की गरमी ही वापें। तौई तौ सराब की बोतल ल्याये हे कहीं सँ।” भम्मन पहलवान बोला।

“तो कल खूब जी भरकर शराब पी तुमने भम्मन पहलवान ? इतने दिन का सूखा गला पूरी तरह गोला कर लिया ?” विद्यासागर ने मुस्कराकर कहा।

भम्मन पहलवान लजा गया। उसके नेत्र नीचे को थे और जबान पर शब्द अटक-अटक कर आ रहे थे।

“अब कधी नांय पीऊँ भय्या ! कधी नांय पीऊँ। यू लुच्ची सराब में जाने कहा करामात है अब आगे आयके मुझे चारों खाने चित्त दे मारत है। लाख यू सोचूँ हूँ अब यू बुरी चीज है पर हाथ अपने-आप गिलास कू थाम लेत हैं। मैं यूँ कहे जात हूँ अब याका पीना बुरी बात है और यू आप-सँ-आप हलक सँ नीचे उतरन लगे है। और हलक सँ नीचे उतर के तौ कहा कहूँ भय्या ! या मैं यू सिफत है अब जिन्दगी के सब फिकर-फाकन कू कोसों दूर भगाय देत है। दो घड़ी कू ऐसा लुतफ आवे है अब.....”

“दीन-बुनिया का कुछ पता नहीं रहता। अपने-पराये की याद भूल जाती है। मित्र और शत्रु में पहचान करना कठिन हो जाता है। आँखों

के आगे मौज-ही-मौज का समंदर लहरा उठता है । कोई चिंता ही नहीं रहती काम की ।

और जब नशा दूटता है तब ? दिखाई देता है कि मुँह सड़ा हुआ है । उससे बदबू आ रही है । दिन-भर की मजदूरी का पैसा बोतल में स्वाहा हो गया है ।

और जब घर पहुँचता है तो देखता है कि रात को चूल्हे पर हाँडी नहीं चढ़ी । औरत और बच्चों ने कल रात को फाका किया था, घर में चूहे कलाबाजियाँ खा रहे हैं । क्यों पहलवान सच है ना, जो कुछ मैं कह रहा हूँ ।”

भम्मन पहलवान लज्जा से गड़ा जा रहा था । उसके पैर भारी हो रहे थे । एक पैर उठाता था तो दूसरा लड़खड़ाने लगता था ।

“अपने रास्ते को न भूलो भम्मन पहलवान ! जिन्दगी का रास्ता बार-बार नहीं बदला जाता । रास्ता बनाने में बहुत देर लगती है और उसे बिगाड़ लेना एक क्षण का काम है ।

मैं यह नहीं कहता कि जिसने तुम पर कोई एहसान किया है उसे भूल जाओ, परन्तु पुराने एहसान की भावुकता में फँसकर अपना आगामी जीवन बर्बाद करना भी तो कोई बुद्धिमानी नहीं है ।”

और फिर एक दम बात का रुख बदलकर विद्यासागर भम्मन के चेहरे पर आँखें गाड़ कर बोला, “जानते हो मैं तुम्हें अपने साथ क्यों लाया हूँ ?”

भम्मन पहलवान ने ध्यानपूर्वक विद्यासागर के चेहरे पर देखा ।

विद्यासागर बोला, “मुझे तुम्हारे कदम लड़खड़ते दिखाई दिये । मुझे उनमें मजाबूती की कमी मिली । इसीलिए सोचा कि तुम्हें यहाँ छोड़ना गलत होगा । दरोगाजी क्या हैं, यह समझना अभी तुम्हारे लिए कठिन है । लाला चोखेराम को भी तुम नहीं पहचान सकते । और पंडित संकटमोचन जैसे गुरु-घंटाल को तो तुम अभी कई पीढ़ी तक नहीं पहचान पाओगे ।

मेरे साथ चलना है तो सोच-समझकर चलो । लड़खड़ाकर चलने वाले का मेरे साथ चलना व्यर्थ है । लड़खड़ाने वाला आप तो डूबता ही है, अपने साथियों को भी ले डूबता है ।”

विद्यासागर की बात सुनकर भम्मन पहलवान की आँखों में आँसू आ गये । वह बच्चे के समान हिचकियाँ लेकर रो उठा । उसने दीनभाव से गिड़गिड़ाकर विद्यासागर के पैर पकड़ लिये ।

“यह क्या करते हो पहलवान ?” भम्मन के दोनों कंधे पकड़कर ऊपर उठाते हुए सीने से लगाकर विद्यासागर ने कहा । “भूलें होना इन्सान की कमजोरी है । कमजोरी पर काबू पाना इन्सान का फर्ज है । पहलवान हो तुम भम्मन ! विचारों के भी पहलवान बनो । जो बात एक बार दिमाग से सही सोच ली है उस पर दृढ़ रहो । शरीर दूट जाये पर रास्ता न बदले ।”

“आगे सँ जो गलती खाऊँ तौ यू जी या सरीर में नाँय पाओगे सागर भय्या ! यू आखरी गलती है गई है सो याकू माफ कर द्यो ।” भम्मन पहलवान बोला ।

“माफ़ी की इसमें कोई बात नहीं है भम्मन ! मैं तुम्हें अपने बड़े भाई के समान समझता हूँ । गाँव में मैं जो कुछ भी कर रहा हूँ उसके पीछे रामसिंह, कनकू और तुम्हारी ही शक्ति है । तुम्हीं लोगों के भरोसे पर मैं गाँव में निर्द्वन्द्व घूमता हूँ । वरना अकेला देखकर तो दरोगाजी और पंडित संकटमोचन मुझे कच्चा ही चबा जायें ।” विद्यासागर बोला ।

विद्यासागर की बात सुनकर भम्मन पहलवान के भुजवंड फड़कने लगे । उसकी आँखों में जोश की खुमारी छा गई और सीने में उत्साह और उमंग का उभार आ गया । वह गर्व के साथ बोला, “सागर भैया ! थारी मंय्या कोई आँख भर के भी देख लेय तौ बाकी आँखन कू निकाल ल्यो मैं इकला ही । कहा मजाल काहू की अक जो थारा बाल भी बाँका कर सके ।”

“मुझे अपने भय्या भूमन से यही आशा है। इसी आशा पर तो मैं आगे बढ़ रहा हूँ।” विद्यासागर बोला।

विद्यासागर का मन बहुत प्रसन्न था इस समय। कल रात से वह चिंतित था भूमन के लिए। उसे आधी रात को ही इस बात की सूचना उसकी स्त्री ने आकर दे-दी थी और रात शराब में धुत्त भूमन को रामसिंह और कनकू उठाकर सबसे नजरें बचाते हुए मंडैया में लाये थे और सुबह अपने साथ ही सीधे दूधशाला में काम पर ले गये थे। वह समझ रहा था कि उसकी रात की हरकत को केवल दरोगाजी, पंडित संकटमोचन, रामसिंह और कनकू ही जानते हैं। अन्य किसी को उसका कुछ पता नहीं।

धीरे-धीरे चलते-चलते ही ‘भारतीय सहयोग समिति’ का कार्यालय आ गया। अब यह कार्यालय शीलादेवी की कोठी पर नहीं था। शहर के बीचों-बीच एक बड़ी बिल्डिंग में नया स्थान किराये पर लिया गया था, जिसमें कई कमरे थे। समिति के कार्यकर्त्ताओं के ठहरने के लिए भी सुन्दर स्थान था और उनकी हर सुविधा का प्रबन्ध शीलादेवी करती थीं।

: १०२ :

विद्यासागर और भूमन पहलवान एक ही कमरे में साथ-साथ ठहरे। भूमन, रुनकू, भुनकू और उनके अन्य साथियों से मिलने चला गया।

विद्यासागर अकेला बैठे अपना कार्यक्रम बनाता रहा। तभी शीलादेवी की कार कार्यालय के सामने आकर रुकी।

कार्यालय दूसरी मंजिल में था। शीलादेवी ने कार्यालय में प्रवेश किया तो सहायक ने सूचना दी, “प्रधान मंत्री महोदय पधारें हैं। अतिथिशाला में ठहरे हैं।”

“कौन ? क्या विद्यासागर जी ?” शीला ने पूछा।



“जी !” सहायक ने उत्तर दिया ।

सुनकर शीला अवाक्-सी रह गई । उसकी समझ में ही न आया कि विद्यासागर जी यहाँ आकर अतिथिशाला में क्यों ठहरे ? क्यों नहीं वह सीधे उसकी कोठी पर आये ? क्या कोई भूल हो गई है उससे ? एक क्षण में अनेकों विचार उसके मस्तिष्क में उमड़-धुमड़कर रह गये परन्तु उसका मस्तिष्क उनका समाधान न कर सका ।

वह सकपकाई-सी, चिंतित-सी, अव्यवस्थित-सी, किर्त्तव्यविमूढ़-सी, ठगी सी रह गई । उसके पैर अतिथिशाला की ओर को न उठ सके ।

सहायक भी शीला के चेहरे पर आने वाले हाव-भावों को देखता रहा, परन्तु समझ कुछ भी न सका ।

विद्यासागर के कानों में शीला की कार के हार्न की ध्वनि जब से पड़ी थी तो उसके नेत्र अपने कमरे के द्वार पर टिक गये थे । उसके कानों ने कार के रुकने की सरसराहट सुनी, उसका द्वार खुलने की आवाज सुनी, शीला के कार से उतरने और मकान की सीढ़ी तक आने का शब्द सुना, सीढ़ी पर चढ़ने की खट-पट सुनी और कार्यालय में प्रवेश करनी की ब्वनि भी उसके कानों में आई,—परन्तु उस सब को तो कई मिनट बीत चुके । फिर शीला अब तक उसके कमरे में क्यों नहीं आई ? क्यों नहीं आई ? क्यों नहीं आई ? यही प्रश्न उसके मस्तिष्क में भर गया ।

विद्यासागर के लिए बैठे रहना कठिन हो गया । वह नंगे ही पैरों, केवल बंडी और छोटा नेकर पहने खड़ा होकर कार्यालय में पहुँच गया ।

शीला सामने खड़ी थी । उसके चेहरे पर स्वेद-बिन्दु छलछला रहे थे । विद्यासागर ने सरलतापूर्वक कहा, “शीला !”

“आप !” शीला बोली । “कब आये आप ?”

“जब तुम देख रही हो शीला ! अभी कोई एक घंटा पूर्व । सुबह की गाड़ी से आया हूँ । आने वाला था उधर ही परन्तु सहायक

ने कहा कि तुम यहाँ ठीक पांच बजे आ जाती हो। इसलिए सोचा चलो साथ ही चला चलूँगा।” सरल स्वभाव से विद्यासागर ने कहा।

“परन्तु आप सीधे उधर ही क्यों नहीं आये?” शीला ने पूछा।

शीला का मुँह देखकर मुस्कराते हुए विद्यासागर बोला, “तो तुम रुठ गईं मेरी इस गलती पर, इसका अर्थ मैं यह समझूँ। इसीलिए यह चेहरे पर पसीना है और तुम यहाँ आकर भी सीधी अतिथिशाला में नहीं आईं। पर मैं तो रुक नहीं सका शीला !”

शीला शरमा गई विद्यासागर की बात सुनकर और उसके दिल में एक ऐसे मीठे रस की धारा बह निकली कि जिसे सँभालना उसके लिए कठिन हो गया। उसका रस शीला की आँखों में छलछला आया। उसके कपोलों की सुखी में भर गया। उसके बदन के रोम-रोम से बह निकला। वह मुग्ध हो उठी और मोठी दृष्टि से विद्यासागर की ओर देखकर बोली, “तब क्या यही मेरे प्रश्न का उत्तर है? उत्तर देने से बचने का प्रयास ही इसे मैं मान रही हूँ और मानती रहूँगी जब तक मेरे दिल को आपके उत्तर से तसल्ली नहीं मिलेगी।”

“तसल्ली क्यों नहीं मिलेगी शीला !” विद्यासागर बोला। “यह तो बात ही बड़ी सरल है और यदि तुम सीधी यहाँ से अतिथिशाला में आ गई होती तो तुम्हारे नेत्र ही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे-देते।”

“तब चलिये मैं वहीं चली चलती हूँ।” कहकर शीला कार्यालय से निकलकर अतिथिशाला की ओर बढ़ गई।

विद्यासागर भी मुस्कराता हुआ पीछे-पीछे चल दिया।

शीला ने वहाँ जाकर चारों ओर दृष्टि फैलाई तो एक थैले के अति-रिक्त और कुछ दिखाई नहीं दिया। समझा सम्भवतः कोई अन्य व्यक्ति भी विद्यासागर के साथ आया है और उसे साथ लेकर उन्होंने शीला की कोठी पर ठहरना उचित नहीं समझा।

“कौन है दूसरा व्यक्ति?” शीला ने पूछा।

“भम्मन पहलवान ।” विद्यासागर बोला । “कल यह मूर्ख फिर दरोगाजी के चक्कर में फँस गया था । इसलिए इसे साथ लेता आया हूँ ।”

“भम्मन पहलवान दरोगाजी के चक्कर में ?” आश्चर्य-चकित हो कर शीला ने पूछा ।

“हाँ शीला ! भम्मन पहलवान बहुत भोला है । ऊपर से जितना मोटा-ताजा है उतना ही इसका दिल नरम और मुलायम है । इस पर दरोगाजी ने कुछ एहसान किये हुए हैं । उनकी याद को भुला नहीं पाता और उन्हीं एहसानों के भुलावे में डालकर दरोगाजी ने इसे शराब के नशे में फँसा लिया । कल रात-भर यह देवी के मंदिर में शराब पिये धुत्त पड़ा रहा ।

वह तो थानेदार बीरेन्द्रकुमार अपने आदमी हैं वरना तो कल रात गजब हो जाता ।”

“वह कैसे ?” शीला ने भयभीत होकर पूछा ।

“वह ऐसे कि रात को पहले तो शराब पिलाकर दरोगा ने इसे बेहोश कर दिया और फिर संकटमोचन को थाने में भेज दिया कि भम्मन पहलवान ने देवी के मंदिर में घुसकर उसका सुनहरी जेवर चुरा लिया ।” विद्यासागर बोला ।

“फिर क्या हुआ ?” शीला ने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

यह सूचना संकटमोचन ने थाने में जाकर दीवान जी को दी और वह तुरन्त ही दो कांस्टेबलों को साथ लेकर मौके पर जाने के लिए उद्यत हो गये । तभी बीरेन्द्रकुमार जी के विशेष आदमी ने उनके क्वार्टर पर जाकर सूचना दी और उन्होंने तुरन्त बाहर आकर पूछा—“क्या बात है ? पंडित संकटमोचन, तुम यहाँ आधी रात को कैसे आये ?”

“फिर क्या हुआ ?” शीला ने घबराकर पूछा ।

पंडित संकटमोचन ने गिड़गिड़ाकर पूरा फ़िस्ला कह सुनाया । बीरेन्द्रकुमार ने पंडित को उपटकर कहा—“बदमाश कहीं का ! मैं चलता

हूँ तेरे साथ । और अगर इसमें जरा भी कोई झूठ बात निकली तो समझ लेना तुझे हवालात में बन्द कर दूंगा । वरना सच-सच कह क्या बात है ?”

“फिर क्या हुआ ?” शीला ने पूछा ।

“फिर क्या होता ? पुलिस की डाट सुनकर थाने में अच्छे-अच्छों के होश उड़ जाते हैं शीला ! वहाँ देवी भी साथ छोड़कर भाग खड़ी होती है । देवी के मंत्र थानेदारों पर नहीं चलते । पंडित संकटमोचन घिघियाकर रह गये और कल रात से ही हवालात में बन्द पड़े हैं ।”

“पंडित संकटमोचन और हवालात में !” हँसकर शीला बोली ।

“हाँ हवालात में शीला । और बेचारे दरोगाजी रातभर बाट देखते रहे कि अब पुलिस की दौड़ आई जमालपुर में और अब भूमन पहलवान को बन्दी बना कर ले गई । इस पूरी घटना का लताकुमारी को भी पता नहीं है । और मैंने उन्हें चलते समय तक बतलाया भी नहीं कि कहीं वह घबरा न उठे ।” विद्यासागर बोला ।

“घबराने की तो बात ही थी । परन्तु पंडित संकटमोचन हवालात की सैर कर रहे हैं, यह सूचना आपने खूब दी । हवालात में आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा उन्हें । देवी की पूजा का नशा सब ढील पड़ जायगा ।” और फिर कुछ याद करती-सी शीला बोली, “आपने उपन्यास का यह अध्याय बहुत ही रोचक रहा विद्यासागर जी ! आनंद आ गया इस घटना को सुनकर ।”

: १०३ :

शीला समिति के कार्यालय में चली गई । आज की डाक देखी और अन्य आवश्यक कार्य की व्यवस्था की ।

तब तक विद्यासागर अतिथिशाला में लेटा रहा । सोचता रह कि जितने दिन उसे शहर में रहना है, उतने दिन यहाँ रहकर क्या कार्य करना चाहिए । व्यर्थ बैठना विद्यासागर के लिए असम्भव था ।

शीला कार्य समाप्त करके आई और बोली, “तब क्या इस बार आप भूमन पहलवान की निगरानी में अतिथिशाला के मेहमान बन कर ही रहने का विचार करके आये हैं ?”

विद्यासागर हँसकर बोला, “वह कार्य समाप्त हो चुका शीला । और रहा-सहा अभी भूमन पहलवान के आने पर तुम्हारे सामने समाप्त किये देता हूँ । भूमन को बड़ा पश्चात्ताप है अपनी भूल पर...”

बात पूरी भी न हो पाई थी कि भूमन पहलवान रुनकू-भुनकू से मिलकर लौट आया । उसे शर्म आ रही थी शीला के सम्मुख कमरे में प्रवेश करते हुए ।

शीला मुस्कराकर बोली, “आओ भूमन पहलवान । अन्दर आओ । बाहर कैसे खड़े रह गये ?”

भूमन सिकुड़ता-सा अन्दर आया परन्तु लज्जा ने अभी तक उसका पीछा नहीं छोड़ा था । उसकी गर्दन नीचे को झुकी हुई थी ।

विद्यासागर मुस्कराता हुआ बोला, “मिल आये रुनकू-भुनकू और उनके साथियों से । मजे में तो हैं सब ?”

“सब मजे में हैं ! मौज की कट रही है । खेल रहे थे मैदान में । मुझे देख के मेरे चारों मंया इकट्ठे हो गये और ताऊ राम-राम ताऊ राम-राम की झड़ी लगाय दई सबन नै । एक रुपैया की रेवड़ी ले गया हा । सबन कू बाँट आया ।” भूमन बोला ।

विद्यासागर ने कहा, “बैठो कुर्सी पर, खड़े कैसे रह गये ? और यह शीलादेवी पूछ रही हैं कि भूमन पहलवान को इतने दिन बाद शराब पीने में कैसा आनंद आया ?”

भूमन की गर्दन फिर नीची हो गई । वह लज्जा से ज़मीन में गड़ गया ।

शीला हँसकर बोली, “शराब पी तुमने भूमन ! यह बुरी बात की और इससे भी बुरी बात यह की कि दरोगाजी और पंडित संकटमोचन के साथ बैठकर पी । तुम्हें क्या पता कि यदि कल

थानेपर वीरेन्द्रकुमार ने तुम्हारे ऊपर मेहरबानी न की होती तो तुम इस समय तक जेलखाने की हवा खाते हुए होते और इससे हमारी पूरी संस्था की बदनामी होती। दरोगा जी ने तुम्हें फँसाने के लिए ही यह सब जाल रचा था।”

भूमन पहलवान शीला की बात सुन कर हक्का-बक्का-सा रह गया। वह समझ ही न पाया कि शीलादेवी क्या कह रही हैं। उसने किंकर्तव्य विमूढ़-सी दृष्टि से विद्यासागर और शीला की ओर देखा।

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “भूमन पहलवान जरा अपनी धोती की लाँग खोलकर उसके दाँये किनारे में लगी गाँठ को तो खोलकर देखो उसमें क्या बँधा है ?”

विद्यासागर बोला, “जानते हो यह क्या हैं ? जमालपुर के मंदिर की देवी के गले के जेवर हैं। जब तुम शराब के नशे में धुत्त थे तो तुम्हारी लाँग के कोने में इन्हें बाँधकर पंडित संकटमोचन रात के बारह बजे थाने में तुम्हारे खिलाफ चोरी की रपट लिखाने गये थे। यह सब काम दरोगा जी ने कराया था। परन्तु हुआ उसका उलटा ही। पंडित जी थाने की हवालात में ही बन्द हैं। सुबह मैं तुम्हें दूधशाला के पिछले द्वार से जब चुपके से निकालकर लाया था तो दरोगाजी दूधशाला के दरवाजे पर तुम्हारी फिराक में घूम रहे थे और थाने के दीवानजी, जो दरोगाजी के खास आदमी हैं, उनके साथ पीते-खाते और उठते-बैठते हैं, उनकी बैठक में दो सिपाहियों को लिए बैठे थे।

भूमन पहलवान का मोटा-ताजा शरीर थर-थर कांपने लगा। उसे पसीना आगया। वह दीन बालक की तरह कृतज्ञतापूर्वक विद्यासागर के मुँह पर देख रहा था।

“अब घबराने की कोई बात नहीं रह गई है पहलवान ! इन छल्लों को बाहर जाकर दूर नाली में फेंक आओ। इनका निशान भी न मिले किसी को और भूल से भी कभी किसी के सम्मुख जिक्र न आये इनका।

यह बात मेरे, तुम्हारे और शीलादेवी के अतिरिक्त अन्य किसी को मालूम नहीं होनी चाहिए ।” विद्यासागर ने कहा ।

“थानेदार वीरेन्द्रकुमार को भी नहीं ?” शीला बोली ।

“उन्होंने तो बतलाया ही है मुझे शीला ! मित्रता का हक अदा कर दिया । जमालपुर में वरना मैं मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रहता । देवी में अन्ध विश्वास करने वाले गाँव के लोग मुझे धूर्त समझने लगते और मैं सबकी नजरों से गिर जाता ।” विद्यासागर बोला, “बाल-बाल बच गया इस बार ।”

भम्मन पहलवान अपनी मूर्खता के भार से दबा जा रहा था । पेर नहीं उठ रहे थे उसके ।

विद्यासागर बोला, “जल्दी करो भम्मन ! ऐसे काम में देर नहीं करनी चाहिए । गहरी और अधिक पानी की नाली में डालना इन्हें ।”

भम्मन बिना कुछ कहे सोढ़ी से नीचे उतर गया ।

विद्यासागर और शीला फिर इधर-उधर की बातें करते रहे । भम्मन उन छत्तों को नाली में दफ़नाकर लौटा तो उसका मन उदास था । शीला उत्साहपूर्वक बोली, “चिंता की कोई बात नहीं भम्मन पहलवान । दरोगा जी जैसे पचासों को हम उँगली पर नचा देंगे परन्तु अपने में कमी नहीं आनी चाहिए । हमारे विनाश का कारण जब भी कोई होगा तो वह अपनी ही कमी होगी ।”

“जा मैं का सक है बीबी जी ! गलती तँ मुझ मूरख की ही है अक बाके भुलावे मैं आय गया मैं । ऊ तँ सागर भय्या नँ मुझ बेहोसी मैं मंदर से उठवाय कै मंगाय लिया हा, नांय तौ फुलस ह्वाँ सँ ही गिरफ़तार कर कै ले जाती । मैं जानत हूँ सब फुलस कू । बे बात तो गिरफ़तार कर लेय है ऊ और फिर अब तँ मुझ पँ मुद्दा हा चोरी का ।” दीन भाव से भम्मन बोला ।

परन्तु तभी शीला और विद्यासागर ने देखा कि भम्मन के नेत्र लाल होते जा रहे थे । उसकी पुतलियों में क्रोध के डोरे खिंच गये थे ।

वह बलबला कर खड़ा होता हुआ बोला, “मैं जमालपुर कू जाय रह्या हूँ सागर भय्या ! तम्हारा बिसवास खोय दिया मैंने । मुझे डूब मरन कू भी थाह नाँय है ।”

“यह क्या कह रहे हो भूमन पहलवान ! भूल हो गई तुमसे जरा सी । भूल मुझसे भी हो सकती है । जान-पूछ कर तो तुमने कुछ नहीं किया । फिर मैं तुम्हारा विश्वास भला कैसे नहीं करूँगा ? तुम मेरे दाँये हाथ हो भूमन, तुम्हें खोकर तो मैं अप्राहज हो जाऊँगा ।”

भूमन नीची गर्दन करके बैठ गया और फिर जरा ठहरकर बोला, “दरोगा कू मैं ऐसा नीच नाँय जानत हा सागर ! अक यू मेरे साथ ऐसा दगा करेगा । जब मैंने याका कधी कुछ नाँय बिगाड़ा तौ याने मुझे फंसावन का साँग क्यूँ रचा, यू मेरी समझ मैं नाँय आया ।”

शीला को भूमन पहलवान की सीधी-सादी बात सुनकर हँसी आई । वह बोली, “अब इस बात को दिमाग से निकाल दो पहलवान !” और कार्यालय के सहायक को पुकारकर बोली, “क्या कर रहे हो तुम ? कोई विशेष काम तो नहीं है अब । जाओ भूमन पहलवान के साथ कम्पनी बाग की सैर कर आओ और आज इन्हें कोई बढ़िया-सा सिनेमा दिखा लाओ ।” कहकर शीला ने एक पाँच रुपये का नोट अपने थैले से निकालकर सहायक को दिया ।

विद्यासागर भी मुस्कराकर बोला, “एक दम दिमाग हलका कर लो पहलवान और दरोगा जी की इस मक्कारी को शर्बत के घूँट की तरह पी जाओ । तभी मैं तुम्हें बहावुर सिपाही समझूँगा ।”

विद्यासागर की बात सुनकर भूमन पहलवान का दिल कुछ हलका हुआ ।

“मुस्कराओ पहलवान ! जिन्दगी मुस्कराने के लिए है । घबराने, क्रोध करने और चिंता निमग्न रहने से खून जलता है ।” शीला बोली ।

भूमन पहलवान के चेहरे पर मुस्कराहट आ गई । वह सहायक के साथ धीरे-धीरे कमरे से बाहर चला गया ।



: १०४ :

भस्मन पहलवान के चले जाने पर शीला बोली, “चलिये अब कोठी चलें। आज-कल मनोरमा जीजी भी वहीं हैं।”

“क्यों, क्या कोई विशेष बात है?” विद्यासागर ने पूछा।

“विशेष कुछ नहीं है विद्यासागर जी! वही पुरानी बात है। हमारे जीजा जी दुनियां की हर वस्तु को, दुनियां के हर व्यक्ति को धनोपार्जन का साधन समझते हैं। मनोरमा जीजी का भी उपयोग वह इसी कार्य के लिए करना चाहते हैं।” शीला बोली।

“मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा शीला!” आश्चर्य-चकित होकर विद्यासागर ने पूछा।

शीला को हँसी आ गई। वह हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। और फिर तनिक वक्र दृष्टि से देखकर बोली, “अजी वह एक कविवर रविकर जी हैं। चन्द दिन पूर्व उन्हें कोई डेढ़ टके को नहीं पूछता था। परन्तु इधर इत्तफाक से वह महाशय एम. पी. बन गये हैं। एम. पी. बनते ही उनका साहित्य भी पुजने लगा है। प्रकाशकों के लिए उनसे बड़ा कोई लेखक नहीं रहा और साहित्य-सम्मेलनों में भी उनकी धूम है। राजनीति के नेता भी उनकी पुस्तकों पर बिना एक अक्षर पढ़े और समझे भूमि-कार्यें लिख देते हैं।”

“फिर क्या हुआ उन रविवर जी का?” विद्यासागर ने पूछा।

“होता क्या जी, वही हुआ जो मनोरमा जीजी से आप उम्मीद कर सकते हैं। उस दिन आपको याद होगा, यहाँ सभा में से जीजा जी मनोरमा जीजी को ले गये थे। सिनेमा जाने का प्रोग्राम था रविकरजी के साथ। रविकर जी इनकी कोठी पर विराजमान थे।

मनोरमा जीजी कोठी पर पहुँचीं तो सिनेमा जाना एक ओर रखा रह गया और रविकर जी तथा जीजी में साहित्य-सम्बन्धी वार्ता प्रारंभ हो गई। रविकर जी ने जीजी का रूप-रंग ही देखा था। उन्हें क्या

पता था कि इनके अन्दर विद्वत्ता कितनी है, और कला का कितना निखरा हुआ रूप इनमें विद्यमान है !

बेचारे भैपकर रह गये । जीजी की एक भी बात का उत्तर न दे सके । नेताओं की भूमिकाओं के प्रमाण फीके पड़ गये ।”

“फिर क्या हुआ ?” मुस्कराकर विद्यासागर ने पूछा ।

“फिर वही हुआ जो होना था । जीजा जी और जीजी में नाराज्जी हो गई । जीजा जी बोले, तुमने मेरी पटी-पटाई पार्टों को नष्ट कर दिया । रविकर जी की पुस्तक छापता तो बिहार सरकार खरीद लेती, यू. पी. में हजारों प्रतियाँ निकल जातीं और राजस्थान के तो मुख्य मंत्री के साथ उनकी दाँत-काटी रोटी है । फिर केन्द्रीय सरकार में भी उनकी पहुँच कम नहीं है । नेता जी के खास आदमी हैं वह । उन्होंने भूमिका लिखी है पुस्तक की — तुमने बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया । यदि उन्हें ही विद्वान् मान लेतीं तो तुम्हारी क्या हानि थी ?”

“मनोरमा जीजी ने मानने से इंकार कर दिया होगा ।” विद्यासागर बोला ।

“इंकार ही नहीं विद्यासागर जी ! फटकार भी बतलाई रविकरजी को । स्पष्ट कह दिया,—आपको साहित्य की सेवा करनी चाहिए, यदि आप लेखक बनना चाहते हैं तो । राजनीतिक हथकंडों से नाम पैदा करना और फिर उसका उपयोग साहित्य के क्षेत्र में करना भारी अपराध है । यह साहित्य को गन्दा करता है, और हमारे देश के राजनीतिक नेताओं को भी चाहिए कि वे आँखें खोलकर इस दिशा में चलें । यूँ ही राजनीति की भोंक में आकर अपने को साहित्यकार भी मान लेने के भ्रम में न पड़ें ।” शीला बोली ।

“मनोरमा जीजी ने बिल्कुल ठीक कहा । इस प्रकार के लेखकों को बढ़ावा देने से साहित्य का अपकार होगा । रसातल को पहुँच जायगा हमारा साहित्य । साहित्य साधना चाहता है, राजनीतिक फंटे-

बाजी नहीं। यह उथला और छिछला साहित्य जो प्रचार, साधन और स्थितियों के दम पर आगे आयेगा, टिकाऊ नहीं होगा कभी। चन्द रोज हवा भले ही रहे उसकी, वह क्लासिक नहीं बन सकता।”

“क्लासिक ! क्या कहने लगे आप विद्यासागर जी ! उसे तो कोई पढ़कर अपना समय नष्ट करना भी पसन्द नहीं करेगा। आपकी कभी भेंट नहीं हुई है रविकर जी से। मिलाऊँगी किसी दिन तो आप कहेंगे कि अजीब घोंचू किस्म का आदमी है। खुशामदें करना जानता है लीडरों की। उसी के दम पर ये भूमिकायें लिखा लेता है और फिर उल्लू बनाने के लिए मिल जाते हैं प्रकाशक महोदय। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश के अधिकांश प्रकाशक जो साहित्य छापते हैं उसका उन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं होता।” शीला बोली।

“तब फिर क्या हुआ ?” विद्यासागर ने पूछा।

“होता क्या ? कह तो चुकी। कोई नई बात नहीं है यह। इस प्रकार की घटनायें जीजी और जीजा जी के बीच चलती ही रहती हैं। जीजा जी कह रहे थे कि मनोरमा जीजी अपने नये प्रकाशन का प्रारम्भ रविकर जी की रचना को छाप कर करें तो उसके उद्घाटन के लिए वह किसी कैबिनेट मिनिस्टर को ला सकते हैं। राष्ट्रपति को इसके लिए लाना कठिन है, परन्तु यदि कार्य जम गया और बड़े पैमाने पर चला तो एक दिन वह भी आ सकता है देश के राष्ट्रपति को भी ‘साहित्य-सेवा’ का आवरण दिखाकर आमंत्रित किया जा सके।”

“क्यों नहीं माना फिर मनोरमा जीजी ने ?” विद्यासागर ने पूछा।

“मानने का कोई प्रश्न नहीं उठता उनके सामने। वह निश्चय कर चुकी हैं कि वह अपने प्रकाशन का प्रारम्भ आपके उपन्यास “चौथा रास्ता” से करेंगी। उसका उद्घाटन मैं करूँगी, क्योंकि मुझे ही उसकी प्रसार-व्यवस्था को सम्भालना है।” दृढ़तापूर्वक शीला ने कहा।

विद्यासागर का मन गद्गद हो उठा। उसका दिल हिलोरें लेने

लगा। कितना स्वस्थ विचार है यह ! कार्य का उद्घाटन कार्य-कर्त्ता के ही हाथों से होना चाहिए। लीडरों से उद्घाटन कराने की पुरानी प्रथा को बन्द करना होगा। काम कोई करे और उद्घाटन करने कोई आये, यह कहाँ की रीति है। इस प्रणाली को रोकना चाहिए। मनोरमा जीजी का विचार बहुत स्वस्थ है। मैं हृदय से स्वागत करता हूँ इसका।” विद्यासागर बोला।

“तुम्हारा हार्दिक स्वागत यही है कि तुम बहुत शीघ्र इस उपन्यास को समाप्त कर दो जिससे जीजी का प्रकाशन प्रारम्भ हो जाय। उन्हें आजकल चौबीसों घंटे प्रकाशन की ही धुन है। बहुत लम्बी-चौड़ी योजना बनाये बैठी हैं वह। इस बार आपको एक क्षण का भी अवकाश नहीं मिलेगा उनकी योजना से बच निकलने का। बस, उतनी ही देर का अवकाश समझ लीजिये, जब तक आप कोठी पर नहीं पहुँच जाते हैं।” शीला ने मुस्कराकर कहा।

विद्यासागर बोला, “यह तो तुमने मेरे मन की बात कह दी शीला ! मैं तो काम की ही खोज में था। जीजी के इस काम में मेरा समय लगेगा तो मैं अपने समय का सदुपयोग समझूँगा।”

: १०५ :

समिति के कार्यालय से विद्यासागर और शीला कोठी पर आये। मनोरमा जीजी कोठी के सामने वाले लॉन में कुर्सी पर बैठी थीं। गोल मेज पड़ी थी सामने और आस-पास में चार बेंत की कुर्सियाँ।

मेज पर कुछ कागज रखे हुए थे और वह पैड पर कुछ लिख रही थीं।

तभी शीला की कार जाकर कोठी के द्वार पर ठहरी और धीरे से उसने अन्दर प्रवेश किया। कार सीधी गेरिज की ओर चली गई और थोड़ी ही देर में उसमें से शीला और विद्यासागर उतर कर सामने वाले उसी लॉन में आ गये जहाँ मनोरमा बैठी थीं।

विद्यासागर को देख कर मनोरमा जीजी के चेहरे पर रौनक आ गई और वह खड़ी होती हुई बोली, “विद्यासागर तुम कितने अच्छे हो। मेरे मन की बातें पहचान लेते हो तुम। मैं अभी-अभी तुम्हें ही याद कर रही थी।” और फिर मेज़ पर पड़े एक पत्र की ओर संकेत करके कहा। “यह देखो पत्र, तुम्हीं को लिखा था अभी। टिकिट भी लगा दिये हैं इस पर।”

“मैं विला पत्र के ही आ पहुँचा जीजी ! आपका स्नेह ही तो मुझे बरबस खींचकर यहाँ ले आया है। आप कुशलपूर्वक तो रहें इस बीच में ?” विद्यासागर बोला।

विद्यासागर की बात सुनकर मनोरमा जीजी खिल-खिलाकर हँस पड़ीं और फिर तनिक ठहर कर बोली, “मेरी कुशलता की बात एक ही पूछी तुमने विद्यासागर ! मेरी अकुशल होने की भला क्या बात है ? हाँ, इतना अवश्य है कि इधर मेहता साहब मुझसे अप्रसन्न हो गये हैं।”

“वह कैसे ?” विद्यासागर ने मनोरमा के पास वाली कुर्सी पर बैठ कर पूछा और बोले, “मेहता साहब को तो आप व्यर्थ में ही अप्रसन्न कर देती हैं जीजी जी ! मन से न सही, उनका मन रखने करने के लिए ही आप उनकी बात मान लिया करें।”

विद्यासागर की बात सुनकर मनोरमा जीजी को फिर हँसी आ गई। वह इस बार हँसते-हँसते लोट-पोट हो गईं और फिर बोली, “तनिक सोचो तो विद्यासागर तुमने सरलता में भी कितनी स्वार्थपूर्ण बात कह दी !”

“वह कैसे ?” आश्चर्य-चकित होकर विद्यासागर ने मनोरमा के मुख पर देखा।

शीला भी एकदम उधर को ही देख रही थी। समझी नहीं थी वह भी मनोरमा जीजी की बात।

मनोरमा मुस्कराकर बोलीं, “मेहता साहब का मन रखने की बात तुमने खूब कही विद्यासागर जी ! मैं तुमसे सुखती हूँ कि मन उन्हें मेरा रखना चाहिए या मुझे उनका । जहाँ तक मन रखने का प्रश्न है वहाँ तक पुरुष को ही नारी का ध्यान रखना चाहिए । यदि मन रखने से आगे आज्ञा मानने की बात होती तो तुम्हारा सांस्कृतिक जाल-जंजाल आकर मेरे पैरों को जकड़ता । पतिव्रता, पति-आज्ञा-पालिका बनाता मुझे ।”

विद्यासागर मनोरमा की बात सुनकर धर्म-संकट में फँस गया । नर और नारी के धर्म की व्याख्या में वह इस समय पड़ना नहीं चाहता था ।

इससे पूर्व कि वह कोई उत्तर देता, सबने बड़े आश्चर्य-पूर्वक देखा कि एक महाशय खदर का कुर्ता, खदर की धोती, तिरछी टोपी, गांधी जी के नाम से सम्बन्धित होने वाली पतली बाड़ की, पैरों में चप्पल पहने स्कूटर से उतरे और अपना चमड़े का बैग बगल में दबाकर निर्भीक चाल से कोठी में घुस आये ।

अन्दर आकर उन्होंने माली से कुछ पूछा और माली ने लॉन में बैठे हुए इन सब लोगों की ओर संकेत कर दिया । थोड़ी ही देर में वह महाशय जी इन सबके सम्मुख आ खड़े हुए ।

मनोरमा बहन उन्हें पहचान कर खड़ी होती हुई बोलीं, “ओह कविवर रविकर जी ! पधारिये-पधारिये ।”

कविवर रविकर जी मनोरमा के सामने मेज के दूसरी ओर पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गये ।

मनोरमा ने कविवर रविकर जी का विद्यासागर और शीला से परिचय कराया ।

परिचय के पश्चात् कविवर रविकर जी ने अपना बैग खोला और उसके अन्दर से एक निमंत्रण-पत्र निकाल कर मनोरमा को देते हुए बोले, “कल रात्रि के आठ बजे राष्ट्रपति-भवन में मेरा कविता-पाठ

होगा । आप पधारें और अपनी बहन शीला को भी साथ लाना न भूलें ।”

यह कार्य समाप्त करके रविकर जी ने विद्यासागर की ओर देखा और आँखों पर चढ़ा सुनहरी फ्रेम का चश्मा उतार कर अपने सिर के घुँघराले बालों को एक झटके के साथ हिलाकर आँखें तरेरते हुए बोले, “आप भी लेखक हैं महोदय ! कभी नाम नहीं सुना आपका । किसी सभा-सोसायटी में भी कभी दर्शन नहीं हुए । कहीं किसी पत्र में भी कोई रचना नहीं पढ़ी आपकी ।”

“मैं लेखक हूँ या नहीं, यह बतलाना मेरा काम नहीं है महोदय ! नाम की अपेक्षा मैं काम को अधिक महत्व देता हूँ । सभा-सोसायटियों में जाकर लेखक, लेखक नहीं रहता, विज्ञापन का माडल बन जाता है । पत्रों में छपने की मंते कभी कोई चीज नहीं लिखी ।” कहकर विद्यासागर ने मुस्कराते हुए रविकर जी की ओर देखा ।

विद्यासागर का उत्तर सुनकर मनोरमा और शीला के चेहरों पर भी मुस्कराहट खेल उठी; परन्तु कविवर रविकर जी का चेहरा तमतमाने लगा । उन्हें लगा कि इस नासमझ नवसिखिये कल के छोकरे ने उनका मनोरमा के सामने अपमान करके रख दिया ।

वह तिलमिलाकर बोले, “नाम यूँहीं नहीं हो जाता है महोदय ! नाम भी काम से ही होता है । सभा-सोसायटियों में भी यूँही निमंत्रित नहीं किया जाता है किसी को । राष्ट्रपति-भवन में कविता-पाठ करना हँसी-खेल नहीं है । वहाँ लल्लू-पंजुओं की पहुँच नहीं होती । बड़े-बड़े सम्मानित लेखकों को ही आमंत्रित किया जाता है । पत्रों के सम्पादक भी यूँही कूड़ा-करकट रचनाओं को छापकर अपने पत्रों की प्रतिष्ठा नष्ट नहीं करते । खूब परख कर चुनी हुई रचनाओं को ही स्थान देते हैं अपने पत्रों में ।”

कविवर रविकर जी का तिलमिलाना देखकर विद्यासागर को आनंद आ गया । मनोरमा जीजी भी लुत्फ ले रहीं थी इनकी बातों में और शीला तो मुग्ध ही हो उठी थी ।

विद्यासागर उसी तरह से मुस्कराता हुआ बोला, “जब आप जानते ही हैं कि काम प्रधान है तो किसी से मिलकर उसके काम के विषय में पूछिये, नाम के विषय में नहीं। राजमहलों में पढ़ी जाने वाली कविता क्या होगी, यह मैं समझ ही नहीं पा रहा हूँ महोदय ! उसमें जन-जीवन की आत्मा नहीं हो सकती और यदि शब्दों में हुई भी तो वह वास्तविकता का अपमान ही होगा। कविता-पाठ का स्थान राष्ट्रपति-भवन नहीं है। हमारे सम्पर्क में यदि आप कभी आये तो आपको बतलायेंगे कि कविता-पाठ का विषय क्या है और उसका स्थान कहां है ? अब रही पत्रों के सम्पादकों की बात, सो उसे जाने दीजिये। अपने इष्ट-मित्रों की आलोचना करना मैं उचित नहीं समझता।”

विद्यासागर की बात सुनकर कविवर रविकरजी ने गम्भीरतापूर्वक विद्यासागर के चेहरे पर देखा और फिर पूछा, “क्या तुम भी कल राष्ट्र-पति-भवन में आना पसंद करोगे ?”

विद्यासागर ने उत्तर दिया, “मुझे आमंत्रित करना व्यर्थ है। मेहता साहब को आमंत्रित कीजिये। यहाँ के अन्य प्रतिष्ठित प्रकाशकों को बुलाइये। सम्पादक महोदयों को निमंत्रण भेजिये। ये सब आपको लाभकर सिद्ध होंगे।”

विद्यासागर का उत्तर सुनकर कविवर रविकर जी आग-बगूला हो उठे और खड़े होते हुए बोले, “महाशय ! आप में सहृदयता नाम मात्र के लिए भी नहीं है। आप एक नीरस आलोचक भले ही बन सकें, कवि नहीं हो सकते, सच्चे कलाकार नहीं हो सकते।”

और फिर मनोरमा जीजी की ओर देखकर बोले, “कल आठ बजे आना न भूलियेगा। मैं प्रतीक्षा में रहूँगा आपकी।”

शीला से भी कविवर ने आने का अनुरोध किया परन्तु विद्यासागर से दुबारा कहने का साहस न हुआ।

मनोरमा, शीला और विद्यासागर तीनों स्कूटर तक कविवर रविकर जी को छोड़ने गये।



जब रविकर जी स्कूटर में बैठ गये तो विद्यासागर बोला, “कविता आपकी फिर किसी दिन सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा, आज दर्शन ही हुए, इसके लिए मनोरमा जीजी धन्यवाद की पात्रो हैं। इन्हीं की बदौलत कभी-कभी आप-जैसे महान् कलाकारों के दर्शन हो जाते हैं।”

विद्यासागर का यह भावुकतापूर्ण वाक्य सुनकर कविवर रविकर जी बोले, “मैं चाहता हूँ कि आप भी कल राष्ट्रपति-भवन में पधारें। मैं कल जो कविता सुनाने जा रहा हूँ वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। उसमें राष्ट्र की पंचवर्षीय योजना का सार भरा है।”

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “कविवर ! आपने गागर में सागर भर दिया होगा। कहां कविता और कहां पंचवर्षीय योजना ! यानी देश के पूरे रचनात्मक कार्यक्रम को उडेल दिया होगा रचना के पेट में।”

“बिलकुल उडेल दिया है विद्यासागर जी !” भावुकता में भरकर रविकर बोले।

स्कूटर चल दिया। कविवर ने तिवारा पूछा, “तो आओगे ना विद्यासागर जी ?”

“अवश्य आऊंगा”, विद्यासागर ने उत्तर दिया।

: १०६ :

मनोरमा देवी का मन कई दिन से बड़ा उदास-सा चल रहा था। नरेश मेहता के व्यवहार से वह उद्विग्न हो उठी थीं। उनके साथ-साथ एक कोठी में रहना भी उनके लिए सम्भव नहीं रहा था। इसीलिए वह अपनी माता जी तथा शीला के पास ही आकर रहने लगी थीं।

रात को जब विद्यासागर उसी कमरे में जिसमें पहले ‘भारतीय सह-योग समिति’ का कार्यालय था, लेटा हुआ अपनी डायरी के पन्ने उलट-रहा था तो मनोरमादेवी ने कमरे में प्रवेश किया।

उन्हें देखकर विद्यासागर उठ बैठा और आदरपूर्वक बोला, “बैठिये जीजी !”

मनोरमा सामने पड़ी कुर्सी को खिसकाकर उस पर बैठ गई ।

विद्यासागर ने डायरी उठाकर तकिये के नीचे रख दी और साधारण दृष्टि से मनोरमादेवी के मुखमंडल पर निहारा । विद्यासागर ने देखा कि वह गुलाब-सा चेहरा, जो हर समय खिला रहता था, आज चिंताओं के डोरों में बंधा हुआ था । उसकी पंखुरियाँ मुँदी हुई थीं । होठों पर वह स्वाभाविक मुस्कान नहीं थी, जिसकी हलकी-सी रेखा विद्यासागर के हृदय में रस की धारा बहा देती थी ।

विद्यासागर सरलतापूर्वक बोला, “यह कैसी उदासी छाई हुई है आपके चेहरे पर जीजी ! क्या कोई विशेष घटना घटी है इस बीच में ?”

मनोरमा अपने को संभालकर बोली, “घटनायें तो घटती ही रहती हैं विद्यासागर, परन्तु इधर कई दिन से मेरा चित्त न जाने क्यों बड़ा खिन्न सा रहने लगा है । जीवन ऐसा लगता है कि मानो उसमें उत्साह और उमंग नाम की कोई वस्तु रह ही नहीं गई है ।”

“सुनू भी तो वह क्या घटना घटी है कि जिसने आपके हृदय को इतना बड़ा आघात पहुँचाया । क्या मैं आपकी इस उदासी को दूर करने में सहयोगी नहीं हो सकता ?” विद्यासागर बोला ।

विद्यासागर की बात सुनकर मनोरमा के मुरझाये मुख पर हलकी-सी मुस्कान की आभा छिटक गई और वह बोली, “एक आशा की दिशा मुझे ही देखकर आँखों के सामने आ जाती है विद्यासागर ! वरना तो जीवन यह उदासी के हवाले हो ही चुका है । कह नहीं सकती क्यों बिघाता ने मुझे एक ऐसे गढ़े में धकेल दिया कि जिसमें से उभरना मेरे लिए कठिन हो रहा है ।”

विद्यासागर बोला, “क्या मेहता साहब से फिर कुछ नाचाकी हो गई आपकी कुछ ? आखिर कहते क्या हैं वह ? चाहते क्या हैं वह ? मैं भी तो सनभूँ और सभभकर उसका समाधान करने का प्रयत्न करूँ ।”

मनोरमादेवी को हँसी आ गई विद्यासागर के भोलेपन पर । वह बोली, “सिर फिरे व्यक्ति से उलझना व्यर्थ है विद्यासागर ! इसीलिए मैंने

सोचा कि चलो अपने को ही इनसे बचाकर दूर ले चलो। परन्तु इस पर भी चैन नहीं है उन्हें। नित्य ही मेरा मस्तिष्क खराब करने के लिए किसी-न-किसी बहाने यहां आ धमकते हैं। मैं स्पष्ट कह चुकी हूँ कि आपका और मेरा सम्बन्ध गलत हो गया है। वह जीवन में चलने वाला नहीं है।”

विद्यासागर सोचता रहा कि मनोरमादेवी क्या कह रही हैं। क्यों कह रही हैं? क्यों नहीं वह अपने पति के साथ कदम-दर-कदम चल सकतीं। कैसे उनका सम्बन्ध गलत हो गया है!

मनोरमा बोली, “तुम नहीं जानते विद्यासागर कि मेहता साहब मुझसे क्या आशा रखते हैं? किस लिए उन्होंने मुझसे विवाह किया। और वह अब क्या चाहते हैं?”

“चाहते होंगे बेचारे कि आप सार्वजनिक कामों के पचड़ों में व्यर्थ अपना समय नष्ट न करें। उनके व्यापार में सहयोग दें और अपने जीवन को उनके जीवन में घुला-मिलाकर आनंदपूर्वक रहें।” विद्यासागर बोला।

मनोरमा मुस्करा दीं विद्यासागर की बात सुनकर।

“तब क्या इससे पृथक् कुछ और भी चाहते हैं वह?”

“चाहते हैं।” मनोरमा बोली, “और जो कुछ वह चाहते हैं उसे सुनकर तुम्हारे हृदय पर गहरा आघात होगा, इसलिए मैं कहना नहीं चाहती। मैं नहीं चाहती कि तुम्हारे बढ़ते हुए कदम रुक जायें और तुम्हारा मस्तिष्क ऐसी उलझनों में फँसकर रह जाय कि जिसका घातक प्रभाव तुम्हारे कार्य पर पड़े।”

मनोरमा की बात सुनकर विद्यासागर सिहर उठा, परन्तु उसने अपने चेहरे पर कोई चिंता का चिह्न व्यक्त नहीं होने दिया। वह उतनी ही सरलता से बोला, “मैं आपत्तियों से घबराने वाला व्यक्ति नहीं हूँ मनोरमा देवी! आखिर मुन् भी तो कि मेहता साहब क्या चाहते हैं?”

मनोरमा गम्भीर होकर बोली, “वह चाहते हैं कि शीला का विवाह

सेठ रुढेमल जी से कर दिया जाय । और माताजी ने मेहता साहब को अपनी सहमति प्रदान कर दी है ।”

“सेठ रुढेमल जी से ? परन्तु उनकी आयु तो लगभग पचास वर्ष की होगी । शीला का विवाह रुढेमल जी के साथ ! अजीब बात कह रही हैं आप । और शीला का क्या मत है इसके विषय में ?” विद्यासागर ने पूछा ।

विद्यासागर का सिर चकरा गया यह सब सुनकर । वह समझ ही न पाया कि यह सब कैसा नाटक है । उसका तमाम बदन पसीना-पसीना हो गया । वह गोली-लगे पंछी की भाँति तड़फड़ाकर अहेरनी मनोरमा के चेहरे पर देख रहा था ।

मनोरमा बोलीं, “शीला को अभी इसके विषय में कोई ज्ञान नहीं है विद्यासागर ! परन्तु मेरा विचार है कि वह राजी हो जायगी ।”

“राजी हो जायगी !” आश्चर्य-चकित होकर विद्यासागर की जबान से निकला । “पचास वर्ष के बूढ़े ढाँचे के गले से लिपटने के लिए यह पुष्पलता तय्यार हो जायगी । क्या कहती हो जीजी ! आपने संभवतः अभी अपनी छोटी बहन को समझा ही नहीं ।”

मनोरमा को हँसी आगई विद्यासागर की सादगी पर । वह बोलीं, “अपनी बहन को मैं तुमसे अधिक पहचानती हूँ विद्यासागर ! परन्तु मुझे हार्दिक खेद है कि मैंने तुम्हारे सुकुमार हृदय को ठेस पहुँचाई ।”

विद्यासागर अब सँभल गया था । वह मुस्कराकर बोला, “तब ठीक है जीजी ! शीला सेठानी बन जायेगी तो अपना भी कुछ लाभ ही होगा कभी । अपने आन्दोलनों में कुछ तो सहयोग रहेगा ही उसका ।”

मनोरमा हँस दीं, परन्तु बहुत फीकी हँसी थी उनकी । वह बोलीं, “मैं अपनी शक्तिभर इसे रोकने का प्रयास करूँगी विद्यासागर परन्तु देख रही हूँ कि यह ढाँचा बदलने वाला नहीं है । सेठ की दौलत शीला को निश्चित रूप से ग्रस लेगी और उसके जीवन के सब स्वप्न धन के अन्धकार में विलीन हो जायेंगे ।”

विद्यासागर ने मनोरमा के चेहरे पर देखा तो देखता ही रहा वह कितनी ही देर तक और मनोरमा भी अपलक नेत्रों से एकटक उसके चेहरे को निहारती रही। दोनों ने एक-दूसरे की हार्दिक पीड़ा का अनुभव किया। विद्यासागर बोला एक शब्द भी नहीं। उसने चुप्पे से तकिये के नीचे से अपनी डायरी निकाली और कुछ लिखना प्रारम्भ कर दिया।

विद्यासागर लिखता रहा और मनोरमा चुपचाप बैठी रही। लिख कर विद्यासागर ने डायरी फिर तकिये के नीचे दबा दी और मुस्कराकर बोला, “पहली मंजिल रास्ते की आना चाहती है मनोरमा जीजी ! चार मंजिलों में रास्ता तै करना है मुझे। अभी पहली मंजिल पर ही चल रहा हूँ। मंजिल के पास आकर थकान से पैर भी भारी हो जाते हैं। उस समय साथी की दरकार होती है। लंबे रास्ते पर एक साथी छूटता है तो दूसरा सहारा देता है। आपका सहारा तो बना ही रहेगा विद्यासागर के लिए।”

मनोरमा हँस दी। और फिर आँखें तरेरकर बोली, ‘दो साथी-विहीनों का साथी हो जाना कठिन नहीं होता विद्यासागर ! सहारा कौन नहीं चाहता ? और ज्यों-ज्यों जीवन आगे बढ़ता है, थकावट बढ़ती है, सहारे की आवश्यकता बढ़ती है।’

कहकर मनोरमा खड़ी हो गई। विद्यासागर भी खड़ा होकर कमरे से बाहर निकल आया और बहुत रात गये तक चबूतरे पर टहलता रहा। सोचता रहा, समझता रहा। फिर भी लपक में कुछ न आया।

वह उसी प्रकार आकर बिस्तर पर लेट गया। नींद नहीं आई उसे।

उसने फिर अपनी डायरी निकाली और लिखने बैठ गया। लिखता रहा। जीवन की वे सब घटनाएँ लिखता रहा जिन-जिनको उसे याद आई।

: १०७ :

विद्यासागर लिखता रहा पलंग पर लेटा लेटा। शीला और अपने जीवन की हर घटना को उसने सार करके चित्रित किया। एक-एक

गमले में एक-एक घटना को हरे-भरे पौदे के समान लगाया और उस पर फूल खिलाये ।

एक छोटी-सी फुलवारी बना कर देखा और देखता ही रहा जाने कितनी देर तक । उसने देखा कि उस फुलवारी के ठीक बीचों-बीच शीला मुस्कराती हुई आकर खड़ी हो गई । शीला की घुंघराली लटें हवा के झकोरों में बह कर मुख पर छितरा रही थीं । यह देखकर वह अपलक सा रह गया ।

शीला बोली, “आज रात भर सोये नहीं आया । उपन्यास पूरा करने की जल्दी हो रही है शायद । कहाँ तक पहुँची आपकी लेखनी ? क्या-क्या लिख चुके और क्या-क्या लिखना शेष रहा ?”

विद्यासागर बोला, “उपन्यास यूँ ही कैसे पूरा हो जायगा शीला ! कल्पना तो है नहीं । पूरे जीवन का लेखा-जोखा होगा इसमें । जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते जायेंगे वैसे-वैसे उपन्यास भी आगे आगे बढ़ेगा ।”

रास्ते पर चलते चलो । अभी तो पहली मंजिल का ही रास्ता तै कर रहे हैं और वह भी साफ़ नहीं है । घुंघला-घुंघला नज़र आ रहा है ।”

“आज कैसी उखड़ी-उखड़ी बातें कर रहे हो विद्यासागर जी ! समझी नहीं मैं तो कुछ भी । क्या मेरे और आपके रास्ते दो हैं ? क्या मेरी और आपकी मंजिलें दो हैं ? क्या मेरे और आपके कदम दो हैं ?” दृढ़तापूर्वक शीला ने कहा ।

विद्यासागर ने गम्भीर दृष्टि से शीला के चेहरे पर देखा । वही तेज था । वही विश्वास था, वही आभा थी, वही कांति और नयनों में वही सरसता, वही बाँकापन । कहीं कोई अन्तर नहीं था । कहीं कोई परिवर्तन नहीं था । जो पहले था वही आज था ।

विद्यासागर एकटक देखता रहा । शीला भी देखती रही ।

कुछ देर देखने के पश्चात विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “रात में

तुम्हारे और अपने संपर्क के कुछ चित्र अंकित किये हैं । बैठो सामने कुर्सी पर और सुनो । देखूँ तो तुम्हें कैसे पसंद आते हैं !

शीला बैठ गई और अपनी दृष्टि को उसने विद्यासागर के चेहरे पर गड़ा दिया । नयनों की भाषा में कहा, “सुनाओ मैं सुनने के लिए उत्सुख हूँ ।”

विद्यासागर ने अपनी डायरी निकालकर पढ़नी प्रारंभ की, “बहुत से स्वतंत्र पक्षी आकाश में उड़ते-उड़ते एक वृक्ष पर आ बैठे । हरा-भरा वृक्ष था । फल-फूलों से लवा महँक रहा था । भीनी-भीनी सुहावनी हवा उसकी डालियों और पत्तों में से होकर उसके फल-फूलों से टकराकर चारों दिशाओं को छूती जा रही थी ।

पक्षी चहचहाये । सबने अपने-अपने स्वर वायु के स्वर में मिलाये । अनेकों स्वर अनेकों कानों में पड़े । अनेकों आँखों ने अनेकों सूरतें देखीं—अनेकों शकलें पहचानीं ।

किसी को कोई स्वर मधुर लगा । किसी के कानों में किसी स्वर ने रस घोला । किसी को कोई सूरत पसंद आई । किसी के हृदय में किसी न घोंसला बनाया ।

स्वर मीठे लगे और सूरतें आँखों में समाईं । हृदयों में घर बने । वृक्ष की डालों पर एक नई बुनियाँ आबाद हुई । नया यौवन, नई उमंगों को लेकर विकसित होने लगा । होता रहा, होता रहा और यह जीवन आगे बढ़ता गया, विकसित होता गया ।

एक दिन उस वृक्ष पर रहने की अवधि समाप्त हो गई । पक्षी दूर-दूर से आये थे और अपने सम्बन्धियों से दूर होकर । सबका मन अपने-अपने सम्बन्धियों में जाकर मिलने को छटपटा रहा था ।

परन्तु इनमें कुछ पक्षी ऐसे भी थे कि जिन्होंने अपने पुराने सम्बन्धों को नये सम्बन्धों पर न्यूँछावर कर दिया था । उन्होंने सोचा कि क्या इतने दिन का हमारा यह सम्बन्ध केवल स्वप्न ही था ? क्या इसमें कोई

वास्तविकता नहीं थी ? क्या इसमें कोई स्थायित्व नहीं था ? क्या इसमें भविष्य की योजना नहीं थी ? क्या यह सम्पर्क निराधार था ?

उनके हृदयों ने कहा, 'नहीं, यह स्वप्न नहीं था। सत्य था यह। फिर क्यों एक-दूसरे को ऐसे भूलकर छोड़ दिया जाय कि मानो उनका कोई संबंध ही नहीं रहा। क्यों इस सच्चाई को झुठलाया जाय कि जब वे एक वृक्ष की डालों पर फुदक-फुदककर नाचे-गाये, इठलाये और खेले-कूदे थे तो उनके मनों में कोई आत्मीय भावना ही नहीं आई, कोई स्पन्दन ही नहीं हुआ, कोई गुदगुदी ही नहीं उठी।

खेल-खेल में क्या-क्या जीवन के नक्षत्र बने और कैसी-कैसी कल्पनायें मस्तिष्क में साकार हुईं—क्या उनका कोई महत्व ही नहीं था ?

सबने एक स्वर में कहा,—वह सच था और सच ही रहेगा। जो जीवन आपस में बँध चुके उनके बंधन खुलने वाले नहीं हैं। जो रास्ता जीवन का बन चुका, वह छूटने वाला नहीं...

“बहुत सुन्दर रूपक बाँधा है आपने।” मुग्ध होकर शीला बोली। “आपने तो सचमुच ही उपन्यास को जीवन का सरकार चित्र बना दिया। मनोरमा जीजी को यह बहुत पसंद आयेगा। वह अपना प्रकाशन-कार्य प्रारंभ करने के लिए उतावली हो रही हैं। आप इसे बहुत शीघ्र समाप्त कर लें। मैं अब आपको जमालपुर तभी जाने दूंगी जब आप पूरी पांडुलिपि मेरे हाथों में दे देंगे।” शीला का मन आलोदित हो उठा। उसे पता ही नहीं था कि आज रात विद्यासागर ने कितना भारी मन लेकर काटी है और इस रूपक में वह क्या कहना चाहता था।

तभी मनोरमा भी वहीं पर आगई और उन्हें देखकर शीला बोली, “जीजी, आपका उपन्यास अब पूरा हुआ ही चाहता है। इसे आप किसी प्रेस में दे डालिये। छपना प्रारंभ हो जायगा तो विद्यासागर जी को भी इसे समाप्त करने की चिंता होगी और फिर यह इस तरह इसे रोककर नहीं बैठ सकेंगे।”

मनोरमा देवी बोली, “मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है। मैं तो



कितने ही दिन से उतावली हुई बैठी हूँ। तुम्हें क्या पता नहीं है कि तुम्हारे जीजाजी तो मेरा इसी बात को लेकर उपहास करते हैं। कहते हैं कि कहीं ऐसे भी उपन्यास लिखे जाते हैं। उनका कहना है कि उपन्यासकार ऐसे-ऐसे बैठे हैं कि जिनके हाथ में एडवांस की रकम आज़ रखो और कल उनसे पूरा उपन्यास ले लो। कल नहीं तो और दो-चार दिन लगेंगे वस।”

“इसमें कोई संदेह नहीं मनोरमा जीजी। एक-से-एक बड़ा कलाकार पड़ा है दुनियाँ में। दुनिया लेखकों से रिक्त नहीं है। कविवर रविकर जी को ही ले लीजिये। वह चाहें तो चौबीस घंटे में रामायण लिखकर पूरी कर सकते हैं। ऐसी रामायण कि जिसके सामने गोस्वामी जी की रचना भी फीकी पड़ जाये। और उसपर लिखने से पूर्व ही बड़े-बड़े नेताओं की सम्मतियाँ भी बटोर दें। आप कहें तो ग्रंथ का उद्घाटन भी किसी महापंडित से करायें और भूमिका तो आप जिसको चाहें ला दें।” विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “परन्तु मेरे बूते की ये सब बातें नहीं हैं। मैं तो प्रयास कर रहा हूँ लिखने का और जीवन-भर मेरा यह प्रयास ही चलता रहेगा। अभी मैं पहली मंजिल पर हूँ। उसका भी छोर क्षितिज की रेखा के नीचे दबा हुआ है। आगे बढ़ रहा हूँ। देखिये कब किनारा नज़र आता है ! परन्तु अब प्रतीत ऐसा अवश्य हो रहा है कि पहली मंजिल का छोर निकट ही आ गया है।”

विद्यासागर की बात सुनकर मनोरमादेवी का चेहरा खिल उठा और शीला भी हर्षित होकर उत्साह के साथ बोली, “चौथे रास्ते की पहली मंजिल दूर नहीं है अब जीजी ! ‘भारतीय सहयोग समिति’ का प्रथम कार्य पूर्ण सफलता के साथ संचालित हो चुका है और दूसरे का शुभारम्भ होने जा रहा है। एक विकास के मार्ग पर है और दूसरा उदय के। इसी को मैं पहली मंजिल मानती हूँ।”

विद्यासागर बोला, “इसी मंजिल के सामने दो काले बादल भी हैं। वे भी मंडरा रहे हैं शीला ! उन्हें पार करके क्षितिज की रेखा को छूना

है। और उन्हें पार किये बिना पहली मंज़िल पर नहीं पहुँचा जा सकता।”

शीला ने आश्चर्यचकित होकर विद्यासागर के चेहरे पर देखा।

: १०८ :

शीला चली गई। मनोरमा वहीं बैठी रह गई। विद्यासागर ने डायरी के पन्ने उलटकर कहा, “आप चाहें तो इसे प्रेस में दे सकती हैं अब। चन्द दिन की कहानी शेष है इसमें। दोनों स्थानों से परीक्षा-फल प्राप्त करना है। देखा हूँ कौन पास और कौन फेल होता है जीजी !

पुष्के तो आगे बढ़ रहा है। जो-जो भी संकट आते हैं उन्हें मैं व्यक्तिगत मान लेता हूँ और जो कदम आगे बढ़ता है उसे सामूहिक कहता हूँ। वह मेरा कदम नहीं होता, वह कदम पूरे समाज का होता है क्योंकि इसी से मैं बल लेता हूँ।.....”

बात पूरी समाप्त भी न हो पाई थी कि तभी नरेश मेहता की कार आकर कोठी के पोर्टिगो में रुकी और उसके अन्दर से नरेश मेहता के साथ सेठ रुढ़ेमल जी भी चिकन का जाजीदार चुना हुआ कुर्ता पहने उतरे।

नरेश मेहता उनको आवभगत के साथ लेकर ड्राइंग रूम में चले गये।

मनोरमा बोली, “देखा तुमने इस खूसट को। हड्डियों के ढाँचे पर किस करीने के साथ सुकंद कुर्ते और धोती के कफ़न लटकाये हुए हैं इसने। चिता में पेंर हैं इसके और दूल्हा बनने की दिल में तमन्ना है।”

“जिंदाविल आदमी है।” विद्यासागर ने कुढ़कर कहा। “परन्तु मेरी यह समझ में नहीं आया कि भाताजी कैसे इस खूसट के गले में शीला को लटकाने के लिए उद्यत हो गई ?”

विद्यासागर की बात सुनकर मनोरमा ने ठंडी साँस ली और वह गम्भीरतापूर्वक बोली, “विद्यासागर, तुमको मैं अब अपने परिवार का एक

अंग मानने लगी हूँ। हमारा और तुम्हारा सम्बन्ध केवल 'समिति' के कार्यालय का नहीं रहा है। घर के गुप्त रहस्यों को भी तुम पर उद्घाटित कर देना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ।

इसी से तुम्हें बतलाती हूँ कि माताजी को मेहता जी का अभी एक लाख रुपया अदा करना है। पहले यह दो लाख था, मेरे पिताजी के समय में। उसमें से एक लाख रुपये की बेवाकी पिता जी ने इनके साथ मेरा विवाह करके की परन्तु फिर भी एक लाख रुपया शेष रह गया।

तो उसकी अदायगी सेठ रुढ़ेमल जी करके शीला से अपना विवाह रचायेंगे।

“और यदि यह न हुआ तो ?” विद्यासागर ने पूछा।

“तो हमारी पारिवारिक आबरू मिट्टी में मिल जायगी। पूर्वजों के अर्जित नाम को कालिख लग जायगी।

मेहता साहब इस कोठी को नीलाम करा लेंगे।”

मनोरमा की बात सुनकर विद्यासागर अवाक् रह गया। फिर उसने सरलतापूर्वक पूछा, “क्या शीला को इस परिस्थिति का ज्ञान है ?”

मनोरमा बोली, “अभी कुछ नहीं है। उसे धीरे-धीरे बताया जायगी सारी बात। ठीक उसी प्रकार समझायी जायगी जैसे मुझे समझाई गई थी। शीला को भी वैसे ही फुसलाया जायगा जैसे मुझे फुसलाया गया था। पारिवारिक मान-मर्यादा की देवी पर कन्या का बलिदान चढ़ाया जायगा। पैसे का प्रलोभन दिखाया जायगा।”

“तब क्या आपका भी हाथ होगा इसमें ?” विद्यासागर ने सीधा प्रश्न किया।

“हाथ मेरा कुछ नहीं होगा विद्यासागर, परन्तु मैं कुछ बोल नहीं सकती इस मामले में। तुम अभी नहीं जानते हो कि बहन-बहन का नाता कितना विचित्र होता है। भली बातें बुरी हो जाती हैं और बुरी बातें

भली लगने लगती हैं। मनुष्य स्वार्थ का पुतला है विद्यासागर !” मनोरमा मुस्करा कर बोली।

विद्यासागर ने आज मनोरमा के मुस्कराते हुए चेहरे को आश्चर्य-चकित होकर देखा। वह समझ ही न पाया कि छोटी बहन को इस प्रकार गढ़े में गिरती देकर बड़ी बहन मुस्करा कैसे सकती है। कैसे ऐसे धैर्य से बातें कर सकती है और कैसे इस सबको वह सहन भी कर सकती है।

विद्यासागर बोला नहीं कुछ। मौन ही बना रहा। उसके मस्तिष्क में अनेकों विचार आ-आकर जाने लगे और हृदय में एक कसकीली पीड़ा का उसने अनुभव किया।

मनोरमा को विद्यासागर के चेहरे को पढ़ने में देर न लगी। वह उसी प्रकार मुस्कराती हुई बोली, “शीला सेठानी होकर कैसे लगोगी विद्यासागर !”

“बहुत सुन्दर। सोने में सुहागा मिल जायगा। रूप को ऐश्वर्य की दरकार होती ही है। ऐश्वर्य से रूप पर और भी निखार आ जायगा। कुन्दन सा दमकने लगेगा यह सोना। मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता उस रूप की जो शीला पर छा जायगा।” विद्यासागर बोला।

“ठीक ये ही शब्द मेरी सहेली लता ने मेरे विवाह के समय कहे थे, परन्तु हुआ उसके ठीक विपरीत। रुपये पैसे का ऐश्वर्य मेरे सौंदर्य में वृद्धि नहीं कर सका विद्यासागर ! तुमने मुझे तब देखा जब मैं अप्रसन्न थी। मैं अन्ध से थोथी हो गई थी। मेरा दिल जल-भुनकर क्षार हो चुका था। जीवन की सब उमंगें निराशा में विलीन हो चुकी थीं। तुम्हें आश्चर्य होगा कि जिस मनोरमा का हर पैर जमीन पर ताल और स्वर के साथ पड़ता था वह विवाह के पश्चात् ताल और स्वर से ऐसे सम्बन्ध विच्छेद कर बैठी कि मानो मनोरमा का कभी उनसे कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा।

तुम्हारे सम्पर्क में आने के पश्चात् मुझे फिर से अपनी पुरानी कला

की याद आई और घोर निराशा में भी मैंने एक दिन आशा का स्वप्न देखा । नाचती रही मैं एकांत में कितनी ही देर तक । मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरे पैर अधिक सतर्क थे अपने गुणों की सुरक्षा में ।”

विद्यासागर ने गम्भीरतापूर्वक मनोरमा की आँखों में झाँका । वह समझ नहीं पा रहा था कि मनोरमा क्या कह रही हैं । और जो कुछ कह रही है वह किस अभिप्राय से कह रही हैं । शीला के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति है या उदासीनता । ऊपरी शिष्टता के अन्दर कौन सी धारा बह रही है; मीठे रस की या सादे पानी की ।

तभी मनोरमा मस्ती में झूमकर इठलाती हुई खड़ी होकर बोली, “तनिक माताजी के पास हो आऊँ । आपकी चाय ला रहा होगा नौकर । शीला को भी भेज रही हूँ तुम्हारे पास । दोनों चाय पीकर तय्यार हो जाना । मैं भी आती हूँ और तब प्रेस में चलेंगे । मेरा विचार है कि आज तुम्हारी पांडुलिपि को छपने के लिए दे ही डालूँ । शीला सच कहती थी कि जब पुस्तक छपने लगेगी तो तुम्हें भी उत्सुकता होगी उसे पूरा करने की ।” कहकर मनोरमा चली गई ।

विद्यासागर अकेला बैठा रह गया । डायरी खुली पड़ी थी उसके सामने । उस पर एक कोने में सेठ रूढ़ेमल जी का नाम भी अंकित कर लिया । और धीरे से अपने आप से ही कहा, ‘आइये सेठ रूढ़ेमल जी ! आप भी मंच पर आइये । जब सभी लोग अपना-अपना पार्ट अदा कर रहे हैं तो आप ही पीछे कैसे रहते ।’

: १०६ :

विद्यासागर पलंग एक ओर सरकाकर गोलमेज के पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गया । तभी उसने कीठी के सामने वाले बड़े वरांडे के दूसरे कोने पर देखा कि शीला नौकर से चाय लिवाकर ला रही है ।

शीला को अपनी ओर आते देखकर विद्यासागर के दिल में जाने कैसी कसमसाहट सी पैदा हुई कि वह स्वयं भी उसका अर्थ न लगा सका

वह मीठी थी परन्तु कसक से भरी हुई थी। जलन नहीं थी उसमें परन्तु पीड़ा थी हलकी-हलकी। और ज्यों-ज्यों वह पास आती जाती थी मन की कुलमुलाहट बढ़ती जाती थी।

शीला को देखकर विद्यासागर के मन में एक तूफान सा आ रहा था। वह चाहता था कि इस तूफान में उसे बहाकर वह कहीं सात समंदर पार ले जाये जहाँ मेहता साहब और सेठ रूढ़ेमल जी तीन काल में भी न पहुँच सकें।

वह तूफान धीरे-धीरे अंतर में विलीन सा हो गया। शीला ने चाय मेज पर रखदी और स्वयं विद्यासागर के सामने पड़ी मेज के बाईं और वाली कुर्सी पर बैठ गई।

शीला आज बहुत प्रसन्न थी। उसने दो तश्तरियों में दो प्यालियाँ रखकर चाय बनाई और टोस्टों पर छुरी से मक्खन लगाया। सब तैयार करके बोली, “चाय तैयार है विद्यासागर जी !”

विद्यासागर ने शीला के उत्साहपूर्ण चेहरे पर देखा और अपने दिल की कसमसाहट को भुलाने का प्रयास करके बोले, “क्यों मुझ गाँव के रहने वाले की आदत खराब करती हो शीला ! एक चीज आज हो और कल न रहे तो बड़ा कष्ट होता है।”

शीला सरल भाव से मुस्कराकर बोली, “आप थक गये हैं आज लिखते-लिखते। इसीलिए अधिक विनम्रता है। थककर आदमी नम्र हो जाता है।”

“नम्रता सफलता का गुण है शीला ! और असफलता में झुंझलाहट पैदा होती है। परन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो असफलता में झुंझलते नहीं।” विद्यासागर बोला।

“जैसे आप।” मुस्कराकर शीला बोली, “क्या मजाल जो कोई भांप जाय कि आपके हृदय में कैसी ज्वाला सुलग रही है या कैसी सरस धारा प्रवाहित हो रही है; तूफान आ रहा है या शांति का साम्राज्य छाया हुआ है; आकर्षण है या घृणा है।”

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “इतनी आस्था मुझमें रखने वाली शीला यदि मुझसे बिछड़ जाय तो मेरी क्या दशा हो शीला !”

शीला स्तब्ध सी रह गई विद्यासागर की बात सुनकर। उसके होठ हिले उन पर कोई शब्द नहीं आया। उँगली प्याली के कुँडे में पड़ी की पड़ी ही रह गई। वह सोचती ही रही कि यह बात विद्यासागर ने क्यों कही। और फिर उसका सम्बन्ध गत दिन की उखड़ी-उखड़ी सहमी-सहमी बातों से जोड़ने का प्रयास किया परन्तु कोई सिलसिला न बैठ सका।

अंत में वह भी मुस्कराकर बोली, “आपकी दशा का अनुमान लगाना मेरे लिए कठिन है, परन्तु मैं इतना अवश्य बतला सकती हूँ कि यदि मुझसे वह व्यक्ति बिछड़ जाय जिसमें मैं इतनी आस्था रखती हूँ तो मेरा रास्ता बदल सकता है।”

“यह क्यों ?” विद्यासागर ने पूछा।

“यह यूँ कि रास्ता बनाने वाली मैं नहीं हूँ। मैं तो रास्ते पर चलने वाली एक साथिन हूँ, सहयोगिनी हूँ, और एक मजदूरिन भी मुझे आप कह सकते हैं क्योंकि रास्ते में आने वाले भाड़ भंकाड़ों को कुदाली लेकर मैंने भी काटा है, रास्ते में आने वाले पथरीले टीलों को मैंने भी खोदा है और खंदकों को इधर-उधर से पलियाँ भरकर, मिट्टी लाकर, मैंने भी पाटा है। यह सब कुछ किया है मैंने और भविष्य में करने का स्वप्न देखा है।”

विद्यासागर के हृदय ने अनुभव किया कि अभी तक शीला में कहीं पर भी कोई कमी नहीं है। अब देखना है कि यह परिवार की मान मर्यादा पर अपने को न्योछावर करके हमारे चौथे रास्ते से हटती है या उस रास्ते पर चलने के लिए परिवार की मान-मर्यादा को उस पर न्योछावर कर देती है।

मौन विद्यासागर ने शीला की ओर देखा। वह भी मौन थी ठीक विद्यासागर की ही तरह। विद्यासागर बोला, “पहली मंजिल निकट आ रही है शीला ! तुम्हारे कबम में देखता हूँ कि काफी मजबूत हैं।

उनमें थकान का नामोनिशान भी नहीं है। उत्साह की कोई कमी मुझे नहीं दिखाई देती। परन्तु फिर भी मंजिल की अंतिम चढ़ान है। संभल कर चलना तुम। मेरा स्नेह, मेरा कर्तव्य, मेरा विश्वास तुम्हारे साथ है। इतना ध्यान रखना कि कहीं धोखा न खा जाऊँ मैं।”

विद्यासागर की बात सुनकर शीला मदहोश सी हो गई। उसके अन्वर की उत्साहपूर्ण खुमारी उसके मस्तिष्क में छा गई। परन्तु तुरन्त ही सजग होकर बोली, “आपका स्नेह, आपका कर्तव्य, आपका विश्वास पाकर मैं क्या करूँगी विद्यासागर जी ! जब तक आपका आशीर्वाद मेरे साथ नहीं रहेगा। मुझे तो केवल उसकी ही दरकार है। शेष सब चीजें आप अपने ही पास सुरक्षित रखें। समय आने पर मैं स्वयं माँग लूँगी।”

तब तक मनोरमा भी आ गई और दोनों की प्यालियाँ भरी देखकर मुस्कराती हुई बोली, “अभी तक चाय भी नहीं पी दोनों ने। बातों ही बातों में चाय ठण्डी कर दी।”

शीला ने प्याली होठों से लगाई तो वह सचमुच ही ठण्डी हो चुकी थी।

विद्यासागर बात को थामकर बोला, “मैं तो पीता ही ठंडी हूँ जीजी ! आज शीला ने भी मेरा साथ देने के लिए अपनी चाय ठंडी कर ली। भला इससे पूछिये खाने-पीने की रुचि में एक दूसरे के साथ अपना स्वाद खराब करना कहां की बुद्धिमत्ता है। तब से कह रहा हूँ तुम अपनी चाय ठंडी न करो। परन्तु यह है कि होठों से नहीं लगाई प्याली।”

विद्यासागर की बात सुनकर मनोरमा को हँसी आ गई। वह बोली, “अच्छा चलो जल्दी करो। सेठ रुठेमल और तुम्हारे जीजा जी तुम लोगों की राह देख रहे हैं। सेठजी का बहुत बड़ा छापाखाना है। उसी में तुम्हारी पुस्तक छपेगी। मैंने सब बातें निश्चित कर ली हैं।”

शीला ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, “सेठ रुठेमलजी कौन ?”



“नगर के सबसे बड़े सेठ । जिनके कई बड़े-बड़े कारखाने हैं । सुगर मिल, सोप फेक्ट्री, पेपर मिल, कार्ठ बोर्ड मिल, क्लाय मिल क्या नहीं है उनके पास । कई बड़े छापेखाने हैं । कई दैनिक और साप्ताहिक पत्र हैं उनके । ख्याति के बड़े-से-बड़े साधन हैं उनके पास ।” मनोरमा बोली ।

शीला खड़ी हो गई चलने के लिए परन्तु विद्यासागर अपनी कुर्सी से न हिला ।

मनोरमा ने पूछा, “क्या बात है ? क्या आप सेठ रूढेमल जी के प्रेस में नहीं छपाना चाहते अपनी पुस्तक ? बढ़िया मोनो टाइप में छपेगी । सुन्दर पेपर पर छपेगी । पहली ही पुस्तक वह शानदार निकलेगी कि प्रकाशन चमक उठे ।”

विद्यासागर बोला, “जीजी ! आपकी बात को नां करते मुझे संकोच होता है परन्तु जहाँ सिद्धान्तों का प्रश्न सामने आ जाता है वहाँ बेचारी भावुकता की दाल नहीं गलती ।

मैं अपनी पुस्तक को मोनो टाइप से नहीं हैंडकास्टिंग टाइप से ही छपाना पसंद करूंगा । मैं उसे आर्टपेपर पर न छपाकर साधारण कागज पर ही छपाना चाहूंगा । उसका मूल्य कम-से-कम हो और उसकी लागत का अधिक से अधिक रुपया देश की बेरोजगारी दूर करने के काम आये । मेरा यह लक्ष रहेगा ।”

मनोरमा एक शब्द भी आगे न बोल सकी ।

शीला भी चुप रही ।

थोड़ी देर में मनोरमा ने विद्यासागर के चेहरे पर देखा और गम्भीरतापूर्वक बोली, “जहाँ तक विचारों का सम्बन्ध है मैं सोलह आने सहमत हूँ तुम्हारे विचार से विद्यासागर, परन्तु आज की स्थिति में यदि काम चलाना चाहते हो तो पूंजी की दरकार तो होगी ही । बिला पूंजी के पुस्तक कैसे छपेगी ? और फिर एक पुस्तक के छपाने से प्रकाशन नहीं चलेगा । उसके लिए बराबर रुपया चाहता ही रहेगा । मेरे पास केवल एक हार है और वह भी इतना कीमती नहीं जितना सरूपरानी का था ।

परन्तु मैं निश्चय किये बैठी हूँ कि प्रकाशन का प्रारंभ इसे ही बेचकर करूँगी। मेरे इस हार पर शीला के जीजा जी का कोई अधिकार नहीं है। यह हार मुझे पिताजी ने उस रुपये में से बनवाया था जिसे मुझे बेच कर इनसे उन्होंने प्राप्त किया था।

सेठ रूढेमलजी के छापेखाने से हमें अच्छा खासा क्रेडिट मिल जायगा और उस क्रेडिट के आधार पर हम अपने प्रकाशन-कार्य को आगे बढ़ाकर ले जायेंगे।

जब हमारी पूँजी की व्यवस्था ठीक हो जायगी तो हम धीरे-धीरे तुम्हारी योजना पर आ जायेंगे। रूढेमल जी हमें बाँधकर नहीं रख सकते।”

मनोरमा की बात विद्यासागर की समझ में आ गई। मनोरमा की स्थिति का भी उसने अध्ययन कर लिया। और वह उत्साह के साथ बोला, “तब ठीक है। जैसा आप उचित समझें करें। जैसे भी हो सके साधन जुटाने का प्रयत्न करें और जब साधन जुट जायें तो उन्हें देश की जनता के अधिकाधिक लाभ के लिए प्रयोग करने की योजना बनायें। मेरा केवल यही अभिप्राय है।”

: ११० :

मनोरमा सेठ रूढेमल और नरेश मेहता के पास चली गईं और शीला तथा विद्यासागर ‘समिति’ के कार्यालय की ओर।

शीला मार्ग में बोली, “आज सवेरे-ही-सवेरे जीजा जी सेठ रूढेमल जी को लेकर हमारे यहाँ कैसे आये, यह समझ में नहीं आ रहा विद्यासागर जी ! आपकी जीजी से इस विषय में अवश्य ही कुछ बातें हुई होंगी।”

विद्यासागर चुप होगया शालाकी बात सुनकर और उसने इधर-उधर की बातें करके उस प्रसंग को अपने सामने से हटाने का प्रयास किया

परन्तु शीला का माथा ठनक चुका था और वह जब तक उसकी पूरी खोद-उपाड़ न कर ले, चैन से नहीं बैठना चाहती थी।

शीला ने बुबारा पूछा, “रात मनोरमा जीजी से आप मेरे प्रसंग को लेकर क्या बातें कर रहे थे ?”

यह इतना स्पष्ट प्रश्न था शीला का कि जिसका उत्तर दिये बिना विद्यासागर के लिए बच निकलना असंभव हो गया। वह सोचने लगा कि क्या कहूँ शीला से। क्या पूरी बातें उसे बतला दूँ ? या कुछ बातें छिपाकर संक्षेप में बात को टालने का ही प्रयत्न करूँ। परन्तु तुरन्त ही उसे ध्यान आया कि यदि शीला ने उनकी रात की पूरी बातें दर-बाजे के पीछे खड़ी रहकर सुन ली हों तो उसका बातों को छिपाना उनके पारस्परिक संबंधों में घातक सिद्ध होगा।

विद्यासागर तनिक घबराहट के साथ बोला, “शीला ! कल रात मेरी जो बातें मनोरमा जी से हुईं, उन्होंने मेरी मनस्थिति खराब कर दी।”

“और इसी लिए आपको रान भर नींद नहीं आई। आपका शीला से विश्वास उठ गया।” शीला गम्भीरतापूर्वक बोली।

विद्यासागर के आगे बढ़ते हुए कदम रुक गये। उसे पसीना आ गया और वह बोला, “शीला सिर चकरा रहा है। मुझे लगता है कि मानो अंदर की सब शक्ति जाती रही। मैं कहीं थोड़ी देर के लिए बैठ कर विश्राम करना चाहता हूँ। मैं चल नहीं सकूँगा अब चार कदम भी।”

विद्यासागर की दशा देखकर शीला घबरा उठी। उसे पश्चाताप हुआ कि क्यों उसने ऐसी कठोर बात विद्यासागर से कही। आखिर उनका तो कोई दोष नहीं था उसमें। उसने तो जो कुछ भी सुना था, उस विषय को अमृत समझकर ही पान किया था। उसकी ज़बान पर तो एक शब्द भी नहीं आया किसी प्रकार का।

शीला भयभीत होकर बोली, “क्षमा कर दो मुझे विद्यासागरजी ! मैं मपने शब्द वापस लेती हूँ । सोई मैं भी नहीं रात भर । रात भर मेरी पलकें नहीं भूँपीं । रात-रात में चार बार आई आपके कमरे के पास और इसलिए अन्दर नहीं आई कि आखी कलम चल रही थी । हर बार लौट गई यही सोचकर कि आपके लिखने में बाधा न बन जाऊँ मैं ।”

विद्यासागर ने अपने को संभाला और शीला के दीन चेहरे पर प्रेम-भाव से देखा । वह उतना ही सरल था जितना पहले कभी उसने देखा था, बल्कि उससे भी कहीं और अधिक । न उस पर कहीं भी धन की लालसा की झलक थी ? और न सेठानी बनने की आकांक्षा ।

विद्यासागर बोला, “तुमने कहा ही क्या है शीला ! जिसके लिए तुम क्षमा याचना कर रही हो और न मेरा तुम पर से विश्वास ही कभी उठ सकता है । परिस्थिति वश यदि कोई घटना ऐसी भी घटे कि जिससे मेरे हृदय को आघात पहुँचे तो तब भी क्या तुम मेरे विश्वास को ऐसा झिल-मिल समझती हो कि सड़क पर पड़े रोड़े की तरह ठोकरें खाकर अपना स्थान बदल दे ? मैं अपने विश्वास को वह चट्टान समझता हूँ कि जिसे ज्वालामुखी भी टस-से-मस नहीं कर सकता ।”

विद्यासागर और शीला जाकर एक बाग के लॉन की हरी घास पर बैठ गये थे । तभी एक पानी पिलाने वाला सिर पर पानी का मटका रखे सामने से आ गया ।

शीला बोली, “दो गिलास पानी दो भाई पानी वाले ।”

विद्यासागर ने पानी पीकर एक गिलास से अपना मुँह धोया और फिर बोला, “कितना कमजोर हूँ मैं शीला ! यह आज अनुभव किया और यह भी देखा कि दिल पर आघात पहुँचने से मनुष्य कितना बेकाबू हो जाता है ।”

“इसमें कोई संदेह नहीं विद्यासागर जी ! मैं रात भर कौंसो ज्वाला में जलती रही, इसका वर्णन नहीं कर सकती आप से । आँखों का पानी भी जाने कहाँ चला गया था । कई बार चाहा कि खूब जी भरकर रोऊँ,

परन्तु एक भी आंसू नहीं आया। पड़ी पड़ी सोचती रही कि कब सवेरा हो और कब आपसे इस विषय में बातें करूँ।” सरलतापूर्वक शीला ने कहा।

विद्यासागर ने देखा कि तभी शीला के सरल चेहरे पर कुछ क्रोध की रेखायें खिचती चली आईं। उसके नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी। वह आवेश में आकर बोली, “विद्यासागर जी ! आप अभी हमारे जीजा जी से परिचित नहीं हैं। खल व्यक्ति आपने बहुत से देखें होंगे, परन्तु ऐसा खल दूसरा नहीं मिलेगा आपको। मनुष्य के रूप में दाजव हैं यह। इन्होंने जीजा के जीवन का सर्वनाश कर दिया। कली को फूलने-फलनेसे पहले ही कुचलकर रख दिया और सच यह है कि इन्हीं महोदय के आघात को न सह सकने के कारण पिता जी की अकाल मृत्यु हो गई। यह नर पिशाच हैं। मैं इनका अपनी कोठी पर आना सह्य नहीं कर सकती।”

विद्यासागर शीला की बात सुनकर सकपकाया सा रह गया। वह देखता रहा शीला के चेहरे पर बहुत देर तक। कुछ वृद्धों का साहस उसमें नहीं था।

शीला स्वयं बोली, “मैं पिताजी की मृत्यु का इस पापी से जत्र तक बदला न ले लूंगी तब तक मुझे चैन नहीं आयेगी विद्यासागर जी ! यह आते हैं अब माताजी को मूर्ख बनाने के लिए। सेठ रुहेलाल जैसे कोढ़ी को लेकर मेरी शादी कराने के लिए। और उनसे इस बहाने रुपया ऐंठने के लिए। जीजा सीधी-सादी थीं सो इनके चक्कर में आ गईं। मैं इन्हें छठी तक का खाया-पीया याद कराके भी इनका पीछा नहीं छोड़ूंगी।”

शीला का चेहरा तमतमा रहा था। गालों में विषुद्ध रक्त की सुर्खी सेब की भाँति दमक आई थी और कटारेदार मोटी-मोटी आँखें आवेश में रक्तिम हो गई थीं।

फिर धीरे-धीरे शीला का क्रोध हलका पड़ता गया। वह अपनी साधारण दशा में आ गई और मुस्कराकर बोली, “आप देखते रहो विद्यासागर जी ! मैं इनकी क्या गति बनाती हूँ। पूरा एक लाख रुपया

इन्हें सेठ रुडेमल जी से दिलाकर शादी से ऐसा इंकार करूंगी कि ये दोनों ही चारों खाने चित्त आर्येंगे। मुझे मासूम है कि जीजा जी को किसी का पिछतर हज़ार रुपया देना है और उसने आजकल इनका जीना मुश्किल किया हुआ है। सेठ रुडेमलजी से रुपया लेकर यह उन महाशय का भुगतान कर देंगे और शेष पच्चीस हज़ार इनके पाँच दिन के हैं।”

“क्या मतलब !” विद्यासागर ने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

“मतलब यही कि पाँच दिन में शेष पच्चीस हज़ार भी इधर-उधर ठिकाने लग जायगा। और तब मैं इन्हें स्पष्ट कह दूँगी कि मेरा अभी विवाह करने का विचार ही नहीं है।

जानते हो यह सुनकर क्या होगा ?”

“क्या होगा ?” विद्यासागर ने पूछा।

“बड़ा ही आनंद आयेगा विद्यासागर जी ! सेठ रुडेमल और जीजा जी में तनातनी होजायगी। देने-लेनेके लिए जीजाजी पर रुपया शेष नहीं रहेगा और सेठ रुडेमल अपने रुपये के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद सब कुछ लगा देगा। दोनों आपस में ऐसे टकरायेंगे जैसे कठपुतली का तमाशा दिखाने वाला दो काठ के बने पुतलों को आपस में खटाखट टकराता है।”

: १११ :

बाग से उठकर शीला और विद्यासागर दोनों ‘समिति’ के कार्यालय में पहुँचे। उस्ताद भम्मन राह देख रहे थे विद्यासागर की।

शीला कार्यालय में चली गई और विद्यासागर अतिथिशाला में।

भम्मन विद्यासागर को आते देखकर खड़ा हो गया।

विद्यासागर बोला, “कहो उस्ताद ! रात तो मौज से कटी ना !”

“खूब मौज की भय्या ! कल थारे सिहायक नै सारे सहर की सँर करवाय दई। सारे बजारन में खूब घूमे, खूब फिरे। पर अब जी नाँय लग रह्या ह्याँ। गाम की याद आय रही है। रामसिंह और कनकू कू सारा काम भार है रह्या होयगा। तम कहो तो मैं गाम कू चला जाऊँ।”

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “किसी से अपने यहाँ आने के विषय में बातें न करना । दरोगाजी को अपने पास तक न फटकने देना । दूध-शाला को छोड़कर गाँव में कहीं इधर-उधर न बैठना । ये सब बातें मंजूर हों तो तुम जा सकते हो भूमन पहलवान ।”

“मुझे सब मंजूर हैं । अब और जावे सराईदगी मत दिवावो भय्या ! यूँ जै गलती खाई है याकू आखरी समझो बस । भूमन का दिल जितना नरम है वितना ही जालम भी है । तम कहो तो दरोगा कू कच्चा ही चबाय जाऊँ । मैं तो वाके इसानन में फँस गया हा । नाँय तो कहा मैं वाकी सराब का भूखा बैठा हा । यूँ लुच्ची सराब कधी-कधी मुझे काबू कर लेय है भय्या ।”

भूमन पहलवान की सच्ची बात सुनकर विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “इस लुच्ची शराब को तो छोड़ना ही होगा भूमन पहलवान ! यह सब दुर्गुणों की जड़ है । इसका चस्का ही बुरा है । इससे ही तो संगत खराब होती है और आवामी की आवश्यकतायें बढ़ती हैं । उनकी पूर्ति के लिए सीधे साधन उपलब्ध न होने पर उलटे रास्ते अपनाने पड़ते हैं । चोरी चकोरी की जन्मवात्री भी यह शराब ही है भूमन पहलवान ।”

“जामे का सक है ।” गम्भीरतापूर्वक भूमन पहलवान बोला । “यूँ लुच्ची सराब ही सारे कुकरम करवावे है । मैं या कू अच्छी तरियों जानूँ हूँ । याने मझे काबू करा है । पर अब अकीन मानो भय्या अक जो मैं याकू होठन से लगऊँ तो बुरी चीज पीऊँ ।”

भूमन पहलवान का अब और अधिक मन नहीं लग रहा था शहर में । विद्यासागर बोला, “शहर में आकर भूमन पहलवान का दम घुटने लगा है शायद ! यहाँ की धिच-पिच, यहाँ का गुल-गपाड़ा और खचा-खच पसंद नहीं आई तुम्हें । गाँव के सैलानी को शहर के बंधन पसंद आ भी नहीं सकते ।”

“बात ते थारी सच्ची है सागर भय्या ! मझे तो सहर की भीड़-भाड़ में साँस देन की भी मुस्कल नजर आवे है । कहीं-कहीं ते दम घुटन

लगे हैं और नालीन की सड़ायद से सिर फूटन लगे हैं। पर कहीं-कहीं ऐसा सफ़ा भी है अक सड़कन पे चौका सा लग रह्या है। काहू ने सड़कन कू धोय माँज के रख दया है।

पर असल बात यू है अक जो मजा गाम का है ऊ सहर में नाँय घरा भय्या !”

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “तो अपना मजा खराब मत करो तुम भम्मन पहलवान ! गाँव चले जाओ पहली मोटर से। रेल का इंतज़ार न करना। और लता से कह देना कि मुझे अभी नहीं आ सकूँगा वहाँ। एक नया कार्य प्रारंभ हो रहा है। उसी में लगा हुआ हूँ मैं। कोई चिंता की बात नहीं है।

बापू और माँ से भी मेरी राम-राम कह देना। बता देना कि चमेली भी मजे में है और उन्हें बहुत याद करती है। मैं इस बार जब गाँव आऊँगा तो उसे भी साथ लाऊँगा।”

तभी शीला भी वहीं आ गई। शीला ने मुस्कराकर पूछा, “सिनेमा देखा भम्मन पहलवान ! शहर की सँर की ?”

“खूब करी देवी जी ! थारी मेहर से खूब सँर करी और थारे सिहायक ने सनीमा भी दिखाय दिया। खूब मजा आया। पर अब घर कू जान का मन है रह्या है।” भम्मन बोला।

“इतनी जल्दी क्या है ? शहर में किस चीज की कमी दिखाई दी तुम्हें। यहाँ के लोगों का रहन-सहन अच्छा नहीं लगा या कोई और बात है।” शीला ने पूछा।

भम्मन मुस्कराकर बोला, “काहू के रहन-सहन से हमें कहा मतलब है देवी जी। पर यहाँ की धिच-पिच से भौत जी दुख्याय गया। आदमी से आदमी रगड़ खाय के चलत है। कंधन से कंधे छुलत जात हैं।”

“इसमें कोई सन्देह नहीं भम्मन पहलवान। शहर में बड़ी भीड़ है। बाजारों और गली मोहल्लों में चलना-फिरना भी कठिन है। आबादी इतनी घिनकी हो गई है कि साँस लेने में भी कठिनाई होती है।



और तुम ठहरे खुले जंगल के परिन्दे । जिधर को जो चाहा उड़े और जिधर दिल ने कहा उधर को चले । यह सब शहर में सम्भव नहीं हैं ।” शीला बोली ।

“याही लेंगें तो मन एक ही दिन में अचकचाय गया । और फिर अपने काम-काज की याद आय रही है । सारे काम का भार बिचारे रामसिंह और कनकू पे आय गया होयगा ।”

भूमन पहलवान के लिए शीला ने सहायक को भेजकर कचौड़ियाँ और आधा सेर दूध मंगाया था । वह लेकर आ गया ।

शीला बोली, “तो लो कुछ खा तो लो पहलवान ! फिर जैसा उचित समझो कर लेना । गाँव में बड़ी होशियारी से रहने की आवश्यकता है । कहीं व्यर्थ फंस गये तो हम सबकी बदनामी होगी । बहुत सँभलकर चलना । और फिर आप स्वयंभुज हैं । मैं तो बच्ची के समान हूँ आपकी ।”

भूमन की गर्दन नीची हो गई । परन्तु उसे बुरा नहीं लगा शीला का कहना क्योंकि उस कहने में सहानुभूति और अपनापन था । हित था उसका अपना ही ।

भूमन ने वे ही शब्द दुबारा दुहराये जो उसने विद्यासागर के सामने कहे थे और फिर कचौरी खाकर, दूध पीकर वह गाँव जाने को तय्यार हो गया ।

शीला ने सहायक को अपने बटुवे में से पाँच रुपये का नोट निकाल कर दिया और बोली, “जाओ भूमन पहलवान को मोटर में बिठला आओ ।”

भूमन चला तो उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं । वह दीन भाव से बोला “भय्या ! या बिरियाँ की गलती माफ़ कर दीजो । अब कधी तमकू मेरी उरियाँ से गलती नाँय मिलेगी ।”

विद्यासागर ने भूमन पहलवान को छाती से लगाकर कहा, “मन भारी न करो भूमन ! गलती समझ में आने पर गलती नहीं रहती

बल्कि आगे के लिए रास्ता साफ़ हो जाता है। भविष्य का अंधकार मिट जाता है और आगे को संभल कर चलने के लिए मार्ग खुल जाता है।”

भूमन राम-राम करके कार्यालय के सहायक के साथ चल दिया और विद्यासागर तथा शीला बराँडे से उन्हें जाते हुए देखते रहे।

विद्यासागर बोला, “भूमन जा रहा है शीला। डरता हूँ कि कहीं यह गाँव में जाकर दरोगा जी पर न बरस पड़े और क्रोध में आकर उलटी सीधी बातें न कर डाले।

“अब नहीं करेगा यह कुछ। आप निश्चित रहें। आगे के लिए आँखें खुल गई हैं इसकी। कल सहायक से जो बातें भूमन पहलवान ने की हैं उनके आधार पर कह रही हूँ मैं।” शीला बोली।

“कह रहा था कि भय्या के उपकार को जीवन भर नहीं भूलूँगा मैं। भय्या ने मेरी जान बचा दी। नहीं तो दरोगा जी ने मुझे मरवाने का पूरा सामान कर दिया था।” शीला ने कहा।

“सामान तो सचमुच ही कर दिया था शीला! वह तो थानेदार वीरेन्द्रकुमार ने बचा दिया। बड़ा ही नेक आदमी है वह। यदि ऐसे थानेदार हमारे देश के थानों में तायनात हो जायें तो देश का नकशा ही दूसरा हो जाये। देहातों का जीवन सुधर जाये और जितनी गन्दगी हमारे समाज में फैली हुई है वह ठीक हो जाये।”

“होगी अवश्य एक दिन विद्यासागर जी! मुझे तो पूरा-पूरा विश्वास है। ज्यों-ज्यों देहातों में जागृति होगी त्यों-त्यों सरकारी ढांचा भी बदलेगा।” शीला बोली।

“आशा यही करनी चाहिए शीला! परन्तु अभी वीरेन्द्रकुमार जैसे थानेदार उँगलियों पर गिनने लायक हैं। और जो हैं भी उनके रास्तों में बड़ी रुकावटें हैं। घूसखोर और स्वार्थी अफसरों का ही अभी बोल बाला है। ईमानदार थानेदार जिस थाने में आ जाता है वहाँ के सिपाही और दीवान की आँखों से खून बरसने लगता है। हमारे थाने में भी यही

दशा है। थाने का पूरा अमला बीरेन्द्रकुमार को अपना शत्रु समझता है। दीवान जी खुले आम कहते हैं,—ऐसा अफसर जो अपने मातहतों के पेट पर लात मारे कितने दिन टिक सकेगा। हमारे चक्कर में कहीं फँस गया तो सारी कसर एक दिन में ही निकाल लेंगे।”

“पुलिस की यही दशा शहर में भी है विद्यासागर जी ! जहाँ देखिये वहाँ यही गन्दगी नज़र आयेगी आपको। अफसर आँख बन्द करके चलते हैं और नीचे के लोग जनता पर मनमाने अत्याचार कर रहे हैं। उनके नोटिस में चीजें आती हैं परन्तु वे रोक नहीं सकते उन्हें क्योंकि जो रोकने की मशीनरी उनके पास है वह नाकारा है। वही गन्दगी पैदा करने वाली है, गन्दी हरकतों को बढ़ावा देने वाली है।” शीला बोली।

शीला और विद्यासागर फिर नगर-केन्द्रों का दौरा करने के लिए निकल गये।

: ११२ :

केन्द्रों का दौरा करके जब विद्यासागर और शीला लौटे तो मनोरमा देवी कार्यालय में बैठी उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

वह बोली, “आज मैंने सत-साहित्य-प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ कर दिया विद्यासागर ! तुम्हारा उपन्यास प्रेस में दे दिया। प्रेस के मैनेजर ने विश्वास दिलाया है कि वह बहुत शीघ्र उसे छापकर हमें दे देंगे।”

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “तब तो अब शीला का कार्य और भी बढ़ गया। क्योंकि पुस्तक छपने के पश्चात् उसके प्रसारित करने का पूरा उत्तरदायित्व शीला ने ही अपने कंधों पर लिया था। और उसका उपहास भी मेहता साहब ने किया था।”

“मुझे भूला नहीं है कुछ भी।” शीला बोली। मैंने अपनी सत-साहित्य-प्रसार योजना बनाकर तय्यार कर ली है। आप अब किसी भी बिन ‘भारतीय सहयोग समिति’ की सभा बुलाकर उसके सम्मुख उस

योजना को रख सकते हैं। उससे पूर्व मैं चाहूँगी कि आप उसे एक बार पढ़कर देख लें। आपको जो संबोधन करना हो कर लें और उसे कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व सौ प्रतिशत मेरे ऊपर छोड़ दें। परन्तु ऐसा करने से पूर्व आपको मुझे इन मेरे नगर-केन्द्रों से मुक्त करना होगा।” शीला गम्भीरता पूर्वक बोली।

विद्यासागर और मनोरमा आश्चर्य चकित रह गये शीला की बात सुनकर। उन्हें पता नहीं था कि शीला साहित्य-प्रसार-योजना को इतनी गम्भीरता पूर्वक सोच रही थी।

विद्यासागर स्नेहाद्र होकर बोला, “यह कार्य तुमने सचमुच ही बहुत महत्वपूर्ण किया है शीला ! मेरी ओर से तुम इससे लिए बधाई की पात्री हो। मैं हृदय से तुम्हारे कार्य की सराहना करता हूँ।”

“और तुमसे भी अधिक कृतज्ञ मैं हूँ विद्यासागर ! क्योंकि शीला ने यह कार्य करके मुझे बहुत बड़ी लज्जा को सहन करने से बचा लिया।

अब रहा नगर-केन्द्रों की व्यवस्था का प्रश्न सो उसके लिए मेरे विचार से उजागरसिंह जी तुम्हारे सब साथियों में सबसे अधिक उपयुक्त रहेंगे। उन्हें पूरे जिले की दूधशालाओं का इंचार्ज बना दिया जायेगा।”

विद्यासागर ने मनोरमा के प्रस्ताव को अपनी सहमति प्रदान कर दी और साथ ही समिति के सब सदस्यों के नाम ‘सत-साहित्य-प्रसार’ योजना पर विचार करने के लिए सूचना भी भेज दी।

: ११३ :

विद्यासागर को अब अपनी रचना पूरी करने की शीघ्रता हुई और उसने आज रात्रि को डटकर कार्य किया।

शीला और मनोरमा भी समझ गई कि अब विद्यासागर की पूरी

शक्ति अपनी रचना पर ही है। इसलिए उन्होंने उससे किसी प्रकार की कोई बात नहीं की।

परन्तु जब रात को काफी देर तक शीला नहीं आई तो विद्यासागर स्वयं शीला के पास गया और बोला, “बात अधूरी ही रह गई थी सुबह शीला ! आओ ज़रा मेरे कमरे में चलकर बैठो थोड़ी देर।”

शीला मुस्कराकर बोली, “मैं तो स्वयं ही आना चाहती थी आपके पास। इसलिए नहीं आई कि कहीं आपके लिखने में विघ्न न हो जाय।”

“तुमसे विघ्न नहीं होता शीला ! बल्कि सोई हुई भावना जाग जाती है। वे मुनहले दिन याद आ जाते हैं जो कभी हमारे विद्यार्थी जीवन के साक्षी रहे हैं। कितने सरल थे वे दिन और कितने सरल थे वे साथी जिनके साथ मिलकर हम कालिज में सभायें करते थे, कवि-सम्मेलन करते थे, मुशायरे करते थे, नाटक खेलते थे और संगीत की प्रतियोगितायें आयोजित करते थे।” विद्यासागर बोला।

“और कितना मटकट था कैलाश का बच्चा कि हमें छेड़ने से बाज ही नहीं आता था। आंखें मटकाता था और बार-बार मना करने पर भी कहता ही जाता था, ‘कैसी सुन्दर है तुम दोनों की जोड़ी। विधाता ने दोनों को साथ-साथ रहने के लिए घड़ा था।’ कहकर शीला लजा गई और शरमाई आँखों से विद्यासागर की ओर देखा।

“कहती जाओ शीला ! चुप क्यों हो गईं तुम ? सचमुच ही वे स्वप्न जैसे सुहावने दिन क्या फिर कभी भी इस जीवन में आयेंगे ?”

“उनसे भी कहीं अधिक रंगीन दिन अभी आने वाले हैं विद्यासागर जी ! वे दिन थे केवल मुस्कराने के और आज आये हैं दिन खिल-खिलाने के, हँसने और हँसाने के। आये हुए दिनों की रंगीनी को झुठलाने का प्रयत्न क्यों करते हो तुम ? मुझे तो आज की दुनियाँ जैसी सुन्दर यह कभी नहीं लगी।” शीला बोली।

“तब भी नहीं जब हॉल के सामने वाले बगीचे में तुम जान बूझकर एक प्रश्न मुझसे पूछने आई थीं।” विद्यासागर बोला।

“ऊँ हूँ।” आँखें तरेर कर मुस्कराते हुए शीला बोली।

“तब भी नहीं जब नाटक में तुमने शकुन्तला की भूमिका अभिनीत की थी।” विद्यासागर ने पूछा।

“ऊँ हूँ।” शीला ने उत्तर दिया।

“भूठी कहीं की। हर बात पर ‘ऊँ हूँ’ कहती जा रही है। इसका यह मतलब हुआ कि तुम्हारे लिए आज ही सब कुछ है। गतजीवन का कोई मतलब ही नहीं।” विद्यासागर बोला।

“बिलकुल नहीं विद्यासागर जी! गत जीवन का महत्व बिछोह में होता है। जब मैं और तुम आपने-सामने बैठे हैं तो फिर गत जीवन की परछाइयों के पीछे क्यों भागूँ? क्यों नाँ एक टक आज को ही निहारूँ? इससे सुन्दर तो मुझे कुछ और लगता ही नहीं।” शीला बोली।

विद्यासागर अवाक् रह गया। इतनी स्पष्ट बात उसकी शीला से आज तक कभी नहीं हो पाई थी। कई बार मन में कुछ पूछने की आँसु परन्तु बात आ-आकर ही रह गई मन में, होठों तक नहीं आ सकी वह

विद्यासागर का दिल खिल रहा था। उसमें विकास की उमंग थी सौंदर्य की प्रतिमा थी। देवी थी उसकी अपनी, जिसे आज तक केवल कल्पना में ही संजोया था, बिठाया था, पुकारा था और बातें की थीं एकांत में बैठकर घंटों तक।

कल जो मनोरमा से बातें करके विद्यासागर के हृदय में अंधकाश भर गया था वह आज शीला के प्रकाश ने दूर कर दिया। उसके हृदय का कोना-कोना आज प्रकाशित हो उठा।

कल जो मनोरमा की बातों से उसके हृदय की बीणा बजती बजती मौन हो गई थी वह आज शीला ने दुबारा अपने हाथों में लेकर अपनी उँगली में मिजराब पहन कर सरस स्वर में बजानी प्रारम्भ कर दी थी।

कल जो मनोरमा के कहने से उसके हृदय का गुलाब खिलता-खिलता मुँद गया था, मुर्झा गया था, वह आज शीला का शीतल विचार पाकर फिर से खिल गया, मंहक उठा और अपनी सुगन्धि से उसने पूरे वातावरण को सुगंधित कर दिया ।

तभी मनोरमा भी वहाँ आ गई । उन्हें आते देखकर दोनों खड़े हो गये ।

मनोरमा मुस्करा कर बोली, “क्या गप्प-शप चल रही हैं दोनों की ? तुम दोनों को साथ-साथ बैठे देखती हूँ तो भगवान् से यही मनाती हूँ कि किसी प्रकार यह हंस हंसनी का जोड़ा मिलकर एक हो जाये ।” कहकर मनोरमा तीसरी कुर्सी पर बैठ गई ।

विद्यासागर बोला, “यह तो आपके हाथ की बात है जीजी ! मैं तो आप में और शीला की माता जी में कोई भेद नहीं मानता ।”

विद्यासागर की बात सुनकर मनोरमा के हृदय में एक कसक सी पैदा हुई, परन्तु उन्होंने बड़ी कुशलता पूर्वक उसे अन्दर ही दबा लिया । उनका भाव अपने चेहरे पर नहीं आने दिया ।

वह मुस्करा कर बोली, “हूँ तो मैं सचमुच ही शीला की माँ के समान परन्तु अधिकार मेरा कुछ भी नहीं है । मेरा जब अपने घर में ही कोई अधिकार नहीं तो यहाँ क्या होगा विद्यासागर ! हिन्दू परिवारों में विवाह के पश्चात् पिता के घर में लड़की का कोई अधिकार नहीं रहता ।”

“रहता क्यों नहीं ?” विद्यासागर बोला, “अब तो कानून ने भी लड़कियों को पूरा-पूरा अधिकार दे दिया है ।”

“दे दिया होगा विद्यासागर, परन्तु मैं उसे अनधिकार-चेष्टा ही मानती हूँ ।” कहती-कहती मनोरमा देवी गम्भीर हो गई । आगे कुछ नहीं कहा उन्होंने ।

अपने बीते जीवन की भाँकी उनके नेत्रों की पुतलियों में साकार हो

उठी। उनके नेत्र डबडबा आये और वह उसी प्रकार वहाँ से उठकर चली गई।

विद्यासागर बोला, “जीजी को कष्ट हुआ तुम्हारी यहाँ की उपस्थिति से।”

“होने दो” दृढ़ता पूर्वक शीला बोली, “सुबह जीजा जी को इनसे भी अधिक कष्ट हुआ था आपको यहाँ देखकर। माता जी से कहते थे, इनके यहाँ ठहरने का क्या मतलब। ऐसे ऐरा-गैरा आदमियों को कोठी पर ठहराने से बदनामी होती है। मुझे ये सम्बन्ध अच्छे नहीं लगते।”

संध्या को माता जी ने यह बात जब मुझे कही तो मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया, “उन्हें अच्छे नहीं लगते तो न लगे, मुझे तो अच्छे लगते हैं। मैं वह काम करती हूँ और कहूँगी जो मुझे अच्छे लगेंगे।”

“माता जी ने क्या कहा?” चकित होकर विद्यासागर ने पूछा।

माता जी बोलीं, “तुम अभी क्या जानो बच्ची! यह कोठी जिसमें हम लोग रह रहे हैं तुम्हारे जीजा जी के पास एक लाख रुपये में गिरवी पड़ी है। वह जब चाहें हमें इसमें से निकालकर बाहर खड़ा कर सकते हैं।”

“तुमने क्या उत्तर दिया?” विद्यासागर ने पूछा।

“मैंने कहा, तो कर दें। हम कहीं किराये का मकान लेकर उसमें रहने लगेंगे। कोठी में ही रहें, इसका मुझे शौक नहीं।” शीला बोली।

शीला की बात सुनकर विद्यासागर बोला, “तब क्या मुझे ही तुम अपने परिवार की मर्यादा को नष्ट करने वाला घोषित कराना चाहती हो शीला? तुम चाहती हो तो मैं अवश्य कहूँगा, परन्तु इस समस्या पर पूरी तरह विचार कर लो।”

शीला गम्भीरता पूर्वक बोली, “परिवार की थोथी मर्यादा पर मेरे जीवन की बलि चढ़ने को यदि आपका मस्तिष्क सही कहे तो आप चढ़ने दें, बशौक चढ़ने दें, परन्तु चढ़ेगी यह तब भी नहीं। मेरा जीवन नष्ट



होकर रह जायेगा। उसका उत्साह उससे छिन जायगा। उसकी ताजगी पर मुरझाई काली रेखाएँ खिच जायँगी और एक बहुत बड़ा काम जिसे चार मजबूत कंधे सहयोग और संतोष के साथ लेकर आगे बढ़ने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं, निराश्रित पड़ा रह जायगा।”

विद्यासागर गम्भीरता पूर्वक शीला की बात सुनता रहा। सुनता रहा, और सोचता रहा।

शीला बोली, “यह भी सम्भव है विद्यासागर जी कि उस कठिन परिस्थिति में मेरा रास्ता बदल जाय। बेसहारा हिरनी बियावान जंगल में कैसे अपना रास्ता बनायेगी? कहीं भाड़ भंकाड़ों में उलझेगी, कहीं खंदकों में गिरेगी, कहीं चट्टानों से टकरायेगी और फिर निराश होकर, हताश होकर अपनी उम्मीदों को, अपनी आशाओं को खो बैठेगी।”

“यह कभी नहीं होगा शीला!” हृदयपूर्वक विद्यासागर ने कहा। हमें अपना रास्ता बनाना है। मैं तुम्हारे बिला वह रास्ता नहीं बना सकता। तुम मेरे अंधकार में विद्युतरेखा के समान हो शीला! तुम्हें खोकर तो मेरा मार्ग ही अन्धकारपूर्ण हो जायगा।”

विद्यासागर की बात सुनकर शीला मस्ती में झूम उठी। उसके निराशा भरे हृदय में आशा का सागर लहरें मारने लगा और उसे विश्वास हो गया कि वह अपने मार्ग में आने वाली हर रुकावट को ठोकर से ठुकराती हुई आगे बढ़ सकेगी।

: ११४ :

दूसरे दिन प्रातःकाल विद्यासागर ने देखा कि रमेश मेहता की गाड़ी खड़ी थी कोठी के सामने और बँठक में भी चहल-पहल थी।

विद्यासागर तनिक देर से उठा था क्योंकि रात को उसे बहुत देर में नींद आ सकी थी। वह सोचता रहा था काफ़ी देर तक शीला की समस्या पर, शीला के परिवार की समस्या पर।

विद्यासागर कमरे से निकल कर बाहर चबूतरे पर आया और फिर तिरछी दृष्टि से उसने बैठक की ओर देखा ।

बैठक में परिवार के सभी लोग थे । मेहता साहब तथा सेठ रुढ़ेमल जी भी विराजमान थे ।

शीला, मनोरमा जीजी की बगल में बैठी थी और उनकी माताजी सोफे पर थीं । सेठ और मेहता साहब बराबर-बराबर बैठे थे ।

सामने मेज पर चाय लगी थी और मनोरमा देवी केतली से चाय प्यालियों में उड़ेल रही थीं । उनके चेहरे पन स्वाभाविक मुस्कराहट थी ।

शीला शरमाई सी बैठी थी कुर्सी पर नई साड़ी पहने । गुडिया बनी थी वह और चेहरा उसका जितना भोला आज प्रतीत हो रहा था उतना पहले कभी नहीं देखा था विद्यासागर ने । ऐसा भोला मानो उसके अंदर कोई भाव ही नहीं था, कोई विचार ही नहीं था ।

विद्यासागर फिर अपने कमरे में चला आया और बत्ती जलाकर डायरी उठा ली । उसने लिखना प्रारम्भ किया । आज शीला की सगाई होगी, कल मांग भरी जायगी और परसों वह पराई होगी । बातें करने का अधिकार भी उससे छिनकर उसके पति सेठ रुढ़ेमलजी के हाथों में चला जायगा और शीला एक बंगले में कैद कर दी जायगी । जीवन की वास्तविकता कल्पना की उड़ानों को निगल लेगी । तब तुम अकेले रह जाओगे विद्यासागर !

विद्यासागर का मन फिर कुछ भारी सा हुआ, परन्तु तुरन्त ही वह साहस बटोरकर मुस्कराता हुआ अपने से बोला,—प्रसीमित को सीमित करके कितनी भूल करते हो विद्यासागर ! भूठे दावे करते हो और भूठी कल्पना के चक्कर में मन और मस्तिष्क खराब करते हो । बढ़ने दो बुनियाँ को आगे और तुम भी बढ़ते चलो उसके साथ ।

वह सोच ही रहा था जाने क्या-क्या कि तभी मेहता साहब सेठजी के साथ कोठी से निकले और कार में बैठ गये ।

चलते समय उन्होंने शीला की माता जी को बड़े तपाक से प्रणाम किया। माता जी की भी मुख-मुद्रा प्रसन्न थी इस समय। मनोरमा का चेहरा भी खिला हुआ था। स्वाभाविक मुस्कान बिखर रही थी होठों से।

उनके जाते ही शीला सीधी विद्यासागर के कमरे में पहुँची। विद्यासागर लिख रहा था। जो कुछ उसने देखा उसे चित्रित कर रहा था।

शीला बोली, “क्या लिख रहे हो इतनी गम्भीरता के साथ?”

“वही लिख रहा हूँ शीला जो आंखों के सामने से गुजर रहा है।” विद्यासागर बोला।

“और उसे छोड़ते जा रहे जो आंखों के ठीक नीचे दिल पर गुजरता जा रहा है।” शीला बोली।

विद्यासागर बोला नहीं कुछ। शीला की भोली-भाली शक्ल को देखता रहा और अपने मन से कहता रहा,—कैसी भोली शक्ल है और कितनी तिरछी चाल चलने का विचार है इसका। जरा भी पैर फिसला तो खंदक है बहुत गहरी। उसमें ही गिरकर मनोरमा देवी तिलमिला रही हैं; अपनी मुक्ति का मार्ग सोच रही हैं और सोचने पर भी हर दिशा में मार्ग अवरुद्ध ही दिखाई देता है। केवल परमार्थ का ही मार्ग खुला है सामने, स्वार्थ का रास्ता बन्द कर दिया एक छोटी सी कमजोरी ने, थोड़ी सी भावुकता ने।

शीला मुस्कराकर बोली, “अभी-अभी आये थे महाशय लोग। जीजा जी आज मुझसे बहुत प्रसन्न होकर गये हैं और चलते समय उनकी चाल में भी विजय की सरसराहट थी। परन्तु यह सरसराहट अभी चन्द दिन में क्या रूप लेगी, इसका उन्हें क्या पता। स्वप्न की दुनियाँ भी कितनी दिलचस्प होती है विद्यासागर जी!”

विद्यासागर बोला नहीं फिर भी कुछ। केवल देख रहा था शीला की ओर और शीला मुस्करा रही थी।

विद्यासागर बहुत गम्भीरतापूर्वक बोला, “साँप से खेल रही हो शीला ! भयानक खेल है यह ।”

“इसमें कोई संदेह नहीं, परन्तु जीजा जी से बदला लेने के लिए मैंने सपेरिन बनने का निश्चय कर लिया है विद्यासागर जी ?” वक्र दृष्टि से देखती हुई शीला बोली ।

विद्यासागर का मन उड़ानें लेने लगा । उसकी कल्पना के सामने शीला सचमुच ही बीन बजाती हुई एक सुन्दर सपेरिन के रूप में आ खड़ी हुई । कितनी आकर्षक थी वह, वह देखता ही रह गया ।

मीठी लहरदार बीन बजाई उसने और बीन के स्वर पर काले नागों के दो फन डोलने लगे । उन दोनों फनों को विद्यासागर ने जब ध्यानपूर्वक देखा तो वे कोई अन्य नहीं थे । वे दोनों नरेश मेहता और सेठ रुढ़ेमल जी ही थे ।

देखते-देखते विद्यासागर की आँखों में आनंद का साम्राज्य बिछ गया । उसने नेत्र मूँदे और खोले तो सामने शीला खड़ी मुस्करा रही थी । मस्ती में गुनगुना रही थी । उसकी आँखों में मादकता थी ।

“नींद आ गई आपको । मैंने अभी देखा कि मेरे खड़े-ही-खड़े आपकी आँखें भप गईं । शायद रात को सोये नहीं एक पल भी । क्या रात भर लिखते ही रहे ?” शीला ने पूछा ।

विद्यासागर ने मानो शीला की बात सुनी ही नहीं । वह आँखें मिचमिचाकर बोला, “बैठो शीला, खड़ी कैसे रह गईं ? मैं सचमुच ही आज रात बिलकुल नहीं सो सका । एक पल के लिए भी आँखें नहीं झपकीं । मनोरमा जीजी की आज्ञा का पालन करता रहा और उपन्यास पूरा करने की धुन में यह भी भूल गया कि रात सोने के लिए होती है, कोरी कल्पनाओं के साथ खेलने के लिए नहीं होती ।”

“मनोरमा जीजी के लिए किसी की नींद हराम कर देना एक साधारण सी बात है विद्यासागर जी ! उन्हें भगवान् ने वरदान ही ऐसा दिया है कि वह जिसकी चाहें नींद खराब कर दें ।” कहकर शीला इतनी

सरलतापूर्वक मुस्कराई कि विद्यासागर उसके चेहरे को देखकर अनुमान ही न लगा सका कि उसने वह बात क्यों और किस अभिप्राय से कही

फिर भी विद्यासागर बोला, “मैं तो छोटी और बड़ी दोनों ही बहन से परेशान हूँ आजकल ! मेरी समझ में ही नहीं आ रहा कि आप दोनों का क्या गोलमटाला है । जाने क्या कहती हो, क्या करती हो और क्या सोचती हो ?”

“आप नहीं समझ पायेंगे अभी ।” शीला बोली, “हमारे हृदयों में जो ज्वाला सुलग रही है उसकी गर्मी को हम ही अनुभव कर सकती हैं जीजी के जीवन की पीड़ा कोई व्यक्ति उस समय तक नहीं जान सकता जब तक वह उनकी परिस्थिति में न आ जाय और मेरे सामने तो इस समय परीक्षा का अवसर है । मेरी परीक्षा के समय उत्साह बढ़ाइये मेरा साहस प्रदान कीजिये मुझे । आशावादी बनकर मेरी विजय की घोषणा कीजिये । ऐसे अवसर पर यदि आप ही हताश होकर, गर्दन लटकाकर बैठ जायेंगे तो मेरी क्या दशा होगी, कभी आपने यह भी विचारा है ?”

शीला की बात सुनकर विद्यासागर को आज वास्तव में अपने ऊपर लज्जा सी आई और उसने मन-ही-मन अपने को धिक्कारा । दिल बेचोर को कोसा और हृदय की वेदना के नीचे दबी ज्वाला को फिर से प्रज्वलित किया ।

विद्यासागर उत्साहपूर्वक शीला की ओर देखकर बोला, “आगे बढ़ो शीला ! विद्यासागर तुम्हारे साथ है । उसे चिंता नहीं है किसी की तुम्हारी हर आपत्ति के समय वह तुम्हारा साथ देगा ।”

शीला का दिल खिल उठा विद्यासागर का आश्वासन पाकर । वाँहँसकर बोली, “तब समझलो विद्यासागर जी कि आज मैंने जीजा जी को चित्त मारा । मेरी ओली नाटकीय छटा पर सेठ का बच्चा लट्टू हँस गया और मुझे दृढ़ विश्वास है कि वह अब मेरे जादू में फँसकर एक लाख रुपया जीजा जी को अवश्य दे देगा ।”

शीला के शब्दों में अटल विश्वास की भाँकी थी। उसका मन मुग्ध था और हृदय में अपूर्व उत्साह। सामने कुर्सी पर बैठकर बोली, “आप उपन्यास शीघ्र समाप्त कर लें। हमारे रास्ते की पहली मंजिल तो लोगों के सामने आये। फिर दूसरी, तीसरी और चौथी मंजिलें भी नजर आयेंगी। हमारा रास्ता बनकर तैयार होगा और उस पर चलने वालों की संख्या बढ़ेगी। एक दिन वह भी आयेगा क्या विद्यासागरजी जिस दिन हम कह सकेंगे कि हमारे रास्ते पर चलने वाले लोगों की संख्या सबसे अधिक है।”

“क्यों नहीं आयेगा शीला ! उसी दिन को तो लाने का यह प्रयास है जब सबकी जवान पर आपसी सहयोग और सहारे का शब्द साकार हो उठेगा। बहुत बड़ी आशा के साथ हम इस रास्ते को कुदाली लेकर बना रहे हैं, थपकी लेकर इसकी कंकरीट कूट रहे हैं और फिर देश के हर व्यक्ति को इस पर चलने के लिए निमंत्रित करेंगे।

जिस दिन हमारा रास्ता पूरा होगा और चौथी मंजिल सामने आयेगी तो देश का हर बच्चा, युवक और वृद्ध जागरूक होगा, उसका पेट भरा होगा, उसका बदन कपड़े से ढका होगा और उसके पास रहने का एक मकान होगा।

यही है आखिरी मंजिल।”

शीला विद्यासागर की बातों को वेद-वाक्यों की तरह सुन रही थी। पूरी श्रद्धा के साथ नत मस्तक होकर उसने कहा, “मैं इस कार्य के लिए अपना जीवन अर्पण करूँगी विद्यासागर जी ! मेरे जीवन का स्वप्न इस कार्य की व्यवस्था होगा, मेरी कल्पना इसे साकार बनाने में व्यय होगी और मेरे जीवन के सब साधन इस पर न्यौछावर होंगे।”

“तुम्हारी वाणी अमर हो शीला, तुम्हारा प्रण सफल हो और तुम्हारी आशाएँ फूलें-फलें। मेरी कल्पना तुम्हारे स्वप्न हों, मेरी आशा तुम्हारी दिशा हो, मेरी इच्छा तुम्हारी सफलता हो। तुम्हारी विजय हो

शीला ! जीवन में आने वाली कठिनाइयों को तिनके के समान तोड़ सको तुम, मेरी यही आकांक्षा है ।” सरल भाव से विद्यासागर बोला ।

दोनों के हृदय में संतोष था इस समय । दोनों को एक दूसरे पर दृढ़ विश्वास था । एक थे दोनों मन से, शरीर दो थे और हृदय एक ।

: ११५ :

आज विद्यासागर का मस्तिष्क साफ था । शीला के विषय में उसकी धारणा बदली हुई थी । जितनी भोली और सीधी वह उसे पहले से समझता आया था वैसा वह इस समय नहीं समझ रहा था ।

योग्यता के साथ-ही-साथ चतुर और व्यवहार कुशल भी वह उसे समय समझ रहा था । उसे हार्दिक प्रसन्नता थी कि उसकी शीला इतनी कम उम्र में भी बुनियाँ को इतनी गहराई से देखती और समझती है । उसने शीला की बुद्धि को मनोरमा से अधिक कुशाग्र पाया ।

वह सोचता रहा दोनों बहनों के विषय में । तनोनमा ने जीवन में गलती खाई । किसलिए ? क्योंकि वह भावुक थी और भावना के पीछे आँखें मूँदकर चल दी । पिता ने भेड़ बकरी की तरह जिसके गले में बाँध दी बँध गई ।

तभी मनोरमा वहाँ आ गई और शीला कोठी में चली गई । विद्यासागर ने मनोरमा देवी से अचानक प्रश्न किया, “आज एक बात पूछूँ जीजी ! बात व्यक्तिगत है, इसलिए यदि आप आज्ञा दें तो प्रश्न करूँ ।”

मनोरमा सामने कुर्सी पर बैठकर जोर से खिलखिला कर हँस दी और फिर बोली, “कैसी बातें करते हो विद्यासागर ! तुमसे मैंने अपने जीवन के वे राज भी नहीं छुपाये जो मेहता साहब को भी मालूम नहीं हैं फिर मेरा क्या व्यक्तिगत और क्या समाजगत तुम्हारे लिए ?”

विद्यासागर ने पूछा, “आपके पिताजी ने जब आपका रिश्ता मेहता साहब से किया था क्या उससे पूर्व भी आप मेहता साहब को जानती थीं ।

“खूब जानती थी विद्यासागर ! खूब जानती थी । इनकी नस-नस को पहचानती थी और हजार प्रयत्न करती थी कि पिताजी इनके सम्पर्क में न रहें परन्तु पिताजी मेरी एक नहीं सुनते थे । माताजी, जैसा तुम देख रहे हो, हमारी सीधी-सादी हैं । इन्हें तो अपने कृष्ण भगवान् से ही फुर्सत नहीं मिलती । प्रातः काल चार बजे सोकर उठती हैं और दस बजे तक इनकी पूजा समाप्त नहीं होती । फिर भोजन करके सो जाती हैं तीन घंटे के लिए, और जब उठती हैं तो थोड़ी ही देर पश्चात् संध्या की पूजा का समान जुटाने में लग जाती हैं । तुमने देखी नहीं है माता जी का पूजा गृह । अपने भगवान के लिए इन्होंने, कभी चलकर देखो तो, कैसा कैसा साजो सामान जुटाया हुआ है । सब बर्तन सोने के हैं और चाँदी का पलंग है । राधा के गहसे देखो तो तुम देखते रह जाओ । सचमुच बड़ी सुन्दर बनाई हुई है माता जी ने अपनी राधा ।

माता जी की राधा और कृष्ण को देखकर उनके सामने नृत्य करने का मन हो आता है । पैर ताल देने लगते हैं विद्यासागर ।”

विद्यासागर सुनता गया मनोरमा ने जो कुछ कहा । उसे अपना अनुमान ठीक लगा । उसने हड़ता पूर्वक विचारा कि मनोरमा जीजी में विचार की अपेक्षा भावना का बाहुल्य है । वह कलाकार हैं सचमुच ।

वह बोला, “जीजी विषयान्तर हो गया । मैं माताजी की पूजा शाला के देखे बिना अब नहीं रह सकता । हाँ तो आपने पिताजी को लाख समझाया परन्तु उन्होंने आपकी एक बात न सुनी । माताजी अपनी पूजा करती रहीं । कभी इस विषय में बोली ही नहीं कुछ । तब फिर आप कैसे विवाह के लिए तय्यार हुईं ?”

विद्यासागर की बात सुनकर मनोरमा जीजी ने लम्बा साँस लिया और कलेजा थामकर बोलीं, “क्या करोगे पूछकर विद्यासागर ! मैंने कैसे अपने हाथों अपना बलिदान दिया । न करती तो क्या करती ? और कोई चारा ही नहीं था ? पिताजी अपने हाथ कटा चुके थे । इन्होंने दो लाख के कागज पर उनके हस्ताक्षर करा लिये थे ।



बात की बात थी और वह जानते भी थे कि इन्होंने पिताजी को थोखा दिया दिया था परन्तु पिताजी अपनी बात के बहुत पक्के थे। पैसा पास नहीं था तो कागज लिख दिया।

और यह ऐसे शरीफ़ निकले कि अदालत में मुकदमा दायर कर दिया। फिर जेल जाने की ही बात रह गई थी पिता जी के लिए। रुपया पास नहीं था तो जेल ही जाना पड़ता। ऐसी दशा में तुम सोचो मैंने जो कुछ किया क्या वह मूर्खता पूर्ण था। शीला शायद मुझे मूर्ख समझती हो और तुम भी समझो, परन्तु मैं अपनी आँखों के आगे पिता जी को जेल जाते नहीं देख सकती थी। मैंने उन्हें बचा लिया, यही मेरे जीवन की सबसे बड़ी शांति है। यदि मैं यह न कर पाती तो मेरा हृदय जीवन भर मुझे कचोटता रहता और आज जो अशांति मेरे मस्तिष्क में है उससे कहीं अधिक अशांत मेरा मस्तिष्क होता।”

विद्यासागर मनोरमा जीजी के सामने हृदय से नतमस्तक होकर बोला, “आपसे त्याग किया अपने निर्माता के लिए, मैं इसका आदर करता हूँ। यह मूर्खता नहीं तपस्या की दिशा है और शीला स्वप्न में भी कभी आपके इस महान् त्याग की अवहेलना नहीं कर सकती।”

मनोरमा विद्यासागर की बात सुनकर भावुकता में बह निकलीं। उनकी आँखों से अश्रुओं की धारा बह चली। साड़ी के पल्ले से नेत्र पोंछ कर बोलीं, “पिताजी कितना प्यार करते थे मुझे, क्या कहूँ विद्यासागर! फूल की तरह पाला था उन्होंने मुझे। मेरी जबान से कोई बात निकली नहीं कि वह पूरी हो जाती थी तुरन्त। मुझे कभी जरा सा जुकाम होता था तो रात-रात भर नींद नहीं आती थी उन्हें। माता जी अपनी पूजा में लगी रहती थीं और वह मेरे पास बैठे रहते थे।

मेरे विवाह के विषय में उनकी क्या-क्या कल्पना थी, क्या सोचते थे वह, वे सब बातें गिनाना व्यर्थ हैं अब विद्यासागर। एक स्वप्न था अतीत का जो अतीत में ही खो गया, पूरा होने से पूर्व ही किसी ने आकर तोड़ दिया।

मेरा विवाह हुआ और उसके एक सप्ताह के अन्दर ही पिता जी का स्वर्गवास हो गया। वह सहन नहीं कर सके इस उत्कापात को। हृदय की हरकत बन्द हो गई।”

मनोरमा हिड़कियाँ लेकर रो रही थीं। उन्हें अपने पिताजी की याद आ गई। उनका दिल बेचैन हो उठा।

विद्यासागर बोला, “क्षमा करना मनोरमा देवी ! मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। पुरानी हृदय विदीर्ण करने वाली कहानी की याद दिलादी। परन्तु राजबूत था मैं क्यों कि मेरे उपन्यास का सिलसिला यहीं पर टूटा हुआ था। कारण स्पष्ट नहीं हो रहा था आपके और नरेश मेहता के विवाह का।”

: ११६ :

शीला को चाय लिवाकर आते हुए देखकर मनोरमा ने आँखें पोंछीं और सप्रयास होठों पर हल्की सी मुस्कान की रेखा खींच ली।

वह मुस्करा रही थीं अब धीरे-धीरे।

तीनों गोल मेज के इर्द-गिर्द पड़ी आराम-कुर्सियों पर बैठ गये और चाय का सामान मेज पर रख दिया गया।

विद्यासागर बोला, “आज की चाय के समय का सबसे सुन्दर उपयोग जो मैं समझता हूँ वह यह है कि शीला देवी अपनी ‘सत्-साहित्य प्रसार योजना’ को पढ़कर सुनायें जिसे समिति की बैठक में उसे प्रस्तुत करने से पूर्व उस पर पहले हम लोग विचार कर लें।”

शीला हँसकर बोली, “मैं तो आज पहले ही से तय्यार होकर आई हूँ इस कार्य के लिए विद्यासागर जी। आप रात भर अपना उपन्यास लिखते रहे और मैं अपनी योजना को साफ़ करती रही।” और इतना कहकर शीला ने योजना के पन्ने अपने बग से निकाल लिये।

शीला ने पढ़ना आरम्भ किया :

“किसी राष्ट्र का चिंतन और उसके जन-जीवन की विचार धारा

जब तक अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक नहीं होती और अपने अधिकारों का उसे पता नहीं होता, तब वह राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। परन्तु कर्तव्य और अधिकार की कसौटी पर राष्ट्रीय जन-जीवन को कसने से पूर्व यह नितान्त आवश्यक है कि पहले उसे सुशिक्षित किया जाय, उसके कर्तव्य और अधिकारों को समझने और परखने के योग्य उसे बनाया जाय।

राष्ट्रीय सुशिक्षण के इस महान् कार्य को स्थायी रूप से सम्पन्न करने के लिये निम्न तीन चीजें आवश्यक है :

१. साक्षरता, २. सत्साहित्य, ३. सत् साहित्य और उसकी प्रेरणा तथा विचार धारा को जनता तक पहुँचाना।

१. साक्षरता-प्रशिक्षण—जहाँ तक साक्षरता-प्रशिक्षण का सम्बन्ध है, हम उस क्षेत्र में प्रवेश नहीं करेंगे। इस योजना के अंतर्गत हम केवल सत्-साहित्य के निर्माण, प्रकाशन, प्रचार और प्रसार तक ही अपने को सीमित रखकर चलेंगे। अर्थात् शिक्षित व्यक्तियों का ही यह देश व्यापी आन्दोलन होगा जिसमें हर शिक्षित व्यक्ति इसका एक सदस्य होगा।

२. सत् साहित्य—योजना के अंतर्गत प्रारम्भ से ही सत् साहित्य शब्द का प्रयोग हुआ है और यह अन्त तक चलता जायगा। यदि हम योजना के आधार को परखें तो वह सत् साहित्य ही है। इसलिये जब तक सत्-साहित्य के रूप को पहचान लिया जाय, तब तक आगे बढ़ना कठिन है।

सत्-साहित्य हम उसे मानते हैं जो मानव को कर्तव्य, साहस और उत्साह की प्रेरणा दे, संकुचित मनोवृत्तियों के विनाश और व्यापक दृष्टिकोणों के विकास का साधन जुटाये, रुढ़िवादी, अवरोधों के विध्वंस और प्रगतिशील तत्वों के विकास को बल दे, संगठन, सहयोग और समानता का पक्षपाती हो, दया, प्रेम और सद्भावता का व्यापक संदेश वहन करे, तथा उसमें राष्ट्रीय जीवन का सही विश्लेषण, चिंतन

और मनन हो। राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं का समाधान हो। सत् साहित्य विश्व बन्धुत्व की भावना से पूर्ण होना चाहिए और सबसे अन्त में हम यही कहेंगे कि सही इन्सान के जीवन का सीधा, सच्चा और सही चित्र हो वह।

विद्यासागर बोला, “भूमिका बहुत सुन्दर लिखी है तुमने शीला। मेरे विचार की सभी बातें आ गईं इसमें।

शीला आगे बढ़ी, “जहाँ तक कलात्मक सत्-साहित्य के निर्माण का संबंध है वह साहित्यकारों की अपनी चीज है और उसका निर्माण प्रतिभासंपन्न कलाकारों के द्वारा अबाध गति से हो रहा है। सन १९४७ से १९५७ के बीच हिन्दी साहित्य ने विशेष प्रगति की है। पुराने साहित्यकारों और नये कलाकारों ने मिलकर साहित्य के भंडार को भरा है।

हमारा राष्ट्र शताब्दियों की पराधीनता से उभर कर ऊपर आया है। अविद्या और असाक्षरता से आगे बढ़कर जो साक्षर समुदाय हैं, उसका शिक्षण भी जिस वातावरण में हुआ है और जिस उद्देश्य को लेकर हुआ है उससे सत् साहित्य के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती। राष्ट्र के जन-जीवन में सत्-साहित्य के द्वारा जो जागरण आना चाहिए था, वह नहीं आया।

ऐसी दशा में सत् साहित्य के पास तक राष्ट्र को पहुँचाने के लिए उसे समझने की क्षमता प्राप्त कराने के लिए एक साधारण ज्ञान-वर्धक और परिचयात्मक साहित्य के निर्माण की आज देश के जन-जीवन को नितान्त आवश्यकता है।

इस आवश्यकता का अनुभव देश के विद्वानों ने किया है, केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने भी किया है और यह कहना भी गलत है कि उसके फल स्वरूप कोई कार्य नहीं हुआ। परन्तु इतना तो सत्य ही है कि इस दिशा में जितना कार्य होना चाहिए था उसका शतांश भी नहीं

हो पाया और उससे हजार गुना होने की आवश्यकता अभी बनी हुई है ।

जहाँ तक इस साहित्य के निर्माण का संबंध है वहाँ तक जो प्रयास अभी तक हुए हैं उनमें से चंद एक ही सराहनीय कहे जा सकते हैं, वरना अधिकांश में व्यावसायिक धनोपाजन की प्रवृत्ति मुख्य और जन जीवन को जागरूक करने वाला सही साहित्य प्रकाशित करने की प्रवृत्ति गौण रही है ।

इस साहित्य के निर्माण का उत्तरदायित्व बहुत बड़ा और बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका प्रभाव राष्ट्र के जन-जीवन पर पड़ने वाला है । इसलिए इस साहित्य की रचना भी विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों द्वारा ही होनी चाहिए । इस दिशा में एक व्यापक ज्ञानवर्धक साहित्य-माला के निर्माण और प्रकाशन की नितान्त आवश्यकता है ।”

“बहुत सुन्दर शोला ! साहित्य के निर्माण की दिशा भी तुमने बहुत ठीक दिशा सुझाई । मैं स्वयं भी इसी दिशा में विचार कर रहा हूँ ।”

योजना के अन्तर्गत प्रारम्भ में इसी प्रकार का साहित्य प्रकाशित किया जायगा । जनता की विभिन्न आवश्यक दिशाओं में जानकारी बढ़ाने वाली अनेकों पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जायेंगी ।

यह प्रकाशन कार्य प्रारंभ में मुख्य साहित्य केन्द्र दिल्ली में होगा और बाद में कार्य बढ़ जाने पर धीरे-धीरे सब प्रादेशिक साहित्य केन्द्र अपना-अपना प्रकाशन प्रारंभ कर देंगे । प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य का प्रकाशन तो प्रारंभ से ही प्रादेशिक केन्द्रों के द्वारा होगा ।

उक्त साहित्य हिन्दी के अतिरिक्त देश की सब भाषाओं में प्रकाशित होगा ।

### मुद्रण तथा जिल्द साजी

प्रारंभ में यह कार्य दिल्ली तथा अन्य प्रादेशिक केन्द्रों में उपलब्ध छापेखानों और दफ्तरी खानों में कराया जायगा । परन्तु ज्यों-ज्यों प्रका-

शन कार्य का विस्तार होता जायगा त्यों-त्यों मुद्रण व्यवस्था को शहरों से चारों ओर जाने वाली सड़कों पर पढ़ने वाले स्कूलों में ले जाने की व्यवस्था की जायगी। इस व्यवस्था के कार्यान्वित होते ही प्रकाशन का मुद्रण व्यय आधा रह जायगा और पहले की अपेक्षा चार गुने कर्मचारियों के रोजगार की व्यवस्था हो जायगी। साथ ही जितने स्कूलों में ये छापेखाने खुलते जायेंगे उतने ही स्कूलों में रचनात्मक कार्यक्रम प्रारंभ होता जायगा और भविष्य में अनेकों विद्यार्थियों के रोजगार का द्वार भी खुल जायगा।”

मनोरमा दत्त चित्तता के साथ शीला की योजना को सुन रही थी। उसका हृदय गद्गद हो रहा था अपनी छोटी बहन की योग्यता पर।

शीला आगे बढ़ी, “साहित्य निर्माण के पश्चात् प्रकाशन और फिर उसके प्रसार का प्रश्न है। सत् साहित्य प्रसार व्यवस्था के अंतर्गत देश की राजधानी में मुख्य साहित्य केन्द्र की व्यवस्था होगी। इसके अंदर अपने प्रकाशित साहित्य के अतिरिक्त देश के सब सत् साहित्य प्रकाशकों का साहित्य भी प्रचार तथा प्रसारार्थ रखा जायगा।

इसके अन्तर्गत प्रादेशिक साहित्य केन्द्र तथा जिला साहित्य केन्द्र होंगे। इस प्रकार साहित्य-केन्द्रों की व्यवस्था राजधानी, प्रदेश तथा जिला स्तर पर की जायगी।”

विद्यासागर बोला, “यह व्यवस्था बिल्कुल ठीक रहेगी और देश भर में हम जन-जागरण का संदेश भी पहुँचा सकेंगे।”

शीला आगे बढ़ी, “साहित्य प्रसार के लिए हमारा सूचना विभाग समाचार पत्रों का प्रकाशन करेगा।

इस योजना का संचालन मुख्य साहित्य संयोजक द्वारा होगा। योजना के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए तीन उप-साहित्य संयोजकों की नियुक्ति की जायगी।

१—निर्माण संयोजक।

२—सूचना संयोजक।

## ३—प्रसार संयोजक ।

मुख्य साहित्य संयोजक तीनों साहित्य संयोजकों के कामों में संपर्क स्थापित करेगा । केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों से योजना के लिए सहयोग प्राप्त करने की दिशा में प्रयत्न करेगा । देश-विदेश की साहित्य संबंधी संस्थाओं से पत्र-व्यवहार करके योजना को बल देगा तथा उसी प्रकार के उच्च स्तरीय संपर्क खोजेगा जिनसे योजना आगे बढ़े ।”

प्रादेशिक तथा जिला साहित्य केन्द्रों का संचालन भी मुख्य साहित्य केन्द्र के ही समान होगा । यहाँ तीन संयोजक न रहकर केवल प्रसार और प्रचार संयोजक ही रहेंगे, जिन्हें प्रादेशिक साहित्य संयोजक तथा जिला साहित्य संयोजकों के नियंत्रण में कार्य करना होगा ।

साहित्य संयोजक अपने-अपने क्षेत्रों में अपने साहित्य केन्द्रों के अधिकाधिक सदस्य बनायेंगे । ये सदस्य तीन प्रकार के होंगे :

१-वर्ष में १२) की पुस्तकें खरीदने वाले ।

२-वर्ष में ६) की पुस्तकें खरीदने वाले ।

३-वर्ष में ३) की पुस्तकें खरीदने वाले ।

इन सदस्यों को अपने-अपने केन्द्र के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने का निःशुल्क निमंत्रण मिलेगा । इस प्रकार देश भर में व्यक्तिगत पुस्तकालय बनाने की दिशा में शिक्षित व्यक्तियों का कार्यक्रम बनना प्रारंभ हो जायगा ।

साहित्य संयोजक अपने-अपने क्षेत्रों की शिक्षा-संस्थाओं तथा पुस्तकालयों के अध्यक्षों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करेंगे । उनकी आवश्यकताओं को समझेंगे और उन्हें सहयोग देंगे । उन्हें सत्-साहित्य की विस्तृत-से-विस्तृत सूचना देंगे और उनके ही स्थान पर हर अपेक्षित साहित्य को उपलब्ध करने का प्रयास करेंगे ।

साहित्य-संयोजक अपने-अपने क्षेत्रों में उन स्थानों और उन सुविधाओं की खोज करेंगे जिनका उपयोग सत्-साहित्य के प्रचार और

प्रसार की दिशा में किया जा सके। मनोरंजन के विभिन्न केन्द्रों में, पुस्तकालय खुलवाये जायेंगे।

सत्-साहित्य की आवश्यकता को लेकर नगरों के मुहल्लों और गाँवों में सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रारंभ किये जायेंगे। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा जनता में साहित्यिक अभिरुचि पैदा की जायगी।

बाल-केन्द्रों की व्यवस्था की जायगी। खेल कूद इत्यादि में पुरस्कारों के बतौर पुस्तकें वितरण करने की आदत बढ़ाई जायगी।

सरकारी कर्मचारियों, म्यूनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बरो से इस कार्य में सहयोग लिया जायगा।

अन्त में जो सबसे बड़ा सहयोग होगा वह जनता का सहयोग होगा और उसी तक पहुँचने के लिए अन्य सहयोगों का आश्रय लिया जायेगा।

इस महान् कार्य को सम्पन्न करने के लिए एक देश व्यापी आन्दोलन खड़ा किया जायगा। यह आंदोलन शिक्षित वर्ग का वह आंदोलन होगा जिसके द्वारा वह प्रकाशन को राष्ट्र का महान् उद्योग बनाकर राष्ट्र के बहुत बड़े शिक्षित वर्ग को रोजगार प्रदान कर सकेगा।

यह आंदोलन जन-जन पुस्तकालय, ग्राम-ग्राम पुस्तकालय तथा मुहल्ला-मुहल्ला पुस्तकालय स्थापित करने का होगा। इसके अन्तर सत्-साहित्य प्रचार और प्रसार संबंधी जुलूस निकाले जायेंगे, सभाएँ की जायेंगी, विद्यालयों तथा स्कूलों में वाक संवर्ष-कार्यक्रम होंगे, नाटक, कवि सम्मेलन इत्यादि द्वारा देश के वातावरण को साहित्य मय बनाने का प्रयास किया जायगा।

यह कार्य अधिकांश में जन-सहयोग और जन-संपर्क से ही पूर्ण होगा, केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों से इस महान् कार्य में योग देने की अपील की जायगी।



साहित्यकारों से साहित्य और कार्यक्रमकर्तृओं से श्रम-सहयोग मांगा जायगा । साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले सहायक व्यक्तियों को आंदोलन का सम्मानित सदस्य बनाया जायगा ।”

विद्यासागर और मनोरमा शीला की योजना को सुनकर इतने दत्तचित्त हो गये कि चाय रखी-ही-रखी ठंडी हो गई । शीला बोली, “अरे आपने तो चाय भी ठंडी करली । सुनते जाते और साथ-साथ चाय भी पीते जाते ।”

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “आज की चाय से तुम्हारी योजना बहुत अधिक मीठी है शीला ! इसके सामने चाय को भूल जाना स्वाभाविक ही है । तुम चिंता न करो चाय की । पूरी योजना सुना जाओ । फिर बाद में चाय पियेंगे और योजना पर बातें भी करेंगे ।”

शीला आगे बढ़ी, “इस प्रकार इस योजना के अंतर्गत हम प्रथम वर्ष में देश के सौ जिलों के अन्दर सौ साहित्य केन्द्र स्थापित करेंगे ।

इनमें से प्रत्येक केन्द्र को एक वर्ष में पचास ग्राम-पुस्तकालय और दस मुहल्ला पुस्तकालय खोलने होंगे । ग्राम पुस्तकालयों को दो सौ रुपया प्रति पुस्तकालय और मुहल्ला पुस्तकालयों को पांच सौ रुपया प्रति पुस्तकालय का साहित्य दिया जायगा । इसमें से चौथाई साहित्य पुस्तकालयों को अनुदान स्वरूप दिया जायगा ।

इन केन्द्रों द्वारा प्रति साहित्य केन्द्र को वर्ष में अपने क्षेत्र के अन्दर बीस हजार रुपये का साहित्य खपाना होगा ।

इससे पांच हजार ग्राम पुस्तकालय तथा पांच सौ मुहल्ला पुस्तकालय खुलेंगे । व्यक्तिगत पुस्तकालयों की संख्या का अभी अनुमान लगाना कठिन है, परन्तु प्रत्येक साहित्य केन्द्र को वर्ष में कम-से-कम एक हजार सदस्य अपने जिले के अन्दर अवश्य बनाने होंगे । और इस प्रकार सौ साहित्य केन्द्रों द्वारा दस हजार सदस्यों के दस हजार व्यक्तिगत पुस्तकालयों की स्थापना होगी ।

प्रथम वर्ष में कुल सत् साहित्य प्रसार निम्न प्रकार से होगा :—  
केन्द्रों से बीस लाख रुपये का साहित्य ।

ग्राम पुस्तकालयों की स्थापना से पाँच लाख रुपये का साहित्य ।

मुहल्ला पुस्तकालयों से ढाई लाख रुपये का साहित्य ।

व्यक्तिगत पुस्तकालयों की स्थापना से तीस लाख रुपये का साहित्य

यह कुल मिलाकर सत्तावन लाख रुपये का साहित्य प्रसारित होगा ।

दूसरे वर्ष में लगभग तीन सौ जिलों में इस योजना को प्रसारित किया जायगा ।

दूसरे वर्ष में इस प्रकार इस योजना के द्वारा पन्द्रह हजार ग्राम पुस्तकालय, पन्द्रह सौ मुहल्ला पुस्तकालय और तीन लाख व्यक्तिगत पुस्तकालय खोले जायेंगे । दूसरे वर्ष में एक करोड़ बहात्तर लाख पचास हजार का साहित्य प्रसारित होगा ।

पाँच वर्ष के अन्दर इस प्रकार इस योजना के अन्तर्गत पन्द्रह हजार ग्राम पुस्तकालय, छः हजार पाँच सौ मुहल्ला पुस्तकालय तथा तेरह लाख व्यक्तिगत पुस्तकालय स्थापित किये जायेंगे ।

इस योजना के फलस्वरूप जो सत-साहित्य प्रसार आन्दोलन देश भर में चलेगा उससे साहित्यिक और राष्ट्रीय जन-जागरण का वातावरण बनेगा । जनता जागरूक होगी । उसके साधारण ज्ञानमें वृद्धि होगी और देश का प्रकाशन उद्योग समुन्नत होकर अनेकों सुशिक्षित युवकों को स्वतंत्र रोजगार प्रदान करने में समर्थ होगा ।”

अन्त में शीला मुस्कराकर बोली, “बस यही कुछ लिखा है मैंने तो । अब आप लोग विचार करलें इस पर कि कहाँ तक इस कार्य को हम लोग आगे बढ़ा सकेंगे ?”

विद्यासागर उत्साहपूर्वक बोला, “तुम्हारी योजना को हम लोग पूरी तरह क्रियान्वित करने का प्रयास करेंगे शीला ! तुमने इस योजना के

अन्तर्गत समिति के सामने देश व्यापी कार्यक्रम रखने का जो मार्ग दर्शन किया है उसके लिए समिति के सदस्यों को तुम्हारा कृतज्ञ होना चाहिए।”

मनोरमा का मन भावना से भर गया था। वह तो शीला के मुख पर देखती ही रही थी अब तक, बोली एक शब्द भी नहीं थी। शीला की पूरी योजना का स्वरूप उसके सामने खड़ा था। कला का जो स्वरूप कभी अपने विद्यार्थी जीवन में उन्होंने कल्पित किया था उसकी प्रतिमा साकार कर दी शीला ने। साहित्य और कला का संगम और उसका उपयोग जन-जागरण के लिए, देश के सांस्कृतिक उत्थान के लिये कर्त्तव्य की प्रेरणा के लिए उनके सामने आया।

वह प्रसन्न होकर बोली, “शीला तुम्हारा यह आंदोलन और साहित्य केन्द्रों की व्यवस्था देश की काया-पलट कर देगा यदि इसके कार्यकर्त्ता सचमुच देशोद्धार की भावना को लेकर इसमें आयें। तुमने सांस्कृतिक, जाग्रति और उद्योग का जितना सुन्दर समन्वय किया है वह बहुत ही अनूठा है। मैं तुम्हारे इस कार्य की सफलता के लिए अपना जीवन लगा दूँगी। अपनी सोई हुई कला और बुझती हुई प्रेरणा को फिर से सजग और प्रज्वलित करूँगी।”

शीला ने मनोरमा की आँखों में झाँका और गद्गद होकर बोली, “जीजी तुम्हारा जीवन बुझता देखकर मेरे हृदय में जो पीड़ा निरन्तर जगती रहती है उसका वर्णन करना मेरी शक्ति में नहीं है परन्तु इतना अवश्य मैं जानती हूँ कि आप इस योजना में प्राण फूँक सकती हैं। इसे देश व्यापी बनानेमें आपकी कला जितना महत्वपूर्ण योग प्रदान कर सकती है उतना अन्य कोई चीज़ नहीं कर सकती।”

“इसमें कोई संदेह नहीं।” विद्यासागर बोला। “शीला की योजना को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व आप पर ही होगा। और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इसे जितनी सफलता के साथ कर सकेंगी

उतना अन्य कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। मैं कुमारी लता से भी अनु-रोध करूँगा कि वह भी अपना सहयोग इस कार्य में दें।”

: ११६ :

‘भारतीय सहयोग समिति’ के कार्यालय में कल से ही सदस्यों का आना प्रारम्भ हो गया था। विद्यासागर लता की प्रतीक्षा में था। उसने लता को लिखा था कि उसका एक दिन पूर्व ही आना आवश्यक है। संध्या की गाड़ी पर वह स्वयं शीला के साथ लता को देखने गया।

गाड़ी आने में अभी आधे घंटे की देर थी। गत चार दिन से भीषण वर्षा के कारण मार्ग में कहीं पर रेल की पटरी खराब हो गई थी। इसलिए वहाँ गाड़ी बहुत धीरे-धीरे चलती थी। इसी लिए कुछ लेट थी गाड़ी।

शीला और विद्यासागर प्लेटफार्म पर घूमते-घूमते एक बेंच पर बैठ गये। आकाश में आज भी बादल छाये हुए थे और कभी-कभी हल्के-हल्के छूँटे भी पड़ जाते थे। समय सुहावना था और हवा भी बहुत प्यारी-प्यारी बह रही थी।

शीलाने मिठास भरे शब्दों में कहा, “विद्यासागरजी आज एक बात पूछूँ आपसे।”

“एक क्यों, दो पूछो शीला। एक अपने नाम की और एक मेरे नाम की।” मुस्कराकर विद्यासागर बोला।

शीला ने तनिक शरमाकर कहा, “लता जीजी से आपका कैसा सम्बन्ध है?”

“बहुत मीठा, बहुत प्यारा, बहुत सुन्दर, बहुत अच्छा।” विद्यासागर बोला।

“और मुझसे?” शीला ने दूसरा प्रश्न किया।

“बहुत मीठा, बहुत प्यारा, बहुत सुन्दर, बहुत अच्छा।” विद्यासागर ने वही उत्तर बुहराया।

“फिर दोनों में क्या अन्तर है ?” शीला ने पूछा ।

“इसका उत्तर अपने मन से पूछो शीला, अपने दिल से पूछो । इसका उत्तर मेरे पास नहीं है ।” मुस्कराकर विद्यासागर ने कहा ।

शीला मौन हो गई थोड़ी देर के लिए और फिर मुस्कराकर कहा, “काम आप करें और कारण मैं जानूँ ? कौसी अनोखी बात कहते हैं आप ?”

विद्यासागर बोला, “जिसका तुमसे कुछ छिपा ही न हो उसके काम के कारणों को तुम न समझो, ऐसा मैं नहीं समझता । मनोरमा जीजी न समझें, यह मैं मान सकता हूँ परन्तु तुम्हारे और कुमारी लता के विषय में मेरी ऐसी धारणा नहीं है ।”

शीला मौन हो गई और आकाश में छाये बादलों की ओर निहारने लगी । बादल गर्ज और टप्प-टप्प बूँदें गिरने लगीं । शीला फिर भी ऊपर को ही देखती रही ।

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, “क्या बादल से उत्तर पूछ रही हो अपनी बात का ? या विद्युत की आँखों में भाँक रही हो शीला ? ये दोनों भी बता सकेंगे तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर । बादल में क्या है यह विद्युत को पता है । वही तो दीप-शिखा है बादल के हृदय की ।”

विद्यासागर की बातें शीला के कानों में संगीत की लहरों के समान रस घोलती जा रही थीं । वह मंत्र-मुग्ध सी अपलक बैठी थी आकाश की ओर मुँह किये और नन्हीं-नन्हीं फुवारों को केवड़े की बूँदों के समान अपने ऊपर ले रही थी ।

विद्यासागर बोला, “क्या यहीं बँटे-बँटे भोगने की ठानी है ? देख नहीं रही हो प्लेटफार्म पर घूमने वाले सब लोग शेड के नीचे चले गये और सबकी आँखें हम दोनों पर टिकी हुई हैं । अपने-अपने मन में कहते होंगे.....”

“कहने दो जो-जो कुछ कहते होंगे ।” बीच ही में शीला बोली ।  
“मुझे आनंद आ रहा है इन फुवारों में बैठने में । बादल अपना प्यार

बरसा रहा है और मैं उसे सहन भी न कर सकूँ, तो आप ही सोचो कितनी निष्ठुर हूँगी मैं ? क्या आपको पसंद आयेगी इतनी निष्ठुर शीला ?”

विद्यासागर का हृदय भी शीला की बातें सुनकर हिलोरें लेने लगा । वह गद्-गद् होकर बोला, “पसंद और ना पसंद की बात जीवन में एक ही बार आती है शीला । जो पसंद आ गया उसका फिर ना पसंद आना ही क्या ?”

वर्षा की फुहारें धीरे-धीरे हल्की पड़ गईं और शेड के अंदर जाकर छिप जाने वाले राही फिर बाहर निकल कर प्लेटफार्म पर घूमने लगे । चहल-पहल के पश्चात एकांत और एकांत के पश्चात फिर चहल-पहल नज़र आई और तभी रेल के कर्मचारी ने गाड़ी आने की घंटी बजाई ।

शीला और विद्यासागर खड़े हो गये । जिधर से ट्रेन आने वाली थी उधर दृष्टि फैलाई । प्लेटफार्म के सब यात्री लम्बी कतार बनाकर खड़े हो गये । सबने अपने-अपने सामान को संभाला । रेल के कुली भी आकर पूरे प्लेट फार्म पर छा गये । खोमचे वालों में भी अपनी आवाज़ें निकालनी प्रारम्भ कर दीं,—पान बीड़ी सिग्रेट, चाट पकौड़ी, गर्मगर्म पूड़ी, किताबों वाला, रेवड़ी कड़ाकेदार, जाड़े की मेवा मूंगफली, काबली चने, आलू छोले, समोसे गर्मगर्म ।

शीला और विद्यासागर भी आगे बढ़े और देखते-ही-देखते गाड़ी का एंजिन सीटी देता हुआ गाड़ी को लेकर प्लेट फार्म पर आ खड़ा हुआ । चढ़ने वाले यात्री गाड़ी पर चढ़ने लगे । उतरने वाले उतरने लगे । और जो लोग अपने किन्हीं इष्टमित्रों को लेने आये थे, उनकी नज़रें गाड़ी के दरवाज़ों पर फैल गईं ।

शीला और विद्यासागर एंजिन के पास वाले डिब्बे से देखना प्रारंभ करके गाड़ी के पिछले भाग की ओर लपके । चार-पाँच ही डिब्बे आगे बढ़े होंगे कि शीला के कानों में आवाज़ आई । “शीला बहन, शीला बहन ।”

शीला रुक गई। आवाज लता की थी। उसने मुड़कर देखा तो वह पिछले डिब्बे से उतर रही थी।

“लता बहन को तो हम लोग पीछे ही छोड़ आये। चलिये लौटें।” शीला बोली।

और दोनों लौटकर लता के पास पहुँच गये। सामान कुछ नहीं था लता के पास। एक भोला था, वह शीला ने अपने हाथ में लेने को हाथ बढ़ाया तो लता मुस्कराकर बोली, “थकूंगी नहीं इसे ले चलने में मैं शीला ! आज मैं स्टेशन तक भी पैदल ही आई हूँ।”

“क्यों क्या तांगा नहीं था ?” विद्यासागर ने पूछा।

“था सब कुछ विद्यासागर जी परन्तु मैंने सोचा कि ऐसी भी क्या आरामतलबी। एक मील क्या पैदल नहीं चल सकती मैं ? भ्रमन पहलवान साथ आये थे स्टेशन तक। राम-राम कहा है उन्होंने आप दोनों को और शीला बहन की कचौड़ियों की बड़ी तारीफ़ कर रहे थे।” मुस्कराकर लता बोली।

फिर भी शीला थैला अपने हाथ में ही लेकर मानी। रुक कर खड़ी हो गई वह और बोली, “मैं नहीं चलूंगी एक कदम भी जब तक आप यह थैला मेरे हाथ में नहीं दे देंगी।”

लता ने मुस्कराकर थैला शीला के हाथ में दे दिया और तीनों बातें करते हुए प्लेटफ़ॉर्म से बाहर निकले।

शीला की गाड़ी खड़ी थी। उसे देखकर लता बोली, “गाड़ी लाने की तकलीफ़ क्यों की तुमने शीला ? क्या मैं वैसे ही नहीं आ जाती ?”

“तकलीफ़ तो आप कह रही हैं इसे। मुझे तो आनंद आता है गाड़ी लाने में। आपको और विद्यासागर जी को गाड़ी में बिठलाकर जब मैं गाड़ी ड्राइव करती हूँ तो कितना आनंद आता है मुझे, यह आप क्या जानें ?” हलकी सी मीठी चुटकी लेकर शीला ने कहा।

लता मुस्करा दी, परन्तु विद्यासागर ने अपने सरल चेहरे पर कोई हाव-भाव नहीं आने दिया।

: ११७ :

लता को साथ लेकर विद्यासागर और शीला पहले 'भारतीय सहयोग समिति' के कार्यालय में आये। समिति का नया कार्यालय देखकर लता बहुत प्रसन्न हुई और उसने शीला की कार्य-कुशलता की हृदय से सराहना की।

बाहर से आये हुए समिति के अन्य कार्यकर्ताओं से भी यहाँ लता की भेंट हुई। सभी स्वस्थ तथा उत्साहपूर्ण मिले।

इसके पश्चात् तीनों शीला की कोठी पर पहुँचे। शीला लता की आवभगत में लग गई और मनोरमा देवी इस समय नहीं वहाँ थीं। वह प्रेस गई हुई थीं प्रकाशन-कार्य को देखने के लिए।

केवल यही दिन रह गया था बीच में और उसके पश्चात् समिति के कार्यकर्ताओं की सभा होनी थी। इस सभा में समिति के मंत्री को आज तक की समिति की कारगुजारी का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना था।

शीला कोठी के अन्दर चली गई। विद्यासागर और लता बैठक में बैठे रह गये।

विद्यासागर ने चौधरी रूपसिंह और सरूपरानी की कुशल पूछी।

उत्तर में लता बोली, "माताजी आपको बहुत याद करती हैं। कहती हैं कि यदि इस प्रकार जमालपुर को उजाड़ कर उसे जाना था तो बसाया ही क्यों था।"

विद्यासागर मुस्कराकर बोला, "माता जी का स्नेह सचमुच ही मुझ पर बहुत अधिक है।"

लता ने एक और सूचना देते हुए कहा, "भाई निहालसिंह भी जेल से छूट कर आ गये हैं।"

"अरे कब?" प्रसन्नतापूर्वक विद्यासागर ने पूछा।

"कल ही आये हैं। सज़ा दो वर्ष की थी, परन्तु जेल में उनका चाल-



चलन अच्छा होने से वह घटाकर एक बर्ष की कर दी गई।” लता ने बतलाया।

विद्यासागर को यह सूचना पाकर हार्दिक प्रसन्नता हुई और ज़िले के कलक्टर साहब की उसने मन-ही-मन सराहना की। उसे विश्वास हो गया कि उन्होंने अवश्य निहालसिंह की मुक्ति में अपना सहयोग दिया होगा। परन्तु लता से उसने उसके विषय में कोई संकेत नहीं किया।

“निहालसिंह का भी आज मेरे साथ आने का बहुत मन था, परन्तु वह शरमा गया आपके पास आता हुआ। उसे आपके साथ किया हुआ अपना दुष्ट व्यवहार स्मरण हो आया और उसका साहस नहीं हुआ आने का।”

विद्यासागर हँस पड़ा। खूब जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, “पगला कहीं का। मेरे मन में तो उसके लिए बड़ा स्नेह है। मैं उसे अपने छोटे भाई के समान ही मानता हूँ। चमेली से कम प्यार नहीं करता हूँ मैं उसे कुमारी जी।”

“मैं जानती हूँ आपके दिल को विद्यासागर जी ! और कुछ भी न जानती हूँ, कम-से-कम इतना तो अवश्य ही जानती हूँ कि आप किसी के प्रति अपने मन में द्वेष नहीं रखते।”

निहालसिंह से बात हटकर पंडित संकट मोचन पर आ गई। लता हँसकर बोली, “वह सीन भी देखने योग्य था विद्यासागर जी जब उसने थानेदार वीरेन्द्रकुमार के सामने गिड़-गिड़ाकर माफ़ी माँगी और अपना सब पाजीपन स्वीकार किया।

थानेदार वीरेन्द्रकुमार ने पूछा—तुमने शराब पी और उस्ताद भ्रमन को भी पिलाई।

पंडित संकट मोचन—जी हुआ।

थानेदार वीरेन्द्रकुमार—जब उस्ताद भ्रमन बेहोश हो गये तो बरोगा जी के कहने से तुम उसकी झूठी रिपोर्ट लिखाने के लिए थाने में आये।

पंडित संकट मोचन—जी हुजूर ।

इस पर ताऊ दरोगा जी तिलमिला उठे । वह अपने को न संभाल सके । क्रोध के आवेश में त्योंरी चढ़ाकर पंडित संकट मोचन की ओर घूरते हुए बोले—मैंने कब कहा था तुझसे संकटमोचन के बच्चे थाने में जाने को ? मुझे तो पता भी नहीं कि क्या मामला है ।

ताऊ जी की इस बात पर थानेदार वीरेन्द्रकुमार हँसकर बोले—कमाल कर दिया दरोगा जी आपने भी । आपको यह ही पता नहीं कि हुआ क्या ? मैं बतलाता हूँ आपको क्या हुआ । आपने लाला चोखेराम के पास से रुपया लेकर शराब मंगाई । आप मंडैया में जाकर उस्ताद भम्मन को बुलाकर लाये और मंदिर में ले गये ।—कहिये यह सब सच है ना !

ताऊ दरोगा जी का यह सब बात सुनकर मुँह फक्क पड़ गया । उनके पैर लड़खड़ाने लगे और माथे पर पसीना आ गया ।

पसीना देखकर थानेदार वीरेन्द्रकुमार ने कहा,—आपको तो कुछ मालूम ही नहीं है दरोगा जी ! दूध पीते बच्चे हैं आप तो । फिर यह पसीना क्यों आ रहा है माथे पर ? ये पैर क्यों लड़खड़ा रहे हैं आपके ।”

और इतना कहने के पश्चान् थानेदार वीरेन्द्रकुमार कड़ाकेदार आवाज में बोले,—इस गाँव का वातावरण खराब करने वाले आप, पंडित संकट मोचन और लाला चोखेराम हैं । मेरी तीनों पर नजर है और आप चाहें कि मेरी नजर से निकलकर भाग जायें यह आप लोगों के लिए असम्भव है । अपने रास्ते ठीक करिये आप लोग ।

लाला चोखेराम सबसे पीछे खड़े-ही-खड़े काँप रहे थे । सबके देखते-ही-देखते वह लड़खड़ाकर ज़मीन पर गिर पड़े । रामसिंह और कनकू ने उन्हें संभाला । उनके मुँह पर पानी के छींटे दिये; तब कहीं उन्हें होश आया ।

उनकी शकल देखकर थानेदार वीरेन्द्रकुमार बोले,—दरोगा जी को

शराब के लिए रुपये देते समय आपको चक्कर नहीं आया। अब जब पोल खुली है तो चक्कर खाकर जमीन पर लेटते हो। ठीक-ठीक कहो कि तुमने शराब के लिए दरोगा जी को रुपये दिये या नहीं। झूठ बोले तो अभी हथकड़ियाँ लगवा दूँगा हाथों में।

लाला चोखेराम ने घबराकर पूरा किस्सा कह सुनाया। ताऊ दरोगा जी की आँखें फटी-की-फटी ही रह गईं।

और तभी चार कांस्टेबिल आगे बढ़े। उनके हाथों में राइफलें थीं। थानेदार बीरेन्द्रकुमार ने अपनी तेज नजर ताऊ दरोगा जी पर डालकर कहा, “आपका बन्दूक का लाइसेंस जप्त हो गया है। आप सीधे इन कांस्टेबिलों के साथ अपने घर जायें और अपनी बन्दूक तथा जितने भी कारतूस आपके पास हैं, इनके हवाले कर दें।

यह बन्दूक आपको सरकार ने अपनी और गाँव की रक्षा के लिए दी थी, गाँव को डराने-धमकाने और चोर-चकोरों से मिलकर शांति के साथ रहने वालों की शांति भंग करने के लिए नहीं दी थी।

सारा गाँव देख रहा था इस सीन को विद्यासागर जी ! आप गाँव में होते तो आनंद आ जाता। उस समय ताऊ दरोगा जी की सूरत देखने लायक थी जब उन्होंने अपनी बन्दूक पुलिस कांस्टेबिलों के हवाले की।”

विद्यासागर शांति की साँस लेता हुआ बोला, “थानेदार बीरेन्द्र कुमार ने हक़ अदा कर दिया दोस्ती का कुमारी लता ! मेरी आशा से कहीं अधिक साथ दिया है उन्होंने मेरा।”

“इसमें कोई संदेह नहीं। अब तो भूमन पहलवान शेर बने घूमते हैं गाँव में और ताऊ कनकू की तो प्रसन्नता का कोई ठिकाना ही नहीं है। आस-पास के देहातों में भी इस बात की बड़ी गम्भीर ख़र्चा चल रही है।” लता ने कहा।

“अभी दरोगा जी तो बहुत झुंझलाये हुए होंगे कुमारी जी !” विद्यासागर ने पूछा।

“बहुत, परन्तु फन कुचले हुए साँप की जैसी दशा हो गई है उनकी। अब कोई सिठलाता नहीं उन्हें। किसी को उनकी बात का विश्वास नहीं रहा और उनकी गुंडुई का रौब तो गाँव पर ऐसे उठ गया, मानो वह कभी था ही नहीं।” लता बोली।

“उनके रौब का पहाड़ उठ गया गाँव और देहात के सिर से। गरीब और अनजान लोग पैसे जा रहे थे उसके नीचे।” गम्भीरतापूर्वक विद्यासागर बोला।

“इसमें कोई संदेह नहीं विद्यासागर जी ! जिस दिन से ताऊ दरोगा जी की बन्दूक गई है उस दिन से बड़ी शांति है गाँव में। गाँव का अमन चैन फिर से लौट आया है।” सरलतापूर्वक लता बोली।

गाँव की बातें चल रही थीं दोनों की तभी मनोरमा जीजी ने कमरे में प्रवेश किया। उनके हाथ में कुछ फ़र्में थे छपे हुए और एक टाइटिल कवर था।

थक गई थीं मनोरमा जीजी ! सुबह दस बज की प्रेस गई हुई थीं। आज पुस्तक उन्हें हर दशा में समाप्त करानी थी।

बैठक में लता को देखकर मनोरमा जीजी की थकान दूर हो गई। वह मुस्कराकर अपने हाथ के कागज लता को देती हुई बोली, “तुम आ गई लता ! लो यह विद्यासागर जी का उयन्यास भी समाप्त हो गया छपकर।”

“छपकर !” आश्चर्यचकित होकर लता ने पूछा।

“हाँ हाँ छपकर ही तो ! देखो इसका कवर-डिजाइन कितना सुन्दर बना है। तुम्हें दाव देनी होगी मेरी प्रकाशन-कला की।” मनोरमा कहती हुई कुर्सी पर बैठ गई।

लता ने पुस्तक के छपे हुए फ़र्में देखे, पुस्तक का कवर देखा, दोनों ही बहुत सुन्दर थे। और फिर उत्सुकतापूर्वक पूछा “जीजी यह बनकर कब मिल जायेगी मुझे ?”

“कल ! समिति की बैठक में सब सदस्यों को एक-एक प्रति भेंट की जायेगी ।” मनोरमा बोली ।

: ११७ :

दूसरे दिन समिति का शानदार अधिवेशन हुआ । समिति के सभी सदस्य अधिवेशन में उपस्थित थे । गतवर्ष की कार्यवाही विद्यासागर ने पढ़कर सुनाई और भविष्य की योजना सम्मुख रखी ।

आगामी वर्ष के लिए शीला देवी की ‘सत-साहित्य-प्रसार योजना’ प्रधान रूप से सामने आई और सभी ने उसका मुक्त कंठ से समर्थन किया ।

अन्त में विद्यासागर बोला, “चौथे रास्ते की पहली मंजिल आप लोग तै कर चुके हैं । उसका लेखा-जोखा सामने प्रस्तुत है ।”

और तभी मनोरमा देवी के संकेत पर शीलादेवी ने “चौथा रास्ता” उपन्यास की एक-एक प्रति थैले से निकालकर समिति के सब सदस्यों को दी ।

विद्यासागर बोला, “इसमें हम सबके गत जीवन की कहानी है और भविष्य के कार्यक्रम की रूपरेखा है । कैसे-कैसे हमने अपने क्रम मजबूत किये और ऊबड़-खाबड़ रास्तों को काट-छाँटकर सीधा रास्ता बनाया, उसका रोचक किस्सा है इसमें । यह हमारे आगे बढ़ने की तस्वीर है ।”

उपन्यास को सबने उलट-पलटकर देखा, खोल-खोलकर देखा और देखते ही रह गये सब ।

उजागरसिंह बोला, ‘जोजी बहुत सुन्दर प्रकाशन किया आपने । आप इसे उपन्यास कहिए परन्तु मैं तो इसे अपनी समिति की सच्ची रिपोर्ट ही कहूँगा, क्योंकि मुझे पता है कि इस बीच में विद्यासागर जी समिति के कामों के अतिरिक्त और कुछ सोच ही नहीं सकते थे ।’

“इसमें कोई संदेह नहीं उजागरसिंह जी ! परन्तु आप पढ़कर देखेंगे

तो पता चलेगा कि यह कैसी जीती जागती रिपोर्ट है आपकी समिति की।" मनोरमा ने कहा।

विद्यासागर बोला, "अपने रास्ते की पहली मंजिल में हमने कुछ ग्राम-केन्द्रों और कुछ नगर-केन्द्रों की स्थापना की है। दूसरी मंजिल में हम अपनी 'सत-साहित्य-प्रसार योजना' के द्वारा देश व्यापी केन्द्रों की स्थापना करेंगे और फिर उनके द्वारा अपने विचारों को, अपने तैयार किये हुए सामान को, दूध को, घी को, दही और मठुं को ग्राम लोगों के पास तक पहुँचायेंगे। सबके जीवन में अपने जीवन का सहयोग देंगे और सबके जीवन का अपने जीवन में सहयोग लेंगे। यही है हमारा चौथा रास्ता।

चलते-चलिये साहस और ईमानदारी के साथ। हर मंजिल आपके कदमों के नीचे दबेगी और आप एक दिन आखिरी मंजिल पर होंगे। जहाँ संसार का हर इंसान होगा। आपके कंधे-से-कंधा भिड़ाये खड़ा हो कर बल देगा आपको।

कोई पिछड़ा हुआ नहीं होगा। कोई आगे बढ़ा हुआ नहीं होगा।"

धुतिमा, साला! क्या फालतू उपन्यास  
लिखा है। ऐसे हराप्ती उप-पातकार।  
हिन्दी साहित्य को बदनाम करते हैं।  
उन माँ के लोंजों से बनकर रहना  
चाहिए। पता नहीं साला और-  
कितना उप-पात लायकर बेर दिया  
है। आपसे बेरा अनुरोध है कि इस  
किताब की पढ़ने के बाद इस लेखक  
की दूसरी किताब मत पढ़ें। पढ़ें  
आप बेर की चेतावनी के बाद भी पढ़ते  
हैं तो आप ही अपनी जिम्मेदारी लें।













